❀ श्री जैन सिद्धान्त ग्रन्थमाला का चतुर्थ पुष्प ❀

जीवन्धर



लेखक—
श्री अजितकुमार शास्त्री





प्रकाशक—
मंत्री—श्री जैन सिद्धान्त ग्रन्थमाला,
दि० जैन धर्मशाला, पहाड़ीधीरज,
देहली ।

प्रथम संस्करण	वीर सं० २४८०	मूल्य
१२५०	फरवरी १९५४	२)

[मुद्रक—सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज, देहली ।]

नम्र निवेदन

श्री जैन सिद्धान्त-ग्रन्थ माला की स्थापना सन् १९४९ में हुई थी। इसने अभी तक तीन ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं सम्यक्त्व सार, अध्यात्म ज्ञान प्रवेशिका तथा पूजन रत्नाकर। इनमें से पूजन-रत्नाकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है और इसमें प्रायः समस्त पूजाओं का सर्व श्रेष्ठ संग्रह है। इसमें जैन धर्म परम आस्तिक है, पूजन का उद्देश्य, पूजन करने की शुद्ध विधि तथा मूर्ति पूजन क्यों अनिवार्य है इत्यादि विषयों का भी सुन्दर विवेचन है। यह पुस्तक पाठकों ने काफी पसन्द की है। आशा है इसका संस्था को द्वितीय संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित करना पड़ेगा।

ग्रन्थ-माला की ओर से चौथा पुष्प "जीवन्धर" जो कि अन्तिम कामदेव के जीवन चरित्र के आधार पर लिखा गया है, आपको समर्पित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। हमारी यह भावना बहुत दिन से थी; और जैसा कि ग्रन्थ-माला का मुख्य उद्देश्य भी है कि जैन धर्म के सिद्धान्तों का आधुनिक ढंग से प्रचार किया जाय जिससे कि वे वर्तमान में लोगों के दैनिक जीवन में उतर सकें और उनका कल्याण हो सके। आधुनिक नवयुवक तथा युवतियां हर बात को वैज्ञानिक कसौटी पर कसना चाहते हैं, पुरानेपन से इनको अरुचि हो गई है। समय

बदल गया है। विज्ञान ने अद्भुत प्रगति की है। पाश्चात्य देशों का हमारी संस्कृति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका है। यह युग सिनेमा तथा उपन्यास का युग है। ऐसी दशा में अगर आधुनिक युवक तथा युवतियां पुरानी चाल के कथा-शास्त्रों का प्रवचन न करें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसीलिए यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशन का ढग भी बदले। मूल सिद्धान्त तो बदलने का प्रश्न ही नहीं उठता और न उनको बदलने की कोशिश ही होनी चाहिये। प्रस्तुत ग्रंथ इस भावना की ओर एक क्रियात्मक पग है।

इस ग्रंथ को लिखकर जैन समाज के प्रसिद्ध लेखक श्री अजितकुमार जी शास्त्री ने ग्रन्थ-माला पर बड़ी कृपा की है। उन्होंने बड़ी सुन्दरता के साथ जीवन्धर कुमार की जीवन घटनाओं का धार्मिक नियमों से बड़े स्पष्ट तथा सरल रूप से संतुलन किया है और यही इस पुस्तक की विशेषता है।

हमें पूर्ण आशा है कि पाठक गण इस पुस्तक को अवश्य पसन्द करेंगे और अपने जीवन में इसके सन्देशों से लाभ उठा कर अपनी आत्मा को ऊंचा बनाएंगे।

पुस्तक का मूल्य केवल लागत मात्र ही रक्खा गया है क्योंकि संस्था कम से कम मूल्य पर आधुनिक ढंग के जैन साहित्य को आप तक पहुंचाना चाहती है।

नेमचन्द जैन,
प्रधान

महावीरप्रसाद,
मंत्री

प्राक्कथन

भारतीय साहित्य में जैन-साहित्य का अपना एक विशिष्ट स्थान है। भारत की प्राचीन सभी भाषाओं में जैन-लेखकों ने ग्रन्थ सृजन कर उन भाषाओं को समृद्ध बनाने में योगदान दिया है। प्राकृत, अर्द्धमागधी तथा दक्षिण की अनेक भाषाओं में जितने ग्रन्थ लिखे गये उनमें तो जैन रचनायें ही विशेष हैं। बम्बई, मद्रास आदि जिन विश्वविद्यालयों में ये भाषायें पढ़ाई जाती हैं वहाँ उच्च श्रेणियों में पर्याप्त जैन ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं। तामिल भाषा का प्रसिद्ध जैन-ग्रन्थ 'कुरल काव्य' तो 'तामिलवेद' कहलाता है। उसकी वहाँ वेद के समान मान्यता है तथा उसका सुन्दर अंग्रेजी अनुवाद श्री ए. चक्रवर्तीजी ने अभी ही प्रकाशित किया है। संस्कृत में पर्याप्त जैन-साहित्य रचा गया है। जैन दर्शनशास्त्र के ग्रन्थों की भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। गणित, ज्योतिष, वैद्यक आदि सभी विषयों पर जैनाचार्यों और जैन लेखकों ने अपनी लेखनी उठा कर उत्तमोत्तम ग्रन्थ-रत्नों की सृष्टि की है। यद्यपि यवन काल में अनेक ग्रन्थ भंडार अग्नि की भेंट कर दिये गये, जिससे जैन-साहित्य को बड़ी हानि उठानी पड़ी। अनेक महान् ग्रन्थों के नाम और उद्धरण दूसरे ग्रन्थों में पाये जाते हैं पर वे ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन अभी भी प्रचुर मात्रा में जैन-साहित्य विद्यमान है।

जैन लेखकों ने संस्कृत पद्य तथा गद्यकाव्य-सम्बन्धी अत्यन्त उच्चकोटि की रचनायें की हैं। पद्म-चरित, हरिवंश पुराण, आदि पुराण, महापुराण, यशस्तिलक चम्पू, पुरुदेव चम्पू, चन्द्रप्रभचरित, अलंकार चिन्तामणि आदि ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं। जैन ग्रन्थकारों का अपना एक विशेष दृष्टिकोण है। उनके ग्रन्थों में आदर्शवाद और यथार्थवाद का अपूर्व सम्मिश्रण है। वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों पर दृष्टि रखते हुये जहाँ सांसारिक जीवन, भोग, युद्ध ,विजय आदि का सुन्दरतापूर्ण वर्णन करते हैं, वहाँ अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष को भी नहीं भूलते तथा अन्त में जीवन की सफलता के लिये उस ओर भी पाठको का मन आकृष्ट करते हैं। यही जीव का परम लक्ष्य है और इसी में मानव जीवन की सफलता है। जैन लेखकों ने इस लक्ष्य को सदा सामने रखा है और वे मानव को उठाने में सतत यत्नशील रहे हैं। इसी कारण उच्चकोटि के देशी और विदेशी विद्वानों ने यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि जैन-साहित्य के अध्ययन के बिना भारतीय संस्कृति और इतिहास का ज्ञान अपूर्ण ही रहता है, पूरा नहीं हो सकता।

भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रादुर्भाव तथा उसको पल्लवित और पुष्पित करने में तो जैन लेखकों का प्रमुख हाथ रहा है। हिन्दी की प्रारम्भिक रचनाओं में जैन रचनायें विशेष और महत्वपूर्ण रही हैं। हिन्दी का आदि महाकवि 'स्वयम्भू' जैन था जिसकी रचनायें साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं। श्री राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में उसके जोड़ का कवि आज तक हिन्दी में दृष्टिगोचर नहीं हुआ। उसके पश्चात् भी लेखक व कवि भाषा के भण्डार को भरते ही रहे हैं। यद्यपि इस विषय में हमारी गति कुछ मन्द प्रतीत होने लगी है तथा जैन लेखकों की

रचनायें उतनी उच्चकोटि की नहीं निकलतीं परन्तु लेखक-गण हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों के पुष्टीकरण में पूर्ण योग दे रहे हैं और उनमें से कुछ का तो हिन्दी-साहित्य में अपना वि शष्ट स्थान है, जो कि गौरव की बात है।

अनेक संस्थायें भी साहित्य-वृद्धि के हेतु काम कर रही हैं। श्री जैन सिद्धान्त ग्रन्थमाला देहली भी इस क्षेत्र में प्रयत्नशील है। इसका चतुर्थ पुष्प 'जीवन्धर' आपके समक्ष है। इसके लेखक श्री पं० अजितकुमार जी शास्त्री 'जैन गजट' के सम्पादक, प्रतिष्ठित विद्वान् तथा अनेक ग्रन्थों के लेखक हैं। आपने प्राचीन कथा ग्रन्थों का आधार लेकर कथा में विशेष हेर-फेर किये बिना ही अपने ढंग से इसको सुन्दर व आकर्षक रूप में पाठकों के समक्ष रखा है। बीच-बीच में वर्णित नीतियां सोने पर सुहागे का काम करती हैं तथा जीवन के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। आशा है कि इससे पाठक पूर्ण लाभ उठावेंगे।

इसको इस सुन्दर रूप में पाठकों के समक्ष लाने के लिये ग्रन्थमाला के मन्त्री श्री महावीरप्रसाद जी जैन बी. एससी. (सुप०, कृषि मंत्रालय भारत सरकार) ने पर्याप्त प्रयत्न किया हैं तथा सम्राट् प्रेस के अधिकारियों ने इसमें हर प्रकार का पूर्ण सहयोग दिया है, इसके लिये मैं उनका आभारी हूं।

विनीत,
हीरालाल जैन "कौशल"
(साहित्य रत्न, शास्त्री, न्यायतीर्थ)
प्रकाशन मन्त्री।

सदर बाजार, देहली
ता० २५-२-५४

दो शब्द

वीर-प्रसू भारत-भूमि में चिरकाल से प्रख्यात वीर पुरुष जन्म लेते रहे हैं। आज से ढाई हजार वर्ष पहले ऐसा ही एक क्षत्रिय वीर प्रगट हुआ था, नाम उसका 'जीवन्धर' था। पुरुष के आचरणीय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष; इन चारों पुरुषार्थों का जीवन्धर ने यथा-समय अच्छा सुन्दर आचरण किया तथा उसने अपने जीवन में यथा-समय दान-वीरता, युद्धवीरता और धर्मवीरता का पठनीय परिचय दिया। वह भावी सन्तान के लिये आदर्श चरण-चिन्ह छोड़ गया।

उस वीर जीवन्धर की विक्रम-गुण-गाथा गद्य-चिन्तामणि, जीवन्धर-चम्पू, जीवन्धर-चरित्र, क्षत्रचूड़ामणि आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थों में साहित्यिक सौन्दर्य के साथ लिखी गयी है, जो कि संस्कृत भाषा के विद्वानों के लिये उपयोगी है। आधुनिक हिन्दी-भाषा-भाषियों को वीर जीवन्धर का परिचय कराने के लिए आवश्यक अनुभव करके यह पुस्तक लिखी है। इसमें जीवन-परिचय के साथ-साथ विविध नीतिया भी यथास्थान रख दी हैं, जिससे पढ़नेवाले के हृदय पर कुछ उपादेय भाव भी अंकित होता जावे।

ग्रन्थमाला ने इसका प्रकाशन करके जन-हित मे एक अनुकरणीय पग उठाया है, अतः वह धन्यवाद की पात्र है। लेखन, सम्पादन में जो त्रुटियां प्रतीत हों, उन्हें विज्ञ सज्जन अवश्य सूचित करें।

माघ सुदी १३ वीर सं० २४८०
सोमवार। ता० १५--२--५४

अजितकुमार शास्त्री

विषय-सूची

पाँचवां प्रसंग—

छठा प्रसंग—

सातवां प्रसंग—

आठवा प्रसंग—

नौवां प्रसंग—

दशवां प्रसंग—

ग्यारहवां प्रसंग—

श्री जैन सिद्धान्त ग्रन्थमाला

के

उद्देश्य

१—प्राचीन अप्राप्त जैन ग्रन्थों की खोज करके उन को छपवाना

२—प्राकृत तथा संस्कृत के उपयोगी ग्रन्थों का संशोधन तथा सरल भाषा में अनुवाद करा कर छपवाना।

३—प्राचीन जैन आचार्य तथा लेखकों का इतिहास तैयार कराना और उनके लिखे उपयोगी साहित्य का प्रकाशन करना।

४—जैन तथा अजैनों को जैनधर्म का सरलता तथा आधुनिक ढंग से बोध कराने वाली पुस्तकों का प्रकाशन करना।

५—नवीन जैन साहित्य को छपवाकर धर्म का प्रचार करना।





जीवन्धर

—०෴०—

राजगृह नगर

बात आज से ढाई हजार वर्ष पहले की है। जगत्-पूज्य भगवान् महावीर के पवित्र विहार के कारण जो भारतीय प्रदेश 'विहार' नाम से प्रसिद्ध हो गया, उसी विहार प्रान्त में 'राजगृह' एक बहुत सुन्दर और विशाल नगर है। इस नगर के भवन बहुत ऊँचे, स्वच्छ और ठीक पंक्तिबद्ध बने हुए थे। देव-मन्दिर अपने उन्नत शिखरों से देखने वालों का चित्त आकर्षित करते थे, उन पर वायु में फहराती हुई रंग-बिरंगी ध्वजायें ऐसी प्रतीत होती थीं जैसे संकेत से भव्य धर्म-प्रिय व्यक्तियां को अपनी ओर बुला रही हों। नगर के प्रतापी शासक बिम्बसार (श्रेणिक) नृपति का राज-भवन तो इस नगर की एक दर्शनीय वस्तु थी।

नगर के सभी राज-पथ बहुत चौड़े और सीधे बने हुए थे। रात्रि के समय उनके दोनों ओर जलते हुए पंक्तिबद्ध दीपक नगर में प्रतिदिन दीपमाला महोत्सव का भ्रम पैदा किया करते थे।

नगर में सभी वस्तुओं के क्रय-विक्रय की बड़ी-बड़ी दुकानें थीं, जिन पर सब प्रकार का माल सदा आता जाता रहता था, बाहर से आये हुए खरीदने-बेचने वाले व्यापारियों की भीड़ कभी भी इस नगर में कम न होने पाती थी।

नगर के चारों ओर बहुत ऊँचा और सफेद रंग के पत्थर का कोट बना हुआ था। उस कोट में चारों दिशाओं में विशाल उन्नत द्वार थे, उन द्वारों पर रात दिन राजसैनिकों का पहरा बना रहता था।

नगर के बाहर दूर तक फैले हुए अनेक मनोहर उद्यान थे, जिन में सब तरह के फल-फूलों के वृक्ष बड़े करीने के साथ लगे हुए थे। उद्यानों की सीमा समाप्त होते ही विविध धान्यों के हरे-भरे खेत आने जाने वालों का चित्त मोहित करते रहते थे।

राजगृह की जनता बहुत प्रसन्न और सदाचार-परायण थी, वहां पर कोई भिखारी और पापरत नहीं दिखाई देता था। अन्याय अत्याचार तो मानो वहां से कूच ही कर गये थे। राजा बिम्बसार प्रजा की सुख-सुविधा का सदा ख्याल रखता था और प्रजा भी राज-आज्ञा का ठीक पालन करती थी।

राजगृह के शासक बिम्बसार के राजभवन में अनेक रानियां थीं उन सब रानियों में चेलना रानी सबसे अधिक सुन्दरी और चतुर थी, वह वैशाली के राजा चेटक की सुपुत्री थी अतएव धर्म-आचरण-परायण आदर्श महिला थी। चेलना रानी की प्रेरणा पाकर राजा बिम्बसार (श्रेणिक) भगवान् महावीर का प्रधान

भक्त बन गया था। पट्टरानी की आज्ञा से राजभवन में कोई न कोई धार्मिक उत्सव होता ही रहता था। इस तरह चेलना ने भी राजभवन को बड़ी चहल पहल का सुन्दर आगार बना दिया था।

विपुलाचल

इसी राजगृह के निकट सुरम्य पर्वत-माला है, जिसके अनेक उन्नत शिखर हैं जो कि कोसों दूर से दिखाई देते हैं। इन पर्वतों की तलहटी में अनेक सुन्दर स्वच्छ जलसे भरे हुए कुण्ड हैं, जिनमें से कुछ कुण्डों का जल सदा उष्ण रहता है और कुछ का शीतल। वहाँ पर सदा स्नान करने-वाले स्त्री पुरुषों की भीड़ लगी रहती थी।

पर्वतों का पत्थर मटियाले रंग का है। इन पर्वतों पर सर्वत्र तो नहीं किन्तु कहीं कहीं पर हरे भरे फल फूलों से लदे हुए रमणीक वृक्ष हैं जो कि वायु के झकोरों से हिलते हुए पर्वतीय हरियाली में लहरें उठाते रहते हैं और अपनी स्निग्ध-सुषमा से देखने वालों के नेत्र अनायास अपनी ओर खींच लेते हैं।

इस पर्वत-माला के पांच उन्नत शिखर हैं, उनमें से पहले शिखर का नाम जनसाधारण ने 'विपुल' रक्खा है और अन्तिम का नाम 'वैभार'। इस नाम-करण में कुछ रहस्य भी है, विपुलगिरि का शिखर सचमुच बहुत विशाल एवं दूर तक समतल फैला हुआ है और वैभार गिरि का आरोहण बहुत कठिन और भारी है। अन्य पर्वत-शिखरों की अपेक्षा ये दोनों पर्वत नगर के अति निकट हैं, शेष तीन पर्वत इन दोनों पर्वतों के मध्यवर्ती

हैं किन्तु हैं उनकी पिछली ओर। पर्वतों की सुषमा देख कर मनुष्यों ने सभी पर्वतों पर चढ़ने उतरने के सरल संकरे मार्ग बना लिये हैं।

समवसरण

सौधर्म-इन्द्र को जब यह जान पड़ा कि विश्व-हितङ्कर भगवान महावीर की बारह-वर्षीय कठोर तपश्चर्या सफल सम्पन्न हुई है, जिस आत्म-सिद्धि के लिये भगवान ने अपने माता पिता का स्नेह-बन्धन और राजवैभव का मोह तोड़ दिया था, शरीर के लिए सब तरह सुख-कर राजभवन का निवास त्याग दिया था, शरीर के समस्त मूल्यवान वस्त्र भूषण उतार फेंके थे और नग्न होकर वन पर्वत के एकान्त, शान्त प्रान्त में आत्मनिष्ठ होकर अटल ध्यान द्वारा आत्म-निरीक्षण किया था। वे जब कभी केवल भोजन के लिये थोड़ी देर को नगर में आते और निःस्पृह भाव से थोड़ा शुद्ध भोजन करके फिर नगर से दूर वन पर्वत की ओर आत्म-ध्यान के लिये चले जाते थे। रात्रि समय कभी थोड़ी देर के लिये पृथ्वी पर एक करवट से सो लेते थे, शेष समय रात दिन जागरण रख कर आत्म-मनन में लीन रहते थे। संसार की विषय-कामनाओं, विषयकषायों एवं जन-समुदाय के कोलाहल और विविध हलचलों से दूर रह कर भगवान महावीर ने अटूट मौन के साथ आत्म-शोधन में अपना चंचल-चित्त स्थिर किया था। तब इस कठोर तपस्या के फलस्वरूप भगवान को बारह वर्ष पीछे आत्म-सिद्धि प्राप्त हुई।

इस कारण भगवान महावीर में आत्मगुणों का पूर्ण विकास हो गया और वे आत्मा से परमात्मा बन गये। इसी कारण वे त्रिकाल-ज्ञाता, पूर्णद्रष्टा, अनन्त-बली, निरंजन, निर्विकार हो गये। संसार के किसी भी पदार्थ और प्राणी से उन्हें जरा भी राग, द्वेष की मात्रा न रही।

उस समय इन्द्र ने भगवान के अनुभव-सिद्ध आत्म-कल्याण का संदेश समस्त जनता तक पहुँचाने के लिये एक मनोहर दिव्य-सभा-मण्डप बनाने का आदेश अपने चतुर शिल्पी 'कुबेर' को दिया।

इन्द्र का संकेत पाते ही कुबेर ने राजगृह के निकटवर्ती विपुल पर्वत-शिखर के समतल विशाल मैदान में एक मनो-मोहक अद्भुत सुन्दर सभा-मण्डप तैयार किया।

वह सभा-मण्डप गोल था उसके चारों ओर तीन कोट खड़े किये। चारों दिशाओं में उस मंडप के द्वार बनाये गये। उन द्वारों से मंडप के बीच भाग तक सोधा मार्ग बनाया गया। उन द्वारों के सामने बाहर एक एक उन्नत एवं सुन्दर मानस्तम्भ बनाया गया। मानस्तम्भों को देखने के लिये मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु पक्षी भी स्वयं खिंचे चले आते थे। मंडप के बीच में तीन कट-नियोंवाला बहुत सुन्दर ऊंचा मंच बनाया गया, उस मंच के ऊपर कुबेर ने एक बहुत सुन्दर सिंहासन रक्खा, सिंहासन के बीच में एक कमल का फूल बना हुआ था। भगवान महावीर के बैठने की व्यवस्था उस कमल पर की गयी।

उस मंच (गन्धकुटी) के चारों ओर कुबेर ने १२ विशाल कक्ष

(कोठे) बनाये जिनमें पुरुषों, स्त्रियों, साधु, साध्वियों और सब तरह के देव, देवियों तथा पशु पक्षियों के आराम से बैठने की व्यवस्था थी।

इसके सिवाय कुबेर ने उसी सभा-मंडप को विविध रंग-विरंगी ध्वजाओं से, मनोहर वृक्षों से तथा अनेक सुन्दर जलाशयों से भी सुसज्जित कर दिया था। सारांश यह है कि लोगों की सुख सुविधा का तथा जनता का मन आकर्षित करने का ध्यान रखकर कुबेर ने वह उपदेश-सभा का मण्डप सब तरह से सुन्दर बना दिया। इस सभा मण्डप का नाम 'समवसरण' प्रसिद्ध हुआ।

समवसरण तैयार होते ही भगवान महावीर गन्धकुटी पर रक्खे हुए सिंहासन पर विराजमान हुए। चमत्कार यह हुआ कि वे उस कमल से चार अंगुल ऊपर अधर विराजमान थे। दूसरा चमत्कार यह था कि भगवान् का मुख यद्यपि पूर्व दिशा की ओर था। परन्तु वह मुख चारों ओर दिखाई देता था। गन्धकुटी के समीप अशोक वृक्ष था। शिर के ऊपर तीन छत्र लगे हुए थे। ६४ यक्ष भगवान पर चंवर ढोरने लगे। अनेक देव भगवान् पर फूलों की वर्षा करने लगे। हर्ष में उन्मत्त हो कर कुछ देव दुन्दुभि बाजे बजाने लगे, जिनकी मीठी ध्वनि दूर-दूर तक पहुंच रही थी।

इसके साथ ही देवों ने विपुल-पर्वत का वायुमण्डल ऐसा अद्‍भुत बना दिया कि वहां के सभी वृक्षों पर फल-फूल आ गये। राजगृह के धार्मिक राजा बिम्बसार (श्रेणिक) को जब भगवान् महावीर के जीवन-मुक्त होने का शुभ समाचार मिला, तब वह

और रानी चेलना बहुत हर्षित हुए, राजगृह की जनता में भी यह समाचार तत्काल फैल गया। उधर दुन्दुभि बाजे की ध्वनि सुनकर और समसरण के ऊंचे मानस्तम्भ तथा देवों की चहल-पहल को देखकर दूर-दूर की जनता की दृष्टि विपुल पर्वत की ओर आकर्षित हुई।

राजा श्रेणिक राज-परिवार और राजगृह की विशाल जनता के साथ समवसरण में आया। पर्वत के चारों ओर के नगर ग्राम-निवासी स्त्री पुरुष स्वयं आकर उस दिव्य सभा में एकत्र हो गये, इतना ही नहीं बल्कि आस-पास के पशु पंखी तथा वन पर्वत के जानवर भी समवसरण के सुन्दर दृश्य से आकृष्ट होकर वहां बड़ी भारी संख्या में आ गये। वे सब इन्द्र की व्यवस्था-अनुसार अपने-अपने कोठे में आकर बैठ गये।

समवसरण में प्रकाश की ऐसी अच्छी व्यवस्था थी कि रात के समय भी रात मालूम न होती थी। भगवान् के प्रशान्त आत्मा का इतना प्रभाव था कि वहां पर आये हुए क्रूर पशु-पत्ती तथा मनुष्यों की क्रूरता विलीन हो गई, अतः सभी सबल निर्बल जीव निर्भय होकर बहुत प्रेम से यथास्थान बैठकर भगवान का दिव्य-उपदेश सुनने के लिये प्रतीक्षा करने लगे।

इन्द्र बड़ी युक्ति के साथ उस समय के महान ब्राह्मण विद्वान् इन्द्रभूति गौतम को उस दिव्य सभा में लाया। विद्वान् गौतम भगवान् महावीर का दर्शन करते ही उनका विनीत भक्त बन गया, इन्द्रभूति के साथ आये हुए उसके ५०० विद्वान् शिष्य भी श्री भगवान् महावीर के दर्शन से अच्छे प्रभावित हुए और वे

श्री वीर-प्रभु के श्रद्धालु शिष्य गण भी उनका उपदेश सुनने बैठ गये।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो जाने के ६६ दिवस पीछे इन्द्रभूति गौतम के आते ही श्रावण वदी प्रतिपदा के दिन भगवान् महावीर का मौन-भङ्ग हुआ।

दिव्य-उपदेश

विश्ववन्द्य भगवान् महावीर का दिव्य-उपदेश बड़ी गम्भीर ध्वनि में प्रारम्भ हुआ, जिस को कि वहां पर बैठे हुए मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्रत्येक प्राणी ने अपनी-अपनी भाषा में स्पष्ट सुना। उनके उपदेश का सारांश यह है—

"यह जगत अनादि समय से चला आ रहा है और अनन्त समय तक रहेगा। इस जगत् के सभी जड़, चेतन पदार्थ अनादि अनन्त हैं—वे न तो कभी उत्पन्न हुए थे और न कभी सर्वथा नष्ट होंगे। इन जड़ चेतन पदार्थों की दशा (पर्याय) द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव के अनुसार प्रतिक्षण बदलती रहती है। संसार के अनन्तानन्त प्राणी सांसारिक वस्तुओं से प्रेम या घृणा करके उनको अपने लिये इष्ट, अनिष्ट समझ लेते हैं, ऐसा समझने से उन दूसरे जड़ पदार्थों की तो कोई विशेष हानि होती नहीं किन्तु वे जीव अपने लिये अपने उन विकृत भावों से कर्म-बन्धन तैयार कर लेते हैं। अपने भावों के अनुसार तैयार किया हुआ शुभ, अशुभ कर्म जब अपना प्रभाव डालता है तब उसके उदय से जीव को इष्ट-अनिष्ट सामग्री का सम्पर्क मिलता है, उस समय

यह जीव समता-भाव न रख कर इष्ट सामग्री के समागम में प्रसन्न होता है, अभिमानवश अन्य प्राणियों से अपने आपको बड़ा समझ बैठता है और जब अशुभ कर्म-उदय से इसे अनिष्ट सामग्री मिलती है तब अपनी शान्ति, धीरज और साहस को भुलाकर रोता है, अधीर हो जाता है एवं दुःख अनुभव करने लगता है।

शरीर को तथा पुत्र, स्त्री, मित्र, धन आदि को अपना समझ कर सदा इनके समागम में तथा पालन-पोषण में अपना समय लगा देता है, अपने ज्ञान, सुख, शान्तिमय आत्मा की ओर इस संसारी जीव का जरा भी ध्यान नहीं जाता. इसी लिये ऐसी असत्य श्रद्धा, ज्ञान और असत्-आचरण के कारण यह सदा अपने लिये कर्म का जाल तैयार करता रहता है।

यदि कभी सच्चे हितकारी उपदेशक का समागम भाग्य से इस जीव को मिल जावे और उनका उपदेश इसके हृदय में अंकित हो जावे तो यह अपने आत्म-स्वरूप को पहिचान कर शरीर, परिवार और विषय भोगों से मोहभाव हटाकर अपने आत्मा में समता, शान्ति, क्षमा, धैर्य, नम्रता आदि निजी गुणों की निर्मल ज्योति जगाता है, उस समय इसको अपने आत्मा का अनुभव होता है। उस आत्म-अनुभव में इसको जो आनन्द मिलता है, वह संसार के किसी भी पदार्थ के समागम से नहीं मिलता। उस समय इसका ज्ञान निर्मल हो जाता है, और उसके हिंसा, असत्य, मद, लोभ, तृष्णा आदि दुराचरण स्वयं छूट जाते हैं। तब यह आत्मा अपने तप, त्याग संयम के कारण महात्मा बन जाता है।

वही महात्मा जब अटूट मौन और अटल आसन के साथ अपनी चित्तवृत्ति को आत्मचिन्तन पर अचल कर देता है, तब उसके समस्त काम क्रोध आदि विकार दूर होकर वह शुद्ध निरंजन निर्विकार हो जाता है, उसका ज्ञान तथा आत्मशक्ति पूर्ण विकसित होकर वह अनन्तज्ञानी और अनन्त शक्तिमान बन जाता है। उस समय समस्त कर्म-मल से स्वच्छ होकर सदा के लिये पूर्णमुक्त, अजर-अमर, प म-आत्मा हो जाता है।

इस प्रकार कर्मबन्धन में फंसकर संसार-चक्र में घूमना तथा संसार-चक्र से मुक्त होना इस जीव के अपने अधीन है, कोई अन्य शक्ति न इसको संसार में रख सकती है और न मुक्त ही कर सकती है।

परन्तु तप, त्याग संयम पाने का अवसर केवल मनुष्य शरीर से ही सम्भव है, अतः जिनको नर-देह प्राप्त हुई है उनको तप, त्याग, संयम के द्वारा अपनी आत्म-शुद्धि अवश्य करनी चाहिये। देवशरीर देखने में सुन्दर और स्वस्थ है किन्तु उस देह से संयम धारण नहीं हो सकता, इसी कारण कोई भी देव आज तक महाव्रती साधु तो क्या अणुव्रत-धारी भी नहीं बना। देव अपनी स्वच्छ आत्म-श्रद्धा प्राप्त करके अपना भविष्य अच्छा बना सकते हैं। पशु, पक्षी भी यथासम्भव थोड़ा चारित्र आचरण कर सकते हैं।

समय का चक्र निर्बाधगति से बहुत वेग से घूमता है, आयु का जो क्षण चला जाता है वह फिर लौट कर वापिस नहीं आता,

इस कारण अपने आयु का एक क्षण भी व्यर्थ न खोना चाहिये, आत्म-हितकारी कार्य में सदा लगे रहना चाहिए। प्रमाद, आलस्य इस आत्मा का महान् शत्रु है, इस शत्रु से सदा सावधान रहकर प्रतिसमय उद्योग में लगे रहना ही आत्म-उन्नति का साधन है।"

राजा विम्बसार (श्रेणिक) का प्रश्न

श्रेणिक राजा ने समवसरण के मुनिमण्डल में बैठे हुए एक देव-समान सुन्दर मुनि को देखकर श्री सुधर्म गणधर से प्रश्न किया कि—

प्रभो! भगवान् के दिव्य-उपदेश से यह बात मालूम हुई कि देव मुनि-दीक्षा नहीं लिया करते, किन्तु यहां पर मुनि-मण्डली में एक देव-मुनि भी बैठे हुए हैं, सो यह क्या समस्या है?

सुधर्म गणधर मुस्कराते हुए बोले कि राजन्! जिस मुनि का देवों के समान सुन्दर शरीर देखकर तुमने प्रश्न किया है, वह देव नहीं है, किन्तु वह महान सुन्दर जीवन्धरकुमार है।

राजगृही का शासक श्रेणिक श्री सुधर्म गणधरका उत्तर सुनकर आश्चर्य-चकित हुआ कि मनुष्य भी इतने सुन्दर होते हैं? उसने फिर बड़े कौतूहल के साथ प्रश्न किया कि—

योगिराज! देव-तुल्य सुन्दर जीवन्धरकुमार की जीवनचर्या जानने के लिये हृदय में बहुत उत्सुकता है, कृपा करके उनका जीवन-वृत्तान्त सुनाइये।

सुधर्म गणधर फिर मुस्कराये और मधुर वाणी में बोले कि राजन्! जीवन्धरकुमार का चरित्र भी एक पावन कथा है जो कि सुनने वालों को रुचिकर तथा धर्म कर्म में उत्साह उत्पन्न करने वाली है। तू चित्त लगाकर सुन।

कथा का प्रारम्भ

(प्रथम प्रसंग)

इस भारतवर्ष के कलिङ्ग (उड़ीसा) प्रान्त में "हेमाङ्गद" मण्डल बहुत सम्पन्न भाग है, वहाँ की भूमि मे अनेक सोने की खानें हैं। उस हेमाङ्गद में 'राजपुरी' नामक एक सुन्दर नगर है। राजपुरी में सुन्दर विशाल मकान, चौड़ी स्वच्छ सड़कें, और बहुत लम्बे बाजार हैं। जहाँ पर अन्न, सुवर्ण, रत्न, मोती, फूल, फल सब तरह की वस्तुओं को खरीदने बेचने-वाली बड़ी-बड़ी दूकानें हैं। दुकानदार न्याय और नीति के साथ व्यापार करते हैं। नगर को सुरक्षित रखने के लिये उसके चारों ओर ऊंचा कोट है जोकि सतर्क पहरेदार के समान खड़ा हुआ है। उस कोट के चारों ओर स्वच्छ जल से भरी हुई गहरी खाई है, जो कि ऐसी जान पड़ती है कि कोट को अपना शरीर देखने के लिये स्वच्छ दर्पण-माला रक्खी हो। उस कोट में चारों दिशाओं में चार गोपुर (नगर के द्वार) हैं। राजपुरी की जनता शिक्षित, सभ्य, धार्मिक और सम्पन्न है। दीन-दुःखी दरिद्र मनुष्य वहाँ पर कहीं दिखाई नहीं देते।

उस नगर का न्याय नीति से शासन करने वाला 'सत्यन्धर' नामक राजा था। सत्यन्धर बहुत सुन्दर, गुणी, पराक्रमी राजा था, अपने नाम के अनुरूप वह सत्यवादी था। अपनी नीति-

निपुणता के कारण प्रजा को कोई भी कष्ट न होने देता था। वह प्रख्यात वीर था, इस कारण आस-पास के किसी भी राजा को सत्यन्धर की राज-सीमा पर आक्रमण करने का साहस न होता था। राजा स्वयं सुन्दर गुणों का भण्डार था और सदा गुणियों का आदर करता था। उसके अनेक नीति-कुशल, राज-भक्त, विद्वान् मन्त्री थे। इस तरह से सत्यन्धर बहुत सुख के साथ निष्कण्टक राज्य कर रहा था।

सत्यन्धर की अनेक रानियां थीं, उनमें से एक का नाम 'विजया' था। विजया रानी देवाङ्गना जैसी सुन्दरी तरुण महिला थी, उसका स्वभाव बहुत कोमल और दयालु था, वाणी मीठी थी, पति-परायणता की वह आदर्श थी। उसके शारीरिक सौन्दर्य, हृदय के पवित्र प्रेम और ललित वाणी में अपूर्व आकर्षण था। इसी आकर्षण से आकृष्ट होकर (खिंच कर) वह अपने पति को बहुत प्यारी थी। यद्यपि रणवास में अन्य भी अनेक सुन्दर रानियां थीं, परन्तु सत्यन्धर का सबसे अधिक प्रेम विजया रानी पर ही था।

पति और पत्नी दोनों अपने जीवन के अटूट साथी होते हैं। इसलिये उनका आपस में अटूट प्रेम होना आवश्यक है। इस प्रेम-बन्धन के कारण ही पति अपनी पत्नी की प्रसन्नता का और पत्नी अपने पति की प्रसन्नता का रात-दिन ध्यान रखती है। सुख-दुःख में वे एक दूसरे का पूरा साथ देते हैं और दोनों आपस में इतना घुल-मिल जाते हैं कि उनका मन एक-रस हो

जाता है, शरीर दो होने पर भी उनका आत्मा एक-जैसा प्रतीत होता है। इसी प्रेम-धारा के कारण गृहस्थाश्रम स्वर्गीय सुख का दृष्टान्त बन जाता है।

ऐसा ही आदर्श प्रेम राजा सत्यन्धर और विजया रानी में परस्पर था, इस कारण दोनों स्वर्गीय सुख का अनुभव कर रहे थे।

परन्तु दाम्पत्य (पति पत्नी का) प्रेम जब विषयवासना का रूप धारण कर लेता है, तब वह गुण न रहकर दुर्गुण बन जाता है, उस समय उस दूषित प्रेम में विष से भी अधिक भयानक मारण-शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

यही बात कुछ दिनों पीछे सत्यन्धर राजा के लिये प्रमाणित हुई। सत्यन्धर अपनी अनिन्द्य-सुन्दरी विजया रानी के रूप-सौन्दर्य पर इतना मोहित हुआ कि उसके नेत्र रात-दिन उसी का सुन्दर विकसित मुख कमल देखने के लिये लालायित हो उठे। उसके हृदय में विषयवासना इतने उग्र रूप से छा गई कि विजया के सिवाय उसे और किसी भी बात का ध्यान न रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि सत्यन्धर रात-दिन विजया रानी के पास ही रणवास में रहने लगा, उसने राजकार्य निपटाने के लिये थोड़े समय भी राजसिंहासन पर बैठना छोड़ दिया।

राज्य की किसी समस्या को सुलझाने के लिये यदि राजमन्त्री जब कभी राजा सत्यन्धर को राजसभा में बुलाते तो सत्यन्धर को बहुत बुरा मालूम होता, वह उसको अपनी आनन्द-धारा में एक बड़ा अनिष्ट विघ्न समझता।

सत्यन्धर ने अपनी इस विघ्न-बाधा को अपने विषयवासना के मार्गसे दूर हटानेके लिए एक उपाय सोचा कि "काष्ठांगार—जो कि एक लकड़हारा था। किन्तु उसकी बुद्धिमानी और कार्यकुशलता से प्रभावित होकर राजा सत्यन्धर ने उसको अपना मंत्री बना लिया था—को राज्य की देख-भाल के लिये नियत कर दूं, जिस कार्य के लिये मुझे जब कभी राजसभा में जाना पड़ता है, उन कार्यों का संचालन मेरी ओर से काष्ठांगार करता रहेगा और मैं निश्चिन्त होकर रणवास में विजया रानी के साथ आनन्द करता रहूंगा।"

ऐसा निर्णय करके उसने राज्य-संचालन के लिये काष्ठांगार को नियुक्त कर दिया।

यह बात जब अन्य मन्त्रियों को मालूम हुई तो उनको अपने राजा का यह कार्य बहुत हानिकारक जान पड़ा। वे काष्ठांगार की दुर्जनता को अच्छी तरह जानते थे, इसलिये राजभक्ति से प्रेरित होकर उन्होंने राजा सत्यन्धर को भलाई-बुराई समझाने का निश्चय किया। तदनुसार वे सब एकत्र होकर राजा के पास पहुँचे और बहुत नम्रता तथा आदर के साथ सत्यन्धर से कहने लगे कि—

राजन्! केवल बाहरी शत्रुओं को जीत लेने से ही राजकार्य नहीं चला करता। राजा को सबसे पहले अपने भीतरी शत्रु काम, क्रोध, मोह, मद, लोभ और आलस्य जीतने चाहिये। जो राजा इन शत्रुओं को नहीं जीत पाता वह कभी भी राज-सिंहासन पर स्थिर नहीं बैठ सकता।

गृहस्थ को धर्म, अर्थ, काम (विषय सेवन) ये तीनों पुरुषार्थ यथा-समय तथा यथा-नियम सेवन करने चाहिये।

धर्म पुरुषार्थ, अर्थ (धन संचय करना, राज्य करना) तथा काम (इन्द्रियों की विषय सामग्री का भोग उपभोग करना) पुरुषार्थ का मूल है। धर्म-साधन के बिना अर्थ-सचय और काम-सेवन में सफलता नहीं मिलती। इस लिये प्रतिदिन यथा-समय देव-पूजन, गुरुदर्शन, शास्त्र-अभ्यास, आत्मचिन्तन, दान, पर-उपकार आदि धर्म कार्य करने चाहिये. और अर्थ-संचय के समय राजा को राजकार्य के समय न्यायपूर्वक राज्य-संचालन करना चाहिये। इसके बाद अपने समय पर काम-सेवन होना चाहिये। तीनों पुरुषार्थों में से यदि किसी एक ही पुरुषार्थ का सेवन किया जावे, अन्य दो पुरुषार्थ छोड़ दिये जावें तो गृहस्थाश्रम नहीं चल सकता।

निर्बल पुरुष ही इन्द्रियों के दास बनकर अपना आत्म-तेज खो देते हैं, शूरवीर पुरुष इन्द्रियां को अपना दास बना कर उनको अपनी इच्छानुसार चलाते हैं। वन का राजा सिंह केवल एक बार सिंहिनी से काम-सेवन करता है, उसी से सिंहिनी गर्भ-धारण करती है। तदनन्तर प्रसूति (बच्चा पैदा होने) तक एक साथ सोते, रहते, उठते, बैठते भी सिंह कामातुर नहीं होता। सिंह पशुओं का राजा है, आप मनुष्यों के राजा हैं।

राजा को कोष (खजाना) और सेना सदा अपने अधिकार में

रखने चाहिये, स्वप्न में भी उनको दूसरों के हाथ न सौंपना चाहिये।

एक छोटे से परिवार का स्वामी भी अपने परिवार की रक्षा के लिये सदा चौकन्ना रहता है, तो राजा को तो अपने विशाल परिवार (प्रजा) की रक्षा के लिये सदा जागृत रहना चाहिये। सचेत रहने वाला व्यक्ति किसी भी षड्यन्त्र (छल-चक्र) का शिकार नहीं बनता।

शासन करते समय राजा को किसी भी अन्य पुरुष पर पूर्ण विश्वास करना उचित नहीं। दूसरों पर बहुत अधिक विश्वास करने वाले मनुष्य सदा धोखा खाते हैं।

कुएं से पानी निकालते समय बुद्धिमान् पुरुष कलश के साथ सारी रस्सी कुए में लटका देता है परन्तु उस रस्सी का किनारा अपने हाथ से नहीं छोड़ता, ठीक इसी तरह राजा को कारणवश राज-व्यवस्था दूसरे मनुष्य के हाथ सौंपते हुये भी राज्य की बाग-डोर (मुख्य अधिकार) अपने ही हाथ में रखनी चाहिये।

इस प्रकार विद्वान् मन्त्रियों ने राजा सत्यन्धर को बहुत कुछ समझाया परन्तु विषयातुर राजा की समझ में कुछ भी नहीं आया।

ठीक है, उल्लू के नेत्र दिन के प्रकाश में नहीं देख सकते और मनुष्य के नेत्र रात्रि के अन्धकार में नहीं देख सकते, परन्तु कामान्ध प्राणी के नेत्रों को भला-बुरा न दिन में दिखाई देता है, न रात में। विषयातुर पुरुष की विवेक-शक्ति नष्ट हो जाती है, उसमें

न आत्म-तेज रहता है, न क्षात्र-तेज। इसी कारण उसका चारों ओर से पतन (गिरावट) प्रारम्भ हो जाता है।

यही बात राजा सत्यन्धर के लिय के लिये हुई।

काष्ठाङ्गार ने राजा को विषय-भोगों में निमग्न देखकर राज्य के कोष, सेना आदि सब साधनों पर पूरा अधिकार कर लिया। तब उसने विचार किया कि अब राजा को भी मार कर निष्कंटक राज्य करना ठीक रहेगा। जब तक सत्यन्धर राजा जीवित है, तब तक मैं उसका दास ही कहलाऊंगा, राजा नहीं कहला सकता। पराधीनता के जीवन से तो मृत्यु अच्छी, इसलिये अब मुझे अपने पराक्रम से पूरा राज-अधिकार प्राप्त करना उचित है। राज्य किसी की दया से नहीं मिलता, उस पर तो अपनी शक्ति से अधिकार करना पड़ता है। वनराज सिंह अपने पराक्रम से ही वन का राजा बनता है।

परन्तु इसके लिये भी कोई युक्ति पकड़नी चाहिये जिससे काम भी बन जावे और जनता भी मेरे विरुद्ध न होने पावे।

इधर काष्ठाङ्गार ने ऐसा विचार किया, उधर सत्यन्धर अपनी रानी के साथ विषय-वासना में ऐसा बुरी तरह से मस्त हुआ कि उसे अपने काले भविष्य की कुछ भी चिन्ता न रही।

रानी को स्वप्न

कुछ दिन पीछे रानी के उदर में सत्यन्धर के उत्तराधिकारी का अंकुरारोपण हुआ। जिस रात को विजया रानी को गर्भ हुआ, उसी रात उसको रात के पिछले भाग में तीन स्वप्न दिखाई

दिये। १—एक हरा-भरा कल्पवृक्ष मूल (जड़) से कट कर गिर गया है। २—उसी स्थान पर एक नया सुन्दर कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ है। ३—नये कल्पवृक्ष पर आठ मालायें लटक रही हैं।

प्रभात होने पर जब रानी स्नान आदि दैनिक क्रियाओं से निश्चिन्त हुई तब बड़ी उत्सुकता के साथ राजा सत्यन्धर के पास जाकर बैठी और मधुर वाणी में अपने पति से बोली कि—

आर्यपुत्र ! रात को जो मुझे तीन स्वप्न दिखाई दिये हैं उन का क्या फल प्रगट होगा ?

राजा सत्यन्धर अच्छा विद्वान् था उसने निमित्तज्ञान के द्वारा विजया रानी को बड़े प्रेम के साथ बतलाया कि प्रिये ! तुम्हारे एक सुन्दर, गुणी, भाग्यशाली, पराक्रमी पुत्र होगा और वह आठ कन्याओं के साथ विवाह करेगा।

रानी ने पूछा कि राजन् ! ये फल तो पिछले दो स्वप्नों के हैं, पहले स्वप्न का क्या फल है ?

सत्यन्धर ने पहले ही जान लिया था कि पहला स्वप्न मेरी मृत्यु का सूचक है, किन्तु उसने जान बूझकर रानी से उसे छिपा लिया था, परन्तु रानी ने जब दूसरी बार उस कल्पवृक्ष गिर जाने का फल पूछा तो उसने फिर टालमटूल कर दी और गालमाल कह दिया, उसका भी ऐसा ही कोई फल होगा।

राजा के चिन्तातुर फीके मुख को देख कर रानी ने राजा के मन की बात समझ ली और अपने पति का भावी अनिष्ट जान कर वह पृथ्वी पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी, गिरते ही उसको मूर्छा आ गई।

यह देखकर राजा को बहुत दुःख हुआ. उसने रानी के नेत्रों पर जल के छींटे मारे तथा पंखे से उसके मुख पर हवा की, इस उपचार से कुछ देर पीछे रानी सचेत हुई।

तब राजा ने रानी को बड़े प्रेम से समझाया कि प्रिये ! जो होनहार है वह अवश्य होकर रहेगा, उसके लिये चाहे शोक किया जाय, ध्यान किया जाय, उसमें किसी तरह परिवर्तन (अन्तर) नहीं आ सकता। अतः शोक करना व्यर्थ है। तथा जब तुम मुझ से प्रेम करती हो तो तुम मेरा भविष्य बुरा क्यों सोचती हो ? कीचड़ से मैला वस्त्र कीचड़ द्वारा साफ नहीं होता, उसका मैल दूर करने के लिये तो स्वच्छ जल की आवश्यकता है। इसी तरह अशुभ कर्म दुःख करने से दूर नहीं होता, उसको दूर करने के लिये तो धर्म-आराधन आवश्यक है। जीवन का फल मृत्यु है, जो कि एक दिन अवश्य प्रत्येक जीव के सामने आती है, किसी के सामने चार दिन पहले आ गई और किसी के सामने चार दिन पीछे आई। उससे डरने की क्या आवश्यकता है ? तुम शूरवीर की पुत्री हो और शूरवीर की पत्नी हो, फिर क्यों भयभीत होती हो ?

सत्यन्धर के वचन सुन कर विजया को कुछ सान्त्वना मिली और स्वस्थचित्त होकर अपने कार्य में लग गई।

कुछ दिन पीछे रानी के शरीर पर गर्भ के चिन्ह प्रगट होने लगे। उसको गर्भ के कारण अनेक प्रकार की इच्छायें (दोहले) होने लगीं, राजा सत्यन्धर उसको मनचाही वस्तुऐं उसको देने लगा। गर्भ के कारण विजया रानी का उदर ज्यों-ज्यों उन्नत होने

लगा त्यों-त्यों उसका मुख कान्तिहीन (फीका) होता गया, इसके साथ ही राजा सत्यन्धर भी अपने निकट-मरण की आशङ्का से चिन्तातुर होने लगा। उसका सोया हुआ विवेक अब जागृत हुआ, वह विचारने लगा कि देखो, मन्त्रियों ने मुझे समय पर कितना अच्छा समझाया किन्तु मेरा भविष्य अच्छा नहीं था इसलिये मैंने उनकी एक भी हितकारी बात पर ध्यान नहीं दिया, अब तो वाण हाथ से छूट चुका है, अब वह नहीं लौट सकता। राज-अधिकार काष्ठाङ्गार के हाथ में जब चला गया है, तब फिर उसे पाने की आशा वृथा है। अब तः जो कुछ भी विपत्ति मेरे सामने आवेगी उसका सामना करूँगा, किन्तु इसके साथ मुझे अपने वंश की रक्षा का उपाय भी अवश्य करना चाहिये।

यह विचार कर राजा सत्यन्धर ने एक शिल्पी की सहायता से एक मोर के आकार का विमान बनाया, उस मोर में चाबी भर देने पर वह मोर आकाश में उड़ता था। सत्यन्धर अपनी गर्भवती विजया रानी को उस मोर पर बिठा कर आकाश में विहार कराने का अभ्यास करता रहा।

उधर दुष्ट काष्ठाङ्गार ने एक दिन मन्त्रियों को अपने पास बुलाया और उनसे कहने लगा कि मुझे कहते हुए बहुत लज्जा आती है, उसी लज्जा के कारण मैं बहुत दिनों से आपके सामने कुछ कह नहीं सका, परन्तु अब मुझसे बिना कहे रहा भी नहीं जाता, विवश (लाचार) होकर कहना ही पड़ता है।

एक देव प्रतिदिन मुझे आकर तंग करता है, वह कहता है कि 'सत्यन्धर राजा को समाप्त कर दो (मार डालो)।' मैं ऐसा

करना अच्छा नहीं समझता, किन्तु क्या करूं वह मुझे ऐसा कृत्य करने के लिये बाध्य (लाचार) कर रहा है ।

काष्ठाङ्गार की बात सुनकर उसके साले 'मथन' ने काष्ठाङ्गार की बात का समर्थन किया कि राज-व्यवस्था ठीक चलाने के लिये आपका कुशल-पूर्वक स्वस्थ रहना परम-आवश्यक है, यदि आप उस देव की आज्ञा न मानेंगे तो आपके प्राण सङ्कट में पड़ जायेंगे। विषयवासना का शिकार सत्यन्धर, राज-पद के योग्य रहा भी नहीं। कामातुर नृपति अपनी प्रजा की सुरक्षा एवं सुव्यवस्था नहीं कर सकता। प्रजा सदा अपने राजा का अनुकरण किया करती है, तदनुसार सत्यन्धर को रात दिन कामवासना में फँसा हुआ देख कर जनता में भी यह दुर्गुण फैलता जा रहा है, अतः ऐसे राजा का न होना ही अच्छा है।

काष्ठाङ्गार और मथन की बातें सुन कर सब मन्त्री दङ्ग रह गये। वे सब सत्यन्धर राजा के हितैषी तथा राजभक्त थे सत्यन्धर के अनिष्ट और अपमान करने का विचार उन्हें बहुत बुरा लगा, परन्तु वे काष्ठाङ्गार की दुर्जनता को खूब जानते थे, इस कारण उसके सामने उसके बुरे विचारों के विरुद्ध बोलने का साहस भी उनमें नहीं था, ऐसी दुविधा में उनका हृदय फंस गया और उनके मुख से एक भी शब्द न निकला। वे सब एक दूसरे का मुख देखने लगे।

उन मन्त्रियों में एक धर्मदत्त नामक मन्त्री भी था वह अपने नाम के अनुसार सचमुच धर्मदत्त ही था। अन्याय अनीति का वह डटकर विरोध करता था और न्याय नीति की बात कहने में

वह अपने प्राणों की भी चिन्ता न करता था। जब उसने अपने साथ के मन्त्रियों को मौन (चुप) देखा तब उससे चुप न रहा गया, वह निर्भय होकर बोला कि—

राजा सत्यन्धर न्याय नीति पर चलने वाला आदर्श शासक है, उसने अपने जीवन में अब तक कोई भी ऐसा कार्य नहीं किया जिस से प्रजा की कोई हानि हुई हो, कभी भी प्रजा के ऊपर रंचमात्र भी अत्याचार, दुराचार नहीं किया। सज्जनों की उन्नति करना, दुर्जनों का दमन करना, दीन दुखियों की रक्षा करना उसका काम रहा है, इसी लिये उसके राज्य में सिंह और हिरन एक घाट पर पानी पीते हैं, प्रजा में उसके विरुद्ध कोई लेशमात्र भी क्षोभ नहीं, सब जगह सुख-शान्ति फैली हुई है। ऐसे न्यायी धर्मप्रिय राजा को मारने के लिये कोई भी देव प्रेरणा नहीं कर सकता।

आपको इतने ऊंचे पद पर बिठाकर, आपके ऊपर विश्वास कर के उन्होंने राजभार आपको सौंपा है, तब आपको राजा सत्यन्धर के साथ ऐसे विश्वासघात की बात स्वप्न में भी न सोचनी चाहिये, विश्वासघात बड़ा भारी पाप है।

हम लोगों को जो इतने ऊंचे आसन पर राजा सत्यन्धर ने बिठाया है इस के लिये हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिये। कृतज्ञता को नष्ट-भ्रष्ट करके हम उनके मारने का षड्यन्त्र करें यह बड़ी भारी कृतघ्नता है। कृतघ्नता से बड़ा पाप और दूसरा नहीं है। इस-लिये राजा को मारने की बात हृदय से निकाल दीजिये।

सत्यन्धर राजा अपनी (विवाहित पत्नी) से रमण करते हैं, यह कोई न दुराचार है, न कोई अत्याचार। वे हिंसा, असत्य-भाषण, व्यभिचार आदि दुर्गुणों से दूर हैं। उनके शासन में धर्म, नीति, सदाचार सुरक्षित रहा है। ऐसे सर्व उपकारी भूपति का सदा सन्मान करना चाहिये, प्रजाहितैषी, विश्व उपकारी राजा का अनिष्ट सोचना या करना बुद्धिमान् दूरदर्शी मनुष्य के लिये तथा राज्य के लिये अनुचित और हानिकारक है। मन्त्री का कार्य योग्य हितकर मन्त्र-सम्मति देना है, वह कर्तव्य मैंने निभाया है, आशा है आप इस पर विचार करके उचित कार्य करेंगे।

धर्मदत्त मन्त्री के सत्य हितकारी वचन काष्ठाङ्गार को बहुत कड़वे लगे, क्योंकि वे उसके स्वार्थ-साधन में वाधा पहुंचाने वाले थे। दूध यद्यपि मीठा होता है परन्तु पित्तज्वर जिस मनुष्य को हो उसको मीठा दूध भी कड़वा स्वाद देता है, यही दशा काष्ठाङ्गार की थी।

काष्ठाङ्गार धर्मदत्त की नीति-भरी बातों का उत्तर न दे सका, किन्तु उसने मन्त्री की एक भी बात पर ध्यान नहीं दिया, बल्कि धर्मदत्त को बन्दीघर (जेल) में भेज दिया। सो ठीक है सर्प को दूध पिलाने से वह दूध विष बन जाता है।

सत्यन्धर का वीर-मरण

तदनन्तर काष्ठाङ्गार ने राजा सत्यन्धर को मार डालने के लिये अपने साले मथन के साथ कुछ सेना भेज दी।

राजपुरी की जनता ने जब यह देखा तो सब स्त्री पुरुषों को दुख हुआ। वे सब आपस में कहने लगे कि दुष्ट मनुष्य उपकार

के बदले में अपकार (बुराई) ही करता है। राजा सत्यन्धर ने लकड़हारे काष्ठाङ्गार को इतने ऊंचे पद पर बिठाया, उसके बदले में काष्ठाङ्गार आज अपने उपकारी की हत्या करा रहा है। आज सब राज-अधिकार उसके हाथ में है वह जो चाहे कर सकता है। अन्याय को रोकने वाला ही यदि अन्याय करे तो उसको कौन रोके ? इस कृतघ्नी संसार को धिक्कार है, और धिक्कार है हमारी निर्बलता को, जो अपने नेत्रों से ऐसा अन्याय होते देख-कर इसको रोक भी नहीं सकते। राजा सत्यन्धर की भूल आज उसके ही प्राणों की गाहक बन गई है।

काष्ठाङ्गार की सेना जब सत्यन्धर के राजमहल के निकट पहुँची तब द्वारपाल ने महल में जाकर राजा को सूचना दी कि आपके विरुद्ध काष्ठाङ्गार की सेना आ रही है।

यह समाचार सुनते ही सत्यन्धर का क्षात्र-तेज जागृत हो गया, शूर-वीरता उसके हृदय में, मुख पर तथा नेत्रों में उतर आई और उसकी भुजायें शत्रु को पराजय दिखाने के लिये फड़क उठीं। उसने उसी समय बिना कुछ चिन्ता किये, धनुषबाण और तलवार को उठाया। उसके मन में रंच मात्र भी शंका न हुई कि मैं अकेला हूं और मेरे सामने १०-५ योद्धा नहीं बल्कि एक सेना है। नेत्र लाल करके अपने नीचे के होठ को दांतों से चबाता हुआ युद्ध के लिये तत्काल तयार हो गया।

विजया रानी को अपने पहले स्वप्न का स्मरण हो आया, उसके मस्तक में उस स्वप्न का बुरा परिणाम आज सामने आता हुआ दिखाई देने लगा। अब उसको आभास हुआ कि मेरे शरीर

और हृदय का ईश्वर आज मुझ से सदा के लिये विदा हो रहा है।

ऐसा विचार आते ही उसके नेत्रों के सामने अन्धकार छा गया और वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

युद्ध में जाते समय अपनी प्रिय रानी को मूर्छित देखकर सत्यन्धर का हृदय करुणा और व्याकुलता से भर आया, उसने तलवार धनुषवाण एक ओर रखकर रानी को उठाया और शीतल जल के छींटों तथा शीतल वायु से उसे सचेत किया, फिर बहुत मीठे शब्दों में उसको कहने लगा कि—

"प्रिय देवी ! तुम वीर क्षत्रिय की पुत्री हो, वीर क्षत्रिय की पत्नी हो और वीर क्षत्रिय की माता बनने-वाली हो फिर भी वीर-कर्तव्य से भयभीत होती हो ? वीर-क्षत्रिय मृत्यु से कभी नहीं डरता, वह सदा सिंहकी मौत मरता है, कुत्तेकी मौत नहीं। अपमान सहन करना वीरों का काम नहीं। कायर अपने जीवन में अपमानों की ठोकरें खाकर सैकड़ों बार मरा करते हैं किन्तु वीर केवल एक ही वार वीरता के साथ प्राण देता है। आत्मा अमर है, उसका कभी नाश नहीं होता। जड़ शरीर को बचाने के लिये आत्मा को अपमान से पतित करना अच्छा नहीं। संसार में संयोग सदा नहीं रहता. किसी न किसी दिन वियोग होता ही है। यदि मेरा जीवन अभी शेष है तो शत्रु को जीत कर अभी आता हूँ, अन्यथा कोई चिन्ता नहीं। संसार में कोई दश दिन पहले चल देता है और कोई दश दिन पीछे।

तुम्हारे गर्भ में वीर पुत्र है, नौवां मास है, उसकी रक्षा करके वीर-पत्नी की तरह वीर-माता भी बनो, वीर क्षत्रियाणी ऐसी बातों से घबड़ाती नहीं।"

इस तरह बड़े प्रेम से समझा कर—अच्छी तरह सान्त्वना देकर सत्यन्धर ने रानी को मयूरयन्त्र पर बिठा दिया और उस यन्त्र को चाबी देकर आकाश में उड़ा दिया। रानी के आकाश में उड़ते ही राजा का हृदय फिर वीरता से भर आया और क्षण भर में अपने अस्त्र-शस्त्र उठा कर युद्ध के लिये चल पड़ा।

राज-भवन से बाहर निकलते ही उसको अपने सामने युद्ध के लिए तयार खड़े हुए सैनिकों की पंक्ति दिखाई दी। सैनिकों को देख कर सत्यन्धर को पहल तो हृदय में कुछ दुःख हुआ कि जो सैनिक मैंने ही सेना में नियुक्त किये थे और जो कुछ दिनों पहले मेरी आज्ञा-अनुसार चलते थे, वे ही सैनिक आज मेरे ऊपर आक्रमण करने और मेरे ही प्राण लेने के लिए आए हैं।

उधर सैनिक भी राजा सत्यन्धर को अपने सामने आया देख कर कुछ झेंपे, उनको अपने ही स्वामी के साथ युद्ध करने में कुछ संकोच हुआ और मन में बहुत आत्मग्लानि (अपने लिये नफरत) हुई, उन्होंने अपने मन में कहा कि हम-जैसे चाकरों के जीवन को धिक्कार है जिनको दूसरे मनुष्य के संकेत पर अपनी इच्छा के विरुद्ध अनुचित नीच काम भी करने पड़ते हैं, जिस राजा सत्यन्धर ने हमको सेना में नियुक्त किया, उसी अपने उपकारी स्वामी को मारने के लिए हमको आना पड़ा है। छिः छिः।

पल भर में सत्यन्धर का मनोभाव बदल गया, उस के मन में क्रोध और वीरता जाग उठी और वह अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाल कर उन सैनिकों पर इस तरह टूट पड़ा जिस तरह सिंह हिरनों के झुण्ड पर कूद पड़ता है। सत्यन्धर वीर क्षत्रिय था, अनेक राजशत्रुओं को युद्ध में हरा चुका था, अपने ही नौकरों को लड़ने के लिए सामने आया देख उसका रौद्र क्रोध और भी अधिक उग्र हो गया। अतः वह और भी अधिक वीरता से तलवार चलाने लगा। देखते २ ही सैकड़ों सैनिकों को उसने मृत्यु का अतिथि (मेहमान) बना दिया। जिधर वह आगे बढ़ता, उधर भगदड़ मच जाती। जैसे किसान अपनी पकी हुई कृषि (फसल) को सफाई से काटता है,उसी तरह सत्यन्धर की तलवार सैनिकों के शिर धड़ से अलग कर रही थी।

इस तरह सत्यन्धर के प्रबल पराक्रम ने काष्ठाङ्गार की भेजी हुई सेना का मुख फेर दिया और वह पीछे भागने पर उद्यत हो गई। उसी समय सत्यन्धर के चित्त में दया का भाव जागृत हुआ, वह विचारने लगा कि "मैं कर क्या रहा हूँ, अपना एक शरीर बचाने के लिये कितने मनुष्यों का वध कर चुका हूँ। क्या मृत्यु मुझको छोड़ देगी ? ये तो बेचारे नौकर हैं, काष्ठाङ्गार ने इनको जैसी आज्ञा दी वैसा इनको करना पड़ा, इनका इसमें क्या अपराध है ? यदि विषय-भोगों में आसक्त होकर मैं ही काष्ठाङ्गार को राज अधिकार न सौंपता तो आज ये बेचारे मुझ से लड़ने के लिये क्यां आते ? विजया के सुन्दर रूप ने मुझे पथ-भ्रष्ट किया,जिस से मैं स्वयं राजभ्रष्ट हुआ, मन्त्रियों के समझाने

पर भी सचेत न हुआ, उस त्रुटि (गलती) का परिणाम तो मुझे मिलना ही चाहिये । ओह ! विजया का सुन्दर रूप मेरे लिये कितना भयानक सिद्ध हुआ !

किन्तु मैं क्या सोच रहा हूँ, विजया की सुन्दरता ने तो मुझे रात-दिन कामातुर होने के लिये बाध्य नहीं किया था, विजया रानी बेचारी पतिव्रता है. मेरी हितकांक्षिणी है, उसने मुझे कब कहा था कि 'तुम राजकार्य छोड़कर सदा मेरे साथ रमण करो' यह तो सब कुछ मेरी ही लालसा थी । मैं स्वयं भी अपने कर्तव्य से भ्रष्ट हुआ और विजया को भी मैंने अपनी सतत तीव्र वासना का लक्ष्य बनाया । अतः मुझे धिक्कार है ।

मैं यदि अपने अपमान का बदला लेना चाहता हूँ तो इन बेचारे सैनिकों पर तलवार का हाथ क्यों उठाऊं ? काष्ठाङ्गार से ही बदला क्यों न लूँ और काष्ठाङ्गार भी बेचारा मेरा क्या कर सकता है, यह तो सब शुभ, अशुभ कर्म की विचित्र लीला है । अतः मैं यदि मृत्यु से बचना चाहता हूँ, तो मुझे संयम, शान्ति, क्षमा, त्याग, तप के शस्त्र लेकर कर्मों को रणभूमि में धराशायी कर देना चाहिए, मेरे लिये अब भी अवसर है ।"

ऐसा विचार करके सत्यन्धर ने अपने अस्त्र-शस्त्र पृथ्वी पर फेंक दिये, अपना कवच तथा वस्त्र उतार कर रख दिये और संसार, शरीर तथा विषय-कामना से मोह-ममता तोड़ दी । इस तरह विरक्त होकर उसी युद्धक्षेत्र में स्वच्छ स्थान पर आत्म-चिन्तन में बैठ गया, अपने मन के विकार भाव दूर करके निर्मल मन से आत्मध्यान करने लगा ।

ठीक है 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' यानी—जो सांसारिक कार्यों में शूर वीर पराक्रमी होते हैं, वे ही प्रतापी पुरुष आत्म-धर्म-साधन में भी वीर होते हैं।

निःशस्त्र, शान्त, निर्विकार, आत्मध्यान में लीन राजा सत्यन्धर को देखकर एक सैनिक ने तलवार से उसका शिर काट दिया। उस सैनिक ने सत्यन्धर का शिर तो धड़ से अलग कर दिया किन्तु वह सत्यन्धर का चित्त आत्मध्यान से अलग न कर पाया। एवं सत्यन्धर ने शान्त समाधि के साथ वीर-मरण किया।

सत्यन्धर का मरण समाचार राजपुरी में तत्काल फैल गया। समस्त जनता ने अपने प्रिय न्यायी राजा की मृत्यु सुनकर दुःख-अनुभव किया। सब स्त्री पुरुष सत्यन्धर की सज्जनता और काष्ठाङ्गार की दुर्जनता की चर्चा परस्पर करने लगे। अनेक विचार-शील मनुष्य जगत-विभूति और शरीर की अस्थिरता विचार कर संसार से विरक्त हो गये। अनेक स्त्री-पुरुषों के हृदय में बहुत क्षोभ उठ खड़ा हुआ और काष्ठाङ्गार के लिये घृणाभाव तो सभी के मन में जागृत हो उठा।

जीवन्धर का जन्म

इधर काष्ठाङ्गार अपने षड्यन्त्र को सफल हुआ देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, तथा मथन (उसके साले) ने उस से भी अधिक हर्ष प्रगट किया।

उधर मयूर-विमान की जब चाबी समाप्त हुई तब वह राज-पुरी की श्मशान-भूमि में जा उतरा, विजया रानी उस विमान से ज्यों ही उतरी कि उसको प्रसव-वेदना हो आई। राजपुरी की

वह पट्टरानी अपने उदर की सन्तान का प्रसव करने के लिये उस श्मशान में एक ओर जा कर बैठ गई।

संसार की दशा विचित्र है, भाग्यशाली राज-पुत्र को जन्म लेने के लिये वह स्थान मिला जहां पर कि मृतक (मुर्दे) स्त्री-पुरुषों का दाह-संस्कार होता है। महाबली नारायण कृष्ण का जन्म बन्दीघर (जेल) में हुआ और पराक्रमी हनुमान वन की एक गुफा में उत्पन्न हुए थे।

प्रसूति का समय निकट आ जाने पर दैवयोग से वहां एक देवी धाय के रूप में आ गई, उसने विजया रानी को बहुत आराम के साथ प्रसव कराया। विजया ने एक महान् तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया।

पुत्र का सुन्दर दीप्तिमान मुख देख कर विजया क्षण भर के लिये सब कुछ भूल गई और उसने उस बच्चे को अपनी छाती से चिपटा लिया, बार बार उसका कान्तिमान मुख देखकर उसका मुख चूमने लगी, उसके मन में हर्ष हिलोरें लेने लगा। किन्तु दूसरे ही क्षण में जब उसने श्मशान-भूमि देखी तब उसको अपना राजभवन स्मरण हो आया, अपनी कोमल शय्या और दासियों की सेवा उसके मन में साकार घूमने लगी, सत्यन्धर राजा का अटूट प्रेम का दृश्य उसके नेत्रों के सामने दिखाई देने लगा।

उस समय तो उसका सारा हर्ष कपूर की तरह उड़ गया और दुख का स्रोत बड़े वेग से बह उठा। दोनों नेत्र वर्षा-ऋतु के दो नालों की तरह बहने लगे। रोते हुए कहने लगी हे पुत्र ! तेरे जन्म पर आज राजपुरी में कितना हर्ष मनाया जाता, आज मैं अपने

आंसुओं से इस निर्जन श्मशान भूमि में अपना हृदय ठंडा कर रही हूँ। राजपुत्र! कहां तू राजभवन में राज-सी वस्त्र-आभूषण पहन कर सुवर्ण रत्न जड़े हिंडोले में भूलता, कहां तू आज मुर्दों की भूमि में लेटा हुआ है। हे आर्यपुत्र! (सत्यन्धर) तुमने मुझे तो मयूर विमान में बिठाकर जीवित रक्खा किन्तु तुम अपने आपकी भी तो कुछ चिन्ता करते? तुम्हारे विना यह राजपुरी की रानी श्मशान-भूमि में अनाथिनी बनी बैठी तुम्हारी बाट देख रही है। और नहीं तो कम से कम अपने इस नवजात पुत्र का मुखचन्द्र तो देख जाओ।

विजया का करुणाक्रन्दन सुनकर वहां के पशु-पक्षियों का हृदय भी पिघल गया, धाय (देवी) भी कुछ समय तक करुणा से रो उठी, फिर स्वस्थ होकर रानी से बोली 'देवी! यह श्मशान-भूमि है, यहां पर जीवन मरण का पाठ सीखो, संसार में राज-सुख तो क्या, किन्तु यह जीवन भी अमर नहीं रहता। सूर्य अस्त होता है, तोचन्द्र का उदय होता है। पिछली बातें छोड़ो, अपने प्रतापी पुत्र को देखो, तुम्हारे मुख की ओर मधुर दृष्टि से देख रहा है कि मेरी माता मेरे जन्म पर रो रही है! क्या मेरा जन्म मेरी माता को अरुचिकर है?

देवी की बात सुन कर विजया ने झट पुत्रको उठा कर छाती से लगा लिया और अपने सारे दुख भूल गई, किन्तु मोहवश उसके नेत्र फिर डबडबा आये, उसने देवी से पूछा कि सखी! इस राजपुत्र का पालन-पोषण कैसे होगा?

देवी ने कहा—राजसी ढंग से।

रानी ने पूछा—कैसे ? राजसी ठाठ तो अब स्वप्न हो गया।

देवी ने कहा—इस बच्चे को यहीं पर लिटा दो, अभी थोड़ी देर में एक भाग्यशाली सम्पन्न पुरुष इसको अपने घर ले जायेगा और वह राजसी ढंग से इसको पालेगा।

अन्य कोई उपाय न देखकर विजया रानी ने काठकी पुतली की तरह देवी का कहना मान लिया और अपने नवजात (तत्काल पैदा हुए) पुत्र का मुख चूम कर, छाती से लगा कर फिर वहां पर लिटा दिया और कहा कि पुत्र ! तेरी अभागिनी माता तेरा पालन भी न कर सकी। राजवैभव छूट गया. प्राणनाथ छूट गये और मेरे हृदय के अंश प्रिय पुत्र ! अब तू भी मुझसे छूट गया, एक ही दिन में मुझ से सब कुछ छूट गया। मैं दो दिन भी तेरी बालक्रीड़ा न देख पाई। हाय रे अभाग्य !

वह देवी और विजया रानी वहां पर एक ओर आगामी दृश्य (नज़ारा) देखने के लिये छिप गईं।

जीवन्धर का पालन पोषण

राजपुरी में एक अच्छा धनिक सेठ गन्धोत्कट रहता था, उसके घर कोई सन्तान न थी, एक निमित्त-ज्ञानी ने उसको बतलाया था कि कुछ समय पीछे तेरे पुत्र होगा, किन्तु वह मरा हुवा होगा। जब तू उसे श्मशान-भूमि में रखने जायेगा, तब तुझे वहीं पर एक दूसरा सुन्दर, भाग्यशाली, तेजस्वी बच्चा मिलेगा, उसको तू अपने घर लाकर पालन पोषण करना।

निमित्तज्ञानी की भविष्य-वाणी आज सत्य प्रमाणित हुई, गन्धोत्कट के घर पुत्र तो उत्पन्न हुआ किन्तु मृतक। गन्धोत्कट की पत्नी को पुत्र-जन्म का बहुत हर्ष हुआ, उसके बन्ध्यापन की आशंका दूर हुई किन्तु मरा-हुआ बच्चा देखकर बहुत दुख भी हुआ कि नौ मास की गर्भवेदना अन्त में एक नई वेदना पैदा करके समाप्त हुई, परन्तु भाग्य की घटना में दूसरा उपाय भी क्या ?

गन्धोत्कट को निमित्तज्ञानी के वाक्य स्मरण हो आये, वह उस मरे-हुये बच्चे को लेकर श्मशान पहुंचा; वहां उसका अन्तिम संस्कार करके इधर-उधर कुछ ढूंढने लगा, जैसे कि दरिद्र पुरुष परिश्रम से संचित की हुई रकम के खो जाने पर बड़े ध्यान से पृथ्वी की छान-बीन करता है।

कुछ दूर पर गन्धोत्कट को विजया का पुत्र लेटा हुआ मिला, जो कि अपने हाथ का अंगूठा चूसकर किलकारियां ले ले कर उस प्रदेश को हर्षित कररहा था।

गन्धोत्कट को एक महान वैभव मिला, उसने उस खिले हुए पुष्प के समान सुन्दर बच्चे को अतुल हर्ष के साथ उठा लिया। गन्धोत्कट को पुत्र-उत्पत्ति से भी अधिक हर्ष इस राज-पुत्र को अनायास पा जाने से हुआ। किलकारियां लेते हुये बच्चे का मुख चूमकर उसने उस शिशु को अपनी छाती से चिपटा लिया, और ज्यों ही घर जाने को तयार हुवा कि—

विजया ने उच्च स्वर से अपने बच्चे को आशीर्वाद देते हुए कहा "जीव" यानी—जीता रह।

गन्धोत्कट ने आश्चर्य से चारों ओर देखा कि यह शब्द किसके मुख से निकला है किन्तु छिपी हुई विजया रानी उसे दिखाई न दी। गन्धोत्कट ने उस आशीर्वाद को सुनकर वहीं पर निर्णय कर लिया कि इस बच्चे का नाम "जीवन्धर" रक्खूंगा।

वह हर्ष में फूला हुआ जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ अपने घर आया और बनावटी क्रोध में अपनी पत्नी से बोला कि तू बहुत मूर्ख है, तूने बिना कुछ देखे भाले जीवित पुत्र को मरा-हुआ कह दिया। ले देख इसके खिले-हुए मुख-कमल को तो देख।

गन्धोत्कट की बात सुनकर उसकी पत्नी सुनन्दा चकित हो गई कि उसका पति क्या बात कह रहा है? उसने झटपट उठकर गन्धोत्कट के हाथों में जब नवजात बच्चा देखा जो कि प्रसन्न-वदन है, अपने हाथ का अंगूठा चूस रहा है, अव्यक्त बाल-भाषा में कुछ गुनगुना रहा है, और प्रफुल्लित नील-कमल जैसे अपने नेत्रों से आकाश की ओर देख रहा है। तो वह हर्ष से उछल पड़ी और बड़ी उत्सुकता के साथ उसने उस सुन्दर बच्चे को सचमुच अपना ही बच्चा समझ कर अपनी गोद में ले लिया और उसका मुख चूम कर उसको स्नेह-भरी दृष्टि से बार-बार देखने लगी, सुनन्दा के स्तनों से दूध झरने लगा, उसने बड़े प्रेम से उसको दूध पिलाया।

गन्धोत्कट का वह घर जो कुछ समय पहले पुत्र-मृत्यु के कारण शोक का घर बना हुआ था, चारों ओर उदासी छाई हुई थी, गृह-स्वामिनी सुनन्दा का आनन्द कपूर की तरह उड़ चुका

थी, अब उसी घर को कण-कण हर्ष में हिलोरें लेने लगा। जनक, जननी तो आनन्द में उन्मत्त हो उठे, साथ ही परिवार के परिजन तथा मित्र, सम्बन्धी भी इस अघटित सुघटना से बहुत हर्षित हुए. वे गन्धोत्कट और सुनन्दा को वर्द्धापन (बधाई) देने लगे।

घर में रागरंग हो उठा, आनन्द के बाजे बजने लगे, नाच-गाने आदि से घर नाटकघर की तरह आनन्द से गूंज उठा। गन्धोत्कट ने पुत्र-जन्म का बहुत भारी उत्सव किया। जो राजपुरी सत्यन्धर के मरण से एक ओर शोक में डूबी हुई थी वही राजपुरी दूसरी ओर श्मशान से आये हुए सत्यन्धर के पुत्र के कारण रागरंग में नाच उठी, किन्तु यह यथार्थ भेद राजपुरी में किसी को भी ज्ञात (मालूम) न हुआ, स्वयं गन्धोत्कट को भी पता न लगा कि 'मैं जिस बच्चे का उत्सव कर रहा हूं वह नृपति सत्यन्धर का राजपुत्र है।'

गन्धोत्कट के घर का यह हर्ष समाचार काष्ठाङ्गार के कानों में भी जा पहुँचा, उस दुर्जन-आत्मा मूर्ख ने समझा कि गन्धोत्कट यह सब कुछ मुझे राजसिंहासन मिल-जाने के हर्ष में कर रहा है। उसने गन्धोत्कट को बहुत धन पारितोषिक में दिया, और उस समय राजपुरी में उत्पन्न हुये बच्चे भी गन्धोत्कट के बच्चे के साथ पलने के लिये गन्धोत्कट के घर पहुंचा दिये।

रानी विजया

उधर श्मशान-भूमि में विजया को फिर अपने पति और पुत्र के वियोग के शोक ने आ घेरा और वह फिर करुणा-रुदन के

अपने पति और पुत्र की याद कर करके रोने लगी, पुत्र के वियोग से वह अधीर हो उठी. हिचकियां लेते हुए कहने लगी कि पुत्र ! तेरे मुख में अपने प्राणनाथ की काया देखकर मैं तेरे सहारे ही जीवित रहती, तू भी मेरी गोद से चला गया। अब मैं किसके सहारे यह लम्बी जीवन-यात्रा तय करूंगी ? इस विशाल अनन्त संसार में हाय अब मेरा कोई भी तो न रहा, राजपुरी मेरे लिये शोकपुरी बन गई और इस श्मशान ने भी मुझे एक दिन भी शान्ति की सांस न लेने दी। हाय प्राणनाथ ! हाय पुत्र!!

धाय रूप-धारिणी देवी ने विजया का उच्च स्वर में संबोधन किया कि रानी ! तू क्या कह रही है ? श्मशान-भूमि में भी तू जीवन मरण का, अपने पराये का भेद न समझ पाई। क्षण भर पहले सेठ ने जो पुत्र अपना समझा था दूसरे ही क्षण उसे अपने हाथों से यहाँ छोड़ गया, और जिसको तूने अपना समझा था। उसको उसने अपना लिया। जिस पुत्र को माता अपना समझती है, उसमें से आत्मा दूर होते ही एक पल भी उसे अपने घर में नहीं रहने देती, पिता अपने हाथों से ही उस प्राणप्रिय पुत्र को यहाँ जलाकर राख कर जाता है। तू जिसे अपना पुत्र समझती है उसका शरीर कर्म उदय से तेरे पेट में रज-वीर्य के मिश्रण से बना, उस शरीर में कहीं से कोई आत्मा आ गया, अब बता, तू उस शरीर को अपना समझती है जो कि यहां जलकर भस्म हो जाता है, या उस आत्मा को अपना मानती है जो कर्म-उदय से न जाने कहाँ से आया है ? जरा विवेक से काम ले, तेरे माता,

पिता, पति जब तुझे अपने साथ न रख सके, तब तू किसको अपने साथ रख सकती है ?

इसलिये इस मोह-अन्धकार से बाहर निकल, तू अब अपने आत्मा में ज्ञान की ज्योति जगा और अपने सुख-भण्डार को देख। अब तू घर के बन्धन से छूट गई है। इसको अपना सौभाग्य समझ! तू अब तप, त्याग, संयम से अपनी आत्मशुद्धि कर, जिससे जन्म-मरण की बेड़ी टूट फूट जावे।

विजया रानी ने बड़े धैर्य और शान्ति से देवी के वचन सुने, उसकी अन्तर्दृष्टि खुल गई, मोह-अन्धकार से वह बाहर निकली और उसने देवी से कहा कि सखी! मुझे किसी ऐसे स्थान पर ले चल, जहां संसार की मोह-माया अपनी छाया भी न डालती हो, मैं अब सचमुच निश्चिन्त हूं, इस नरदेह से कुछ आत्म-शुद्धि करूंगी, चल मुझे शीघ्र यहां से किसी शान्ति-स्थल पर ले चल।

देवी को बहुत प्रसन्नता हुई, वह विजया रानी को दण्डक वन के तपोवन में ले गई। वह स्थान संसार के अशान्त वातावरण से दूर था, वहाँ पर बहुत से तपस्वी शान्ति के साथ पवित्र मन से तपश्चर्या करते थे। देवी ने विजया के लिये एक छायादार पेड़ के नीचे एक फूंस की झोंपड़ी बना दी, उस झोंपड़ी में रहन-सहन के सब साधन जुटा दिये और कुछ दिन वह वहाँ पर विजया के साथ रही।

जब उसने देखा कि विजया ने मोह पर विजय पा ली है, अब

उसके मन में पति, पुत्रकी स्मृति (याद) मिट-सी चुकी है और उसे आत्म-चिन्तन में, ज्ञान अभ्यास में रस आने लगा है, वह आत्म-शुद्धि के सीधे कठिन मार्ग पर चल पड़ी है, संसार की मोह-ममता उससे दूर भाग गई है, और उसका चित्त इस तपोभूमि में लग गया है, तब वह अपना काम समाप्त हुआ जानकर एक दिन किसी बहाने वहाँ से चली गई।

विजया रानी शान्ति के साथ वहाँ अपने नये जीवन का समय बिताने लगी।



द्वितीय प्रसङ्ग

जीवंधर का बाल्यकाल

सत्यन्धर के राजपुत्र जीवन्धर का पालन-पोषण सेठ गन्धोत्कट और उसकी गुणवती गृहिणी सुनन्दा बहुत प्रेम से करने लगी। जीवन्धर अपने समान आयु-वाले बच्चों के साथ दूज के चन्द्र-समान बढ़ने लगा। जीवन्धर की बाल-लीला देखकर धर्म-पिता माता को बहुत प्रसन्नता होती थी।

तोतली रसना से मीठे वचन बोलना लड़खड़ाते हुए पैरों से उठना, चलना, गिरना, फिर उठना, भागना, मुस्कराना, हंसना, खेलना आदि बाल्य-क्रीडाओं से गन्धोत्कट और सुनंदा का घर सदा हर्ष का रंगमञ्च बना रहता था।

कुछ दिनों पीछे सुनंदा गर्भवती हुई, उस गर्भकाल में परम-सुन्दर, गुणी पुत्र जीवंधर की ललित बालक्रीड़ा सुनंदा के नेत्रों और हृदय को मोहित करती रही, जीवंधर की प्रत्येक चेष्टा, हाव, भाव विलास सुनंदा के हृदय में उल्लास भरता रहा। नौ मास पीछे सुनंदा के उदर से एक सुन्दर पुत्र ने जन्म पाया। उस शिशु का रूप मुख, नेत्र, नाक, कान आदि सभी अङ्ग-उपाङ्ग जीवंधर के ही समान सुन्दर थे। जीवंधर की आकृति उस बच्चे में ज्यों की त्यों उतर आई थी।

ठीक है—गर्भ समय में माता जैसे बच्चों को, जैसे चित्रों को

देखती रहती है, अपने मन में जैसे सुन्दर-असुन्दर पुरुष का विचार करती रहती है, उसी प्रकार रंग रूप, गुण आदि गर्भस्थ शिशु पर अंकित हो जाया करते हैं। तदनुसार सुनंदा के प्रसूत बच्चे की शरीर-आकृति पर भी जीवंधर का रूप ज्यों का त्यों उतर आया।

उस पुत्र का नाम 'नन्दाढय' रक्खा गया। घर में नंदाढय के आ जाने से शिशु जीवंधर की शोभा और भी अधिक बढ़ गई। जीवंधर नंदाढय से बहुत प्रेम करता था, नंदाढय भी जीवंधर से बहुत प्रसन्न रहता था। दोनों में राम लक्ष्मण अथवा बलभद्र नारायण के समान भ्रातृ स्नेह था।

एक दिन जीवंधर अपने मित्रों के साथ नगर के बाहर कुछ दूर पर खेल रहा था, धूल मिट्टी से उसका शरीर धूसरित हो गया किंतु शरीर की सुन्दरता ऐसी निखर रही थी जैसे बादलों में से झिलमिलाता हुआ चन्द्र हो। उसी समय उस मार्ग से आते हुए एक यात्री ने उन बच्चों से पूछा कि यहाँ से नगर कितनी दूर है ?

जीवन्धर ने तपाक से मधुर बाल-वाणी में उत्तर दिया कि आप इतना भी नहीं समझते ? बच्चों को खेलता हुआ देखकर आपको स्वयं विचार लेना चाहिये कि नगर समीप में ही है।

जीवन्धर का उत्तर सुनकर उस यात्री को बड़ी प्रसन्नता हुई उसने मन में विचारा कि यह लड़का बहुत बुद्धिमान तथा होन-हार प्रतीत होता है।

उसने जीवंधर से कहा कि बच्चे ! मुझे भूख बहुत लग रही

है, जरा अपने घर ले चल।

जीवंधर के मन में दया की लहर दौड़ी, वह उसे अपने घर पर लिवा लाया और अपने रसोई-घर में ले जाकर उस आगंतुक अतिथि को भोजन करने बिठा दिया, साथ ही आप भी भोजन के लिये बैठ गया।

जीवन्धर ने देखा कि वह मनुष्य धीरे-धीरे भोजनालय का सारा भाजन खा गया है, फिर भी उसकी भूख नहीं मिटी, यह दृश्य देख कर जीवन्धर को कुछ आश्चर्य और कुछ कौतूहल हुआ, अन्त में उसने अपने हाथ का मोदक (लाडू) भी उस मनुष्य को खाने के लिए दे दिया। जीवन्धर के हाथ के उस ग्रास को खाते ही भूखे यात्री की भूख शान्त हो गई। इससे जीवन्धर को, उस मनुष्य को तथा रसोइये को बहुत प्रसन्नता हुई।

उस मनुष्य ने विचार किया कि जीवन्धर बहुत बुद्धिमान और तेजस्वी बालक ही नहीं है बल्कि महान भाग्यशाली भी है, भष्मक रोग के कारण मेरी जो भूख इसके भोजनालय की समस्त भोज्य सामग्री खा लेने पर भी न मिटी, वह भूख जीवन्धर के हाथ का एक ग्रास खाते ही मिट गई, साथ ही मेरा भष्मक रोग [पेट में वायु प्रदीप्त हो जाने से जठराग्नि जब बहुत तीव्र हो जाती है तब भष्मक रोग उत्पन्न होता है, जिससे भोजन करने के थोड़ी देर पीछे ही भोजन पच जाता है और फिर तीव्र भूख लग आती है। इस तरह दिन में अनेक वार बहुत सा भोजन कर लेने पर भी भूख शान्त नहीं हो पाती] भी मिट गया। इस

तरह जीवन्धर ने मेरा बड़ा उपकार किया है, इसको इस उपकार का प्रत्युपकार (बदला) अवश्य देना चाहिये।

ऐसा विचार करके उस मनुष्य ने जीवन्धर के पिता गन्धोत्कट से बहुत आग्रह के साथ कहा कि मैं मनुष्य-जीवन के लिए अति उपयोगी लिखना, पढ़ना, अस्त्र शस्त्र प्रयोग, मल्ल विद्या, व्याकरण, न्याय, साहित्य, सिद्धान्त आदि अनेक विद्यायें जानता हूं, वे समस्त विद्याएं मैं आप के पुत्र जीवन्धर को सिखाना चाहता हूँ। इसने मेरा भष्मक रोग मिटा कर मेरा महान उपकार किया है, इस लिए आप मुझे इसको पढ़ाने के लिए दे दीजिये।

गन्धोत्कट को बहुत हर्ष हुआ, उसने हाथ जोड़ कर बहुत विनय के साथ उत्तर दिया कि महाराज! माता पिता तो केवल अपने पुत्र को जन्म देते हैं, किन्तु उसके जीवन-निर्माण का काम तो विद्यागुरु ही करता है। बालक-अवस्था में यदि जीवन-उपयोगी विद्या न सीखी जावे तो मनुष्य का जीवन पशु के समान अज्ञानमय रहता है। इस लिए बचपन में विद्या सीख कर शिक्षित गुणी बनना बहुत आवश्यक है।

परन्तु संसार में गुणवान सच्चरित्र गुरु का प्राप्त होना कठिन है। गुरु में केवल महान ज्ञान का होना ही आवश्यक नहीं, क्यों कि कोरा ज्ञान मनुष्य का उद्धार नहीं कर सकता, शिष्य में विनय, श्रद्धा, क्षमा, शील, संयम, ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, धैर्य, साहस आदि गुण विकसित करने के लिए गुरु में भी इन गुणों का विकास होना आवश्यक है।

आप में ये सभी गुण विद्यमान हैं, इस कारण आप ही विद्यागुरु होने के योग्य हैं। मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मुझको घर बैठे आप जैसे महान गुणी, उपकारी, सच्चरित्र, निःस्पृह, विद्वान का लाभ हुआ। जीवन्धर आप का पुत्र है, आप इसको कृपा करके वे सब विद्याएँ सिखला दीजिए, जो आप के पास हैं, आप का बहुत अनुग्रह होगा।

उस अतिथि ने कहा कि मेरा नाम 'आर्यनन्दी' है, जीवन्धर सुयोग्य शिष्य है और मेरा महान उपकारी है, अतः थोड़े से समय में इसको समस्त विद्याओं में पारङ्गत विद्वान बना दूंगा।

गन्धोत्कट ने आर्यनन्दी के रहने के लिए योग्य स्थान की तथा भोजन आदि की व्यवस्था कर दी। आर्यनन्दी गन्धोत्कट के घर रहकर जीवन्धरको पढ़ाने लगे। आर्यनन्दी ने जीवन्धर को अक्षर विद्या (लिखना पढ़ना) तथा अङ्क विद्या (गणित) सिखलाई। तदनन्तर व्याकरण, साहित्य, न्याय, सिद्धान्त आदि विषयों का अच्छी तरह अभ्यास कराया।

आर्यनन्दी जीवन्धर को बड़े प्रेम और रुचि के साथ पढ़ाते थे, उनकी भावना थी कि जीवन्धर शीघ्र सब विषयों में कुशल विद्वान बन जावें। गुरु की भावना जब हितभरी होती है तब वह अपने शिष्य को हृदय खोलकर पढ़ाता है, उस समय उसके मन में ऐसा थोड़ा विचार नहीं होता कि 'यदि मैं अपने शिष्य को सब कुछ सिखा दूंगा तो शिष्य मेरे बराबर विद्वान हो

आयगा, मेरी बराबरी करने लगेगा, इस लिए इसको अपने से कम रखने के लिए अपनी सारी विद्या न पढ़ाऊँ।'

आर्यनन्दी निःस्वार्थ गुरु थे, उनके विचार बहुत उच्च थे उन्होंने संकुचित भावना अपने हृदय में न आने दी।

उधर जीवन्धर भी बहुत गुणी था, बड़े विनय के साथ मन एकाग्र करके पढ़ता था। अपने गुरु की अच्छी सेवा करता था, उनकी आज्ञा का पालन करने में कमी न आने देता था, सब तरह से उनका अच्छा सम्मान करता था। इसके साथ ही उसकी बुद्धि भी बहुत तीक्ष्ण थी, जो कुछ उसे पढ़ाया जाता था वह उसे बहुत शीघ्र याद हो जाता था, शङ्का, तर्क-वितर्क करके वह अनेक गूढ बातें अपने गुरु से जान लेता था। उसके गुरु उसे जितना पढ़ाते थे यह अपनी प्रतिभा द्वारा उससे भी अधिक समझ लेता था। इससे आर्यनन्दी को भी जीवन्धर के पढ़ाने में बहुत आनन्द आता था।

लौकिक विषयों के साथ आर्यनन्दी ने जीवन्धर को आत्म-विद्या का भी परिज्ञान कराया। आत्मा-अनात्मा, कर्मबन्धन, संसारभ्रमण, पुनर्जन्म मरण, कर्मफल, मुक्ति आदि अच्छे विशद विवेचन के साथ समझाये। यह सब कुछ सिखाने के अनन्तर आर्यनन्दी ने जीवन्धर को अखाड़े में मल्लविद्या (कुश्ती लड़ना) सिखाई, मल्लविद्या सीख लेने के बाद जीवन्धर को धनुषबाण का चलाना, तलवार घुमाना, बर्छी चलाना, ढाल से शत्रु का

वार रोकना, व्यूह रचना, व्यूह तोड़ना, अनेक प्रकार के वाणों का प्रयोग आदि अस्त्र (जो फेंक कर चलाया जाय जैसे वाण) शस्त्र (जो हथियार फेंका न जाय जैसे तलवार) विद्या सिखलाई।

जीवन्धर क्षत्रिय राजपुत्र था, उसके पिता का वीर-क्षत्रिय-रक्त उसके शरीर में था, उसके प्रभाव से वह थोड़े समय में ही अस्त्र शस्त्र विद्या में भी निपुण हो गया।

वास्तव में ज्ञान आत्मा का गुण है, प्रत्येक जीव में वह पाया जाता है। गुरु जो अपने शिष्य का पथ-दर्शक है वह कुछ अपना ज्ञान निकाल कर शिष्य को नहीं दे देता क्योंकि यदि ऐसा होता हो तो गुरु के ज्ञान का भण्डार शिष्यों को पढ़ाते-पढ़ाते समाप्त हो जाना चाहिये, किन्तु ऐसा होता नहीं है। गुरु के पढ़ाने से शिष्य के ज्ञान के ऊपर से पर्दा हटता जाता है और शिष्य का ज्ञान चमकता जाता है, जैसे कि धूल से मैले दर्पण को रगड़ने से उसके ऊपर का मैल हट जाता है और उसमें चमक निकल आती है। चाकू में धार कहीं बाहर से नहीं आती, वह उसी में होती है, शाण पर रगड़ने से उसमें प्रगट हो जाती है। ठीक, इसी तरह ज्ञान कहीं बाहर से नहीं आता, किन्तु गुरु तथा पुस्तक आदि के निमित्त से शिष्य का ही ज्ञान विकसित हो जाता है।

इसी तरह से जीवन्धर थोड़े ही समय में बहुत भारी विद्वान् तथा शूर-वीर योद्धा बन गया। उसके साथ ही उसका छोटा भाई नन्दाढ्य तथा उसके बचपन के मित्र पद्मास्य आदि भी आर्य-नन्दी से पढ़ना लिखना, अस्त्र शस्त्र चलाना सीख गये।

गुरु-परिचय

एक दिन जब कि आर्यनन्दी प्रसन्न-चित्त बैठे थे, उस समय जीवन्धर ने एकान्त देखकर उनसे कहा कि—

गुरुदेव ! संसार में मनुष्य को महान् बनाने-वाला ज्ञानगुण है, किन्तु उस ज्ञान पर मोह-अज्ञान का पर्दा पड़ा रहता है जिससे उसकी कान्ति पत्थर में मिले रत्न-जैसी धुंधली होती है, गुरुकी असीम कृपा से जब उस ज्ञान का पर्दा दूर होता है तब वह ज्ञान स्वच्छ रत्न की तरह चमकने लगता है। ज्ञान के प्रकाश में मनुष्य अपने हित अहित का विवेक पा लेता है जिससे कि वह न केवल अपना बल्कि संसार के अन्य प्राणियों का भी उद्धार कर सकता है।

उस ज्ञान का विकास मुझ को आपके सम्पर्क से प्राप्त हुआ है, अतः आपने शास्त्रविद्या और शस्त्रविद्या सिखाकर जो मेरा महान् उपकार किया है, उसको मैं किसी भी तरह नहीं उतार सकता।

आपका पिछला जीवन जानने के लिये भी मेरे हृदयमें प्रबल उत्सुकता लहरें ले रही है किन्तु उचित अवसर न मिलने से आपके सामने अपनी इच्छा प्रगट न कर सका, आज ठीक अवसर है, आप इस समय संक्षेप से अपना जीवन-चरित्र बत-लाने की कृपा करें।

आर्यनन्दी मुस्कराये और कहने लगे कि मैं एक साधारण मनुष्य हूँ. मेरी जीवनचर्या में कोई विशेष बात नहीं, फिर भी

मेरे जीवन में जो घटनायें घटी हैं वे भी सुनने-योग्य हैं, ध्यान लगा कर सुन।

यहां से उत्तर दिशा में विजयार्द्ध पर्वत है, उस पर आकाश-गामिनी, बहुरूपधारिणी आदि अनेक प्रकार की विद्याओं के जानकार विद्याधर रहते हैं। वे अपने विद्याबल से विमान बना कर तथा बिना विमानों के भी आकाश में विहार करते हैं, अपने रूप अनेक प्रकार के बना सकते हैं, और अनेक प्रकार के दूसरे आश्चर्यजनक कार्य भी कर सकते हैं। अनेक प्रकार के मन्त्र, यंत्र, तन्त्र द्वारा वे उन आकाशगामिनी आदि विद्याओं को प्राप्त करते हैं, विद्या सिद्ध कर लेने पर (ढाई द्वीप में) वे सर्वत्र निर्द्वन्द विहार करते हैं।

विद्याधरों के एक प्रदेश का शासक 'लोकपाल' नामक एक राजा था, वह न्याय-नीति से राज करता हुआ प्रजा का पालन करता था। प्रजा भी लोकपाल को अपना हितैषी समझ कर उससे बहुत प्रेम करती थी।

एक दिन वह अपने राज-भवन की छत पर बैठा हुआ आकाश की शोभा देख रहा था। आकाश में अनेक पक्षी इधर से उधर आनन्द से उड़ रहे थे। पक्षियों से भी बहुत ऊंचे सफेद, काले, मटमैले, नीले आदि अनेक रंगों के बादल वायु के वेग से इधर उधर आ-जा रहे थे। उन बादलों के इधर उधर आने जाने से आकाश में अनेक तरह के दृश्य बनते थे और बिगड़ते थे।

पर्वत, नदी, वृक्ष, हाथी, सिंह, मंदिर, मकान, उपवन आदि के ऐसे अद्भुत चित्र बादलों के कारण अपने आप बन जाते थे कि कुशल चित्रकार भी उनका चित्र लेने के लिये लालायित हो उठे, राजा भी इन दृश्यों को एक-टक दृष्टि से देख रहा था। परन्तु पवन के झोके से कोई भी दृश्य कुछ देर तक ठहर न पाता था, क्षण भर में कुछ का कुछ हो जाता था। बादलों की ऐसी अस्थिरता, क्षण-नश्वरता देख कर राजा लोकपाल की दृष्टि अपने आत्मा की ओर गई। वह विचारने लगा—

'जिस तरह आकाश में ये बादल क्षण-क्षण में अपने अनेक रूप बदल रहे हैं, वायु का वेग उन्हें कहीं भी किसी एक आकार में स्थिर नहीं रहने देता, ठीक, इसी तरह कर्म का वेग संसारी जीव को प्रतिक्षण चक्कर दे रहा है। कर्म ने संसारी जीव को शरीर में बन्दी (कैदी) बना दिया है। इस बन्दीघर (जेल) में यह जीव अपना सारा जीवन इन्द्रियों की दासता (गुलामी) में बिता रहा है, इन्द्रियां इसको जिस ओर प्रेरणा करती हैं उसी ओर यह जीव भागता दौड़ता है, क्षण भर भी अपने आत्म-कल्याण का कोई कार्य नहीं करपाता। मोह-ममता के नशे में ऐसा अचेत हो गया है कि शरीर को ही आत्मा समझ बैठा है। इसीलिये यह रात दिन शरीर को स्वस्थ सुखी रखने का यत्न करता रहता है, किन्तु अचेतन-जड़ शरीर क्या तो सुखी होगा और क्या स्वस्थ होगा। सख और स्वास्थ्य (अपने आप में तन्मय होना) आत्मा के गुण हैं, आत्मा में ही मिल सकते हैं-शरीर में नहीं। इसलिये

अपनी भूल के कारण यह जीव स्वयं दुख उठाता है। जितना समय और शक्ति शरीर और इन्द्रियों को प्रसन्न करने में लगाता है यदि उतना समय और शक्ति अपने आत्मा के दर्शन, चिन्तवन, मनन में लगावे तो यह आत्मा संसार-सागर से पार हो जावे और ऐसा अक्षय सुख प्राप्त करले कि फिर इसको कभी कोई रंचमात्र भी दुख न होने पावे।'

ऐसा विचार कर लोकपाल ने निश्चय किया कि इस राजपाट, घर, गृहस्थाश्रम में रहकर मैं आत्म-साधना नहीं कर सकता। ऐसा विचार कर उसने अपने राजसिंहासन पर अपने पुत्र को बैठाया और आप निर्ग्रन्थ साधु बन गया।

उसने जिस तरह राज-भवन, राज्य, भोग, शरीर के वस्त्र आभूषण छोड़ दिये उसी तरह मन में इन सब संसारी पदार्थों से -ममता भी त्याग दी और निराकुल होकर शन्ति से आत्म-ध्यान करने लगा। मोह-ममता के टूट जाने पर लोभ, कपट भी भी मन में से विदा हो गये। हृदय में दया का अखण्ड स्रोत खुल जाने से क्रोध अभिमान स्वयं चले गये, तब हृदय में वह समता जागृत हुई जिससे शत्रु मित्र की कल्पना अपने आप दूर हो गई। चित्त में काम-वासना न रही इस लिये काम-इन्द्रिय पर विकार की छाया न रही, तब वह लोकपाल साधु छोटे बच्चे के समान निर्विकार नग्न विहार करने लगा और तप, शम, दम, त्याग, संयम से आत्मशुद्धि प्रारम्भ कर दी।

कर्म की लीला विचित्र है, पूर्व-संचित अशुभ कर्म इस भवमें

शुभ कार्य करते हुए भी दुख देना नहीं छोड़ते, और इस जन्म में पाप करते हुए भी पहले का शुभ कर्म सुख-सामग्री अवश्य देता है। इसीलिये बहुत से अन्यायी पापी अत्याचारी मनुष्य सुखी दीख पड़ते हैं और अनेक धर्मात्मा दुखी देखे जाते हैं। यद्यपि इस जन्म का धर्माचरण या पापाचरण व्यर्थ नहीं जाता परन्तु पहले समय का बोया हुआ शुभ अशुभ कर्म बीज तो वर्तमान में अपना अच्छा बुरा फल देता ही है।

तदनुसार लोकपाल मुनि स्वहित के साथ विश्वजगत का भी हित कर रहा था, स्वप्न में भी किसी का बुरा चिन्तवन भी न करता था, अपने आहार विहार में भी किसी भी छोटे बड़े प्राणी को कष्ट न होने देता था। ऐसा सच्चारित्र आचरण करते हुए भी उसको अपने पूर्व संचित अशुभ कर्म का ऋण चुकाना था, इस कारण लोकपाल को 'भस्मक' रोग हो गया। भस्मक रोग के कारण लोकपाल के पेट में भूख की ज्वाला धधकने लगी। मुनि-व्रत के अनुसार दिन में केवल एक बार अधिक से अधिक ३२ ग्रास (कौर) भोजन लेना पड़ता है उससे अधिक भोजन महा-व्रती साधु नहीं ले सकता। परन्तु भस्मक रोग के कारण उतना भोजन लोकपाल को थोड़ी ही देर में पच जाता (हजम हो जाता) था, उसके पीछे भूख की अग्नि पेट में व्याकुलता उत्पन्न करने लगती।

इस नयी विपत्ति से लोकपाल मुनि का शान्त, सन्तोषी जीवन अशान्त-व्याकुल रहने लगा। भूख के कारण स्वाध्याय

सामायिक आदि धर्म क्रिया में चित्त न लगने लगा। लोकपाल जिस शारीरिक मोह को छोड़ चुका था, भूख की तीव्रता से वह शारीरिक मोह फिर जागृत हो गया। तब अपनी भूख मिटाने के लिये लुक छिप कर दूसरी तीसरी वार भी भोजन लेने लगा। परन्तु इससे भी भूख शान्त न हुई।

तब लोकपाल को विवश (लाचार) होकर मुनिचर्या छोड़ देनी पड़ी।

सच है-संसार में भूख की वेदना (दुःख) असह्य (न सहने योग्य) होती है. इसी कारण भूख मिटाने के लिये भूखे मनुष्य का आचार विचार नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। प्रसव समय में कुत्ती को बहुत भूख लगती है उस समय यदि उसे भोजन न मिले तो वह अपने ही बच्चे खा जाती है, सर्पिणी अपने ही अण्डे खा खाकर अपनी भूख मिटाती रहती है। प्रबल भूख के समय माता अपने प्रिय शिशु पुत्र को छोड़ जाती है।

मुनिव्रत छोड़कर लोकपाल अपनी भूख मिटाने के लिए सर्वत्र घूमने लगा, जहां पर जैसा भोजन मिल जाता उससे वह अपनी भूख मिटा लेता था।

इस तरह घूमते-फिरते वह लोकपाल इस राजपुरी में आया और तुम जैसे बालक के घर अपनी भूख मिटाने के लिये पहुंचा वहां पर वह उस बालक के भोजनालय का सारा भोजन खागया तो भी उसकी भूख शान्त न हुई, तब उस बालक ने अपने हाथ का कौर भी उस भूखे भ्रष्ट साधु को खाने के लिये दे दिया, उस

कौर के खाते ही उसकी भूख ही नहीं मिटी बल्कि उसका भस्मक रोग भी सदा के लिये मिट गया।

भाग्यशील जीव के समागम से विपत्ति-ग्रस्त जीवों की विपत्ति दूर हो जाती है।

लोकपाल ने उस बालक को अपना बहुत उपकारी समझकर उसको वे सब कलायें सिखाईं जो कि उसने बचपन में सीखी थीं। उस बच्चे का नाम 'जीवन्धर' है और उस लोकपाल राजा का मुनि-अवस्था का नाम 'आर्यनन्दी'। यह संक्षेप में मेरा जीवन-चरित है।

जीवन्धर ने आर्यनन्दी के मुख से जब यह बात जानी कि उसके गुरु विद्याधरों के भूतपूर्व राजा और महाव्रतधारी मुनि हैं। तब उनका उच्च वंश तथा उच्च सदाचार जान कर जीवन्धर को उनपर और भी अधिक श्रद्धा और प्रेम हो गया। जीवन्धर ने मन में सोचा कि आर्यनन्दी से अधिक श्रेष्ठ गुरु मुझे और कौन मिल सकता है? हर्ष के कारण उसके नेत्रों में आंसू आ गये और वह गद्‌गद् वाणी में बोला कि—

गुरुदेव! आप महान हैं, आप जैसे गुण-सम्पन्न गुरु का मिलना मेरे लिये परम सौभाग्य है।

जीवन्धर का परिचय

प्रसन्नता के आवेग में आर्यनन्दी वह गूढ़ बात भी कहने को तयार हो गये जो कि उन्होंने अब तक किसी से भी न कही थी और न जिसको कोई अभी तक जानता था।

आर्यनन्दी ने जीवन्धर से पूछा—कि बता तू किसका पुत्र है? तेरे माता-पिता का क्या नाम है?

जीवन्धर को आर्यनन्दी के प्रश्न से कुछ आश्चर्य हुआ और कुछ कौतूहल तथा कुछ उत्सुकता भी। उसने झट उत्तर दिया कि नन्दाढ्य के माता-पिता (सेठ गन्धोत्कट तथा सुनन्दा) ही मेरे जनक-जननी हैं।

आर्यनन्दी ने कहा कि यद्यपि गन्धोत्कट और सुनन्दा की गोदी में तू पला है इसलिये वे भी तेरे माता-पिता हैं, किन्तु ये तेरे वास्तविक (असली) जनक जननी नहीं हैं।

जीवन्धर ने बड़ी उत्सुकता से पूछा तो मेरा जन्म किस माता की कोख से हुआ है?

आर्यनन्दी ने कहा कि जीवन्धर! तू क्षत्रिय राजपुत्र है।

यह बात अभी तक गन्धोत्कट को भी मालूम न थी और सुनन्दा जीवन्धर को अपना प्रथम पुत्र ही समझती थी।

जीवन्धर के हृदय में बहुत हर्ष हुआ, उसने दूसरे ही क्षण पूछा कि गुरुदेव! जरा स्पष्ट रूप से कहिये।

आर्यनन्दी ने कहा कि इसी राजपुरी नगर के नरेश सत्यन्धर तेरे पिता हैं और उनकी पटरानी विजया तेरी माता है। सत्यन्धर ने अपनी रानी के प्रेम-पाश (जाल) में फंसकर अपना राजभार काष्ठाङ्गार को सौंप दिया था। जब तू अपनी माता के गर्भ में आया तब उसे तीन स्वप्न आये थे। उन स्वप्नों का फल विद्वान् सत्यन्धर ने समझ लिया, अपनी मृत्यु और तेरा जन्म

निकट जानकर सत्यन्धर ने तेरी माता और गर्भस्थ तेरी रक्षा के लिये एक मयूर-विमान बनाया था जिस पर बिठाकर तेरी माता को आकाश में उड़ाया करता था।

उधर दुष्ट काष्ठाङ्गार ने विश्वाशघात करके तेरे पिता को मारने के लिये सेना भेज दी, सत्यन्धर तेरी माता को उस विमान में बैठाकर उसे आकाश में उड़ा दिया और आप सेना के साथ लड़ने चल दिया। लड़ते-लड़ते वह रणभूमि में ही संसार, शरीर, भागों से विरक्त हो गया और युद्ध करना छोड़कर आत्मध्यान लीन हो गया उसी समय एक सैनिक ने उसे मार डाला।

उसी दिन मयूर-विमान ने तेरी माता को इसी नगर की श्मशानभूमि में ला पटका, वहीं पर तेरा जन्म हुआ। थोड़ी देर बाद ही वहां गन्धोत्कट अपने मृतकपुत्र को रखकर तुझे वहां से उठा लाया, और उसने बहुत प्रेम के साथ तेरा पालन-पोषण किया।

जीवन्धर को जब कि यह जानकर चित्त प्रफुल्लित हुआ कि मैं इस नगर के राजा का पुत्र हूं, तभी उसको दुःख भी बहुत हुआ, कि मेरा जन्म मेरे पिता की मृत्यु का कारण बना। मेरे पिता की मृत्यु समय मेरा जन्म हुआ, मैं पिता को न देख सका और न मेरे पिता ने मेरा मुख देखा, मैं अपनी स्नेहमयी माता की गोद में दो दिन भी न रह पाया, अपने पिता के अगाध प्रेम और माता के गाढ़-स्नेह से वञ्चित रहा, मेरी माता न जाने कहां किस विपत्ति की शिकार हुई होगी ? मैं अपने पूज्य माता-

पिता की रंचमात्र भी सेवा न कर पाया, राजपुत्र होकर असहाय दशा में धर्म-पिता गन्धोत्कट मुझे अपने घर ले आये।

ऐसा विचारते-विचारते शोक से जीवन्धर का हृदय भर आया, किन्तु क्षण भर में काष्ठाङ्गार की कृतघ्नता पर उसका ध्यान गया कि देखो मेरे पिता ने लकड़हारे काष्ठाङ्गार के गुणों पर मुग्ध होकर उसको अपना मन्त्री बनाया, सारे सुख-साधन उसके लिए जुटा दिये, यहां तक कि उस पर विश्वास करके पिताजी ने सारा राज-काज उसको सौंप दिया, किन्तु इस नीच दुष्ट ने उपकारों का प्रति-फल इस बुरी तरह से दिया, अपने स्वामी को धोखे से मरवाकर अब राजसिंहासन पर बैठा है, इसे रंच-मात्रा भी संकोच या लज्जा नहीं आती? ऐसा सोचते-सोचते जीवन्धर का मस्तक क्रोध से गर्म हो गया, मुख लाल हो गया, भौंह चढ़ गईं, नीचे का होठ दांतों से चबाने लगा, लाल नेत्रों से अग्नि की चिनगारी निकलने लगी।

जीवन्धर ने जब अपनी ओर देखा तो मन ही मन अपने आपको धिक्कारने लगा कि मेरे बल, पराक्रम, यौवन से क्या लाभ, जब कि मैं अपने माता-पिता के अपमान का भी बदला इस लकड़हारे से न ले सका, क्षत्रिय पुत्र को क्या इतना कायर बन बैठना चाहिये?

इन विचारों के साथ उसे बहुत आत्म-ग्लानि हुई, किन्तु तत्काल काष्ठाङ्गार की दुर्जनता उसके मस्तक में घूम गई, और

क्रोध के वेग में तुरन्त काष्टाङ्गार से भिड़ने के लिए उठ खड़ा हुआ, इधर उधर अस्त्र-शस्त्र देखने लगा।

जीवन्धर के हृदय में जो उथल-पुथल हो रही थी, आर्यनन्दी उसे बड़ी सूक्ष्मता (बारीकी) से उसकी मुखाकृति के उतार चढ़ाव द्वारा जान रहे थे। जब उन्होंने जीवन्धर को क्रोध के आवेश में युद्ध के लिए तैयार होते देखा, तब प्रेम-भरी कोमल मीठी वाणी में बोले।

जीवन्धर! क्या कर रहे हो? तुम क्षत्रिय हो इसलिए तुम में वीरता तो होनी ही चाहिए, किन्तु इसके साथ ही धीरता और गंभीरता भी तो होनी आवश्यक है, क्रोध क्षुद्र (हलके) मनुष्य को आता है।

धीर वीर का क्रोध ऐसा उतावला नहीं होता, ऐसा क्रोध शत्रु का विनाश नहीं करता बल्कि अपना नाश करता है, इसलिये बैठ जाओ, शान्त होकर मेरी बात सुनो।

जीवन्धर अपने गुरु के वचन सुनकर कुछ ठंडा हुआ और चुपचाप बैठ गया।

आर्यनन्दी ने कहा कि व्याकुल मत होओ, महान् व्यक्तियों पर महान् विपत्तियां आया ही करती हैं। कंस ने कृष्ण नारायण के माता-पिता को जेल में डाल रक्खा था वहां उनका जन्म हुआ, ग्वाले के घर उनका पालन-पोषण हुआ परन्तु जब अवसर आया तब उन्होंने कंससे अपने माता-पिता के अपमान का बदला ले लिया। महान् वीर हनुमानका जन्म पर्वतकी एक गुफामें हुआ।

ऐसी घटनाऐं कर्म-उदय से हुआ ही करती हैं, इनसे विचिलित न होना चाहिये। प्रायः प्रत्येक प्राणी के जीवन में विपत्ति के दिन भी कुछ न कुछ आते ही हैं।

मनुष्य का सबसे महान् शत्रु क्रोध है, क्रोध मनुष्य का विवेक नष्ट कर देता है, जो मनुष्य अपने क्रोध पर विजय नहीं पा सकता वह अपने बाहरी शत्रु पर विजय क्या प्राप्त करेगा? ठंडे हथौड़े का वार गर्म लोहे को टेढ़ा मेढ़ा कर देता है, और छैनी छिन्न भिन्न कर डालती है। अतः जो वीर मनुष्य अपने वैरीका विनाश करना चाहे उसको शान्त-चित्त होकर धीरता से उपाय सोच कर अपनी वीरता से काम लेना चाहिये।

काष्ठाङ्गार के पास हजारों नौकर चाकर हैं, बड़ी सेना है, हाथी घोड़े रथ हैं, समस्त प्रजा पर उसका प्रभाव और आतङ्क है, इधर अभी तुमको कोई जानता भी नहीं कि जीवन्धर राजा सत्यन्धर का पुत्र है। न तुम्हारे पास कुछ सैनिक शक्ति है और न तुम्हारे पक्ष में जन बल है। इस दशा में तुम काष्ठाङ्गार से अपने पिता के अपमान का बदला कैसे ले सकते हो?

तुमने मुझ से विद्या-अध्ययन करके मुझको कुछ भेंट भी नहीं दी है, मैं तुमसे यही गुरु-दक्षिणा चाहता हूँ कि तुम कमसे कम एक वर्ष तक काष्ठाङ्गार से युद्ध न करने की प्रतिज्ञा करो।

जीवन्धर ने शिर झुकाकर विनीत-भाव से कहा कि 'आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।'

आर्यनन्दी ने बड़े प्रेम से जीवन्धर के शिर पर आशीर्वाद

का हाथ फेरा और कहा कि पुत्र ! सदा प्रसन्न रहो, स्वस्थ रहो, विजय प्राप्त करो और यशस्वी (नामवर) बनो।

तदनन्तर उन्होंने जीवन्धर को गृहस्थाश्रम की शिक्षा दी और राजनीति की मुख्य-मुख्य बातें बतलाईं। अन्त में उस से कहा कि जीवन्धर ! तू धैर्य रख, तेरा बल पराक्रम दिनों-दिन बढ़ेगा, लक्ष्मी, विजयश्री तेरे पैर चूमेगी, तेरा यश दिगन्तव्यापी होगा, समस्त जनता तेरा साथ देगी और निकट भविष्य में तू अपने पिता के सिंहासन पर बैठेगा, तेरा मामा भी प्रभावशाली भूपति है, उससे तुझे पूरी सहायता मिलेगी।

जीवन्धर ने शिर झुकाकर अपने गुरु की सारी बातें सुनीं और उसका चित्त शान्त हो गया।

आर्यनन्दी ने कहा कि बस, अब तेरी शिक्षा समाप्त हो गई। मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया, अब मैं कर्म-वश छोड़े हुए आत्म-साधना के कार्य को फिर प्रारम्भ करूंगा, अब मुझे छुट्टी दे।

गुरु की अन्तिम बात सुनकर जीवन्धर के मन को बहुत धक्का लगा, उसने व्याकुल होकर कहा कि गुरु जी ! यह क्या कह रहे हैं ? आपने एक वर्ष की प्रतिज्ञा दिलाई है, तब तक तो और ठहरिये।

आर्यनन्दी ने कहा कि नहीं, बस मेरा मन अब आत्म-उद्धार के सिवाय अन्य किसी कार्य में नहीं लगता, मैं अब क्षण भर भी नहीं ठहरना चाहता, आत्म-उन्नति के मार्ग से कभी किसी को न रोकना चाहिये।

आर्यनन्दी का दृढ निश्चय जानकर गन्धोत्कट, जीवन्धर, नन्दाढ्य तथा जीवन्धर के सब मित्रों ने बहुत सन्मान और विनय के साथ आर्यनन्दी को राजपुरी से विदा किया, वे सब बहुत दूर तक उनके साथ उनको पहुंचाने गये। जब आर्यनन्दी ने आग्रह करके सब को लौटाया, तब उदासचित्त होकर सब लौट आये। गुरु के चले जाने का जीवन्धर को बहुत दुःख हुआ।

आर्यनन्दी की मुनि-दीक्षा

आर्यनन्दी ने वन में जाकर एक आचार्य से पुनः मुनि-दीक्षा ग्रहण की। महाव्रत धारण करके वे पांच समिति, तीन गुप्ति का निर्दोष आचरण करते हुए अनेक प्रकार के कठिन तप करने लगे। तपश्चर्या से उनका आत्मा शुद्ध होता गया।

कुछ दिनों में मोहनीय कर्म का पूर्ण नाश करके उन्होंने यथाख्यात चारित्र प्राप्त किया, जिससे राग, द्वेष, मोह. शोक, भय, चिन्ता, मद आदि मलिन दोष उनके आत्मा से दूर हो गये और वे वीतराग बन गये। सब तरह के संकल्प विकल्प, इच्छाओं तथा व्याकुलता के समूल नष्ट हो जाने से उनको आत्मीय अनन्त अक्षय सुख प्राप्त हो गया। थोड़ी देर पीछे ही ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म भी उन्होंने आत्मा से सर्वथा दूर कर दिये, इस कारण उनको अनन्त ज्ञान, अनन्त-दर्शन और अनन्त शक्ति प्राप्त हो गई।

इस प्रकार पूर्ण ज्ञाता, द्रष्टा, वीतराग होकर अर्हन्त-अवस्था में आर्यनन्दी ने अपने निकट आये हुए जीवों को क्रोध, मद,

काम, मोह आदि दुर्भावों का दमन करने की तथा शांति, क्षमा, शौच. सत्य, दया आदि गुणों का विकास करने की विधि बतलाई, आत्मा स्वस्थ, स्वतन्त्र, निर्भय, शान्त और सुखी किस आचरण से होता है, इसका पथ-प्रदर्शन किया।

अर्हन्त अवस्था में कुछ दिन रहकर शेष वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मों से भी आत्मा का शुद्ध करके वे संसार के आवागमन से सर्वथा छूट कर सदा के लिये पूर्णमुक्त, निरंजन, निर्विकार सिद्ध हो गये।

व्याधों पर विजय

राजपुरी में अनेक अच्छे सम्पन्न ग्वाले रहते थे, जिनमें से कुछ ऐसे थे जिनके पास हजारों गायें भैंसें थीं, इसी कारण राजपुरी में दूध घी बहुत सुलभ सस्ता और प्रचुर था। उन ग्वालों की गाय भैंसें जिस समय चरने के लिये बाहर निकलती थीं तो उनकी बहुत लम्बी पंक्ति से राजमार्ग (सड़क) घण्टों तक रुक जाता था, गायों के गले में बंधी हुई घण्टियों की मधुर-मधुर ध्वनि से राजपुरी गूंजने लगती थी और उनके खुरों से उड़ी हुई धूल सूर्य की धूप को फीकी कर दती थी।

राजपुरी से थोड़ी दूर पर एक बहुत विशाल जंगल था, जिसमें तरह-तरह के वृक्ष और बेलें फैली हुई थीं, पृथ्वी पर सर्वत्र हरी घास थी तथा थोड़ी-थोड़ी दूर पर सरोवर थे। इस कारण राजपुरी के ग्वाले अपनी गायों को चराने के लिये प्रातः

उस वन में ले जाते थे। वहां दिन भर गायें खुली वायु में इधर-उधर घूमती-फिरतीं घास चरा करती थीं, पेट भर जाने पर पेड़ों की छाया में बैठ कर आनन्द से जुगाली करती थीं, प्यास लगने पर सरोवरों का स्वच्छ जल पी लेती थीं और सरोवरों में घुस कर घण्टों तक पानी में नहातीं, तैरतीं और लेट लगाती रहती थीं।

संध्या समय जब सूर्य अस्ताचल की ओर जाने लगता था तब वे ग्वाले अपने-अपने पशुओं को हांक कर घर ले आते थे।

वन में चरने के लिये गायों के जाने-आने का यह क्रम सदा चलता रहता था।

एक दिन उस वन में कहीं से बहुत से भील आगये, वे दानव जैसे ऊंचे, कोयले जैसे काले, मोटे-ताजे बलवान् थे, धनुष वाण, बर्छी, तलवार, छुरी आदि अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थे, जंगल में छिपने, भागने, दौड़ने में बहुत प्रवीण थे, वन पर्वतों में युद्ध करने का उनको अच्छा अभ्यास था और लड़ना-भिड़ना, लूट-पाट करना ही उनका मुख्य कार्य था। हिरन, चीता, बाघ, रीछ आदि पशुओं का चर्म शरीर पर लपेटे थे, अर्द्ध नग्न थे, उनके सिर के बाल बिखरे हुए रूखे थे, आंखें लाल थीं। उनको देखते ही साधारण मनुष्य भयभीत हो जाते थे।

उन्होंने भयानक कलकलाट शब्द करते हुए राजपुरी के ग्वालों को मार पीट कर भगा दिया और उन गायों को उनसे छीनकर अन्य दिशा में ले जाने लगे।

ग्वाले भाग कर राज-सभा में पहुँचे और उन्होंने आंसू बहाते हुए अपनी दुःख-भरी कथा काष्ठाङ्गार को कह सुनाई।

अपनी प्रजा का गो-धन लुटते देखकर राजपुरी के राजा काष्ठाङ्गार को भीलों पर बहुत क्रोध आया कि मेरे रहते हुए तुच्छ जंगली लोग इतने साहसी हो गये कि दिनदहाड़े मेरी सीमा में लूट-पाट करके मेरी प्रजा का धन छीन ले जाने से भी न डरे!

काष्ठाङ्गार ने तुरन्त सेनापति को आज्ञा दी कि सेना लेजाकर भीलों से गायें ही न छुड़ा लो, बल्कि उनको जीवित पकड़ लाकर मेरे सामने उपस्थित करो।

सेनापति ने क्षण भर में सेना तैयार करके वन की ओर कूच किया। सेना के नगाड़े का शब्द सुन कर भीलों ने सेना को अपनी ओर आते देखा। तो वे भी सेना के साथ युद्ध करने को तयार हो गये। उन्होंने गायों के झुण्ड को पीछे की ओर हांक कर एक ऐसे संकरे मार्ग पर सेना को रोक लिया। जहाँ पर कि एक साथ दो सैनिक ही आगे जा सकते थे। उस मार्ग पर रोक कर भीलों ने सेना पर बाणों की धुआंधार, बौछार की जिससे कि सेना से कुछ करते न बना और कि.कर्तव्य-विमूढ होकर सेना उल्टी भागी।

सेना की हार सुनकर काष्ठाङ्गार को बहुत दुःख हुआ। बात भी ठीक है, राजा के शासन की शोभा तब तक ही रहती है जब तक उसकी सीमा में उसके विरुद्ध कोई सिर न उठा सके, यदि वह अपने राज्य में अन्याय, अनीति और अत्याचार को न रोक सके

तो उसका पराक्रम फीका पड़ जाता है, जो कि राजतेज में काला धब्बा होता है ।

काष्ठाङ्गार से भी अधिक दुःख उन ग्वालों को हुआ जिनकी गायों को राज-सेना भीलों से न छुड़ा सकी, क्योंकि गायें ही उनके जीवन का एक सहारा थीं, वे ही उनका सर्वस्व (सब कुछ) थीं। सर्वस्व (धन) छिन जाने का दुःख मनुष्यों को प्राण छिन जाने के समान होता है ।

ग्वालों ने एकत्र होकर विचार किया कि अब कोई अन्य उपाय करना चाहिये जिससे गायों को भीलों से छुड़ाया जा सके।

बुद्धिमान मनुष्य निराशा के अन्धकार में भी आशा की चमक देखता है, हताश या निराश होकर बैठ नहीं जाता।

सबसे अधिक धनिक, ग्वालों के नेता नन्दगोप ने राजपुरी में घोषणा कराई (ढिंढोरी फिरवाई) कि "जो वीर भीलों से हमारी गायें छुड़ा लावेगा उसको मैं सोने की सात पुतलियां तथा अपनी पुत्री प्रदान करूंगा।"

घोषणा सुनकर राजपुरी के बहुत से मनुष्य हँसे कि जिन भीलों से राजसेना भी हार कर भाग आई, राजपुरी में ऐसा कौन-सा वीर है जो उनको जीत कर गायें छुड़ा सकेगा ?

कुछ बुद्धिमान मनुष्यों को दुःख हुआ कि जब सेना भी भीलों को न दबा सकी तब तो भील और भी अधिक उपद्रव करेंगे ।

कायर लोगों ने घोषणा का उपहास (मखौल) उड़ाया कि

ग्वालों की गायें छुड़ाने के लिये लड़ाके अजेय भीलों से लड़कर पहले अपने आपको स्वर्ग में पहुंचा दो (प्राण दे दो) फिर वहां से आकर इनसे पारितोषक ले लेना।

परन्तु नवयुवक वीर जीवन्धर के हृदय में क्षात्र-तेज उमड़ आया, उसकी भुजाएँ फड़कने लगीं और उत्साह से एक दम भीलों से भिड़ जाने के लिये तयार हो गया।

असहाय दीन-जनता पर विपत्ति देख कर वीर मनुष्य से चुप नहीं बैठा जाता, वह शत्रु से मोर्चा लेते समय यह विचार नहीं करता कि शत्रु की संख्या और बल कितना है। प्राणों के मोह से अधिक ममता उसे विजय-श्री के साथ होती है।

भीलों के साथ युद्ध करने के लिये जीवन्धरकुमार को तयार होता देख कर उसके सभी मित्र धनुष वाण लेकर तत्काल उठ खड़े हुए।

वह मित्र भी क्या जो कि अपने मित्र को मृत्यु का सामना करते देखकर, विपत्तियों से लड़ते समय साथ न दे।

अस्त्र-शस्त्रों से सज कर तरुण जीवन्धर अपने समवयस्क (हमउम्र) मित्रों को साथ लेकर भीलों से लड़ने चल पड़ा।

राजपुरी के स्त्री-पुरुष जीवन्धर के वीर-उत्साह को देखकर आश्चर्य-चकित हुए कि जीवन्धर राजसेना से भी अधिक अपनी शूरवीरता पर विश्वास करता है। उन्हें इस बात की प्रसन्नता भी हुई कि राजपुरी में अब भी ऐसे लड़ाके वीर विद्यमान हैं जो भयानक शत्रुओं से टक्कर लेने में पीछे नहीं रहना जानते।

जीवन्धर अपने मित्र योद्धाओं के साथ वन में पहुंचा और चुपचाप मदोन्मत्त भीलों पर झपट पड़ा। भील राजसेना को भगा कर निश्चिन्त हो गये थे, उन्हें यह स्वप्न में भी विचार न था कि राजपुरी का कोई अन्य वीर भी उन सबके दांत खट्टे कर सकता है।

जीवन्धर के अकस्मात् (अचानक) आक्रमण से बहुत से भील तत्काल मारे गये, फिर जो लड़ने को तयार हुए उनको तयार होते-होते जीवन्धर तथा उसकी मित्र-मण्डली की भयानक वाण-वर्षा ने अस्त्र-शस्त्र उठाने का भी अवसर न दिया। परिणाम यह हुआ कि बचे हुए भील अपने प्राण बचा कर भागे।

जीवन्धर को तथा उसके मित्रों को अपने प्रथम युद्ध की सफलता पर बहुत हर्ष हुआ। उससे भी अधिक हर्ष ग्वालों को अपने बलात् छीने गये गोधन के मिलने का हुआ।

राजपुरी में जिस जीवन्धर को कुछ थोड़े स्त्री-पुरुष ही जानते थे, राज-सेना से भी अजेय भील-सेना को परास्त कर देने के कारण जीवन्धर राजपुरी में विख्यात हो गया, प्रत्येक नर-नारी उसकी वीरता की प्रशंसा करने लगा। किन्तु 'जीवन्धर क्षत्रिय राज-पुत्र है' यह अभी तक किसी ने नहीं जाना।

राजपुरी की जनता ने वीर जीवन्धर का बड़े समारोह से स्वागत और सम्मान किया और उसके पिता गन्धोत्कट को बधाई दी।

किन्तु काष्ठाङ्गार को जीवन्धर की यह जीत अच्छी न लगी,

उसको बड़ी ईर्ष्या हुई कि जीवन्धर मेरी सेना से भी अधिक पराक्रम और रणचातुरी रखता है, वैश्य-पुत्र होकर क्षत्रियों से भी अधिक निर्भय तथा शूरवीर है। परन्तु वह कुछ कर न सका।

दुर्जन मनुष्य सदा दूसरों की हानि होते देखकर, प्रसन्न होता है और दूसरों का अभ्युदय (बढ़वारी) देखकर उसके हृदय में दाह पैदा होता है, किन्तु जनता का पक्ष अपने विरुद्ध जानकर वह अपने मन-ही-मन कुढ़ा करता है, अपने हृदय की जलन किसी से कह नहीं सकता।

सबसे अधिक प्रसन्नता नन्दगोप को हुई कि मेरी पुत्री का पाणिग्रहण वीर जावन्धर के साथ होगा।

वीर, यशस्वी, गुणी जामाता (दामाद) पाकर लड़की के माता-पिता को महान् हर्ष होता ही है।

नन्दगोप ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपनी सुन्दरी पुत्री 'गोविन्दा' का विवाह शुभ मुहूर्त में करने की धूम-धाम से तयारी की।

विवाह के लिये यथासमय जीवन्धर अपने मित्र-परिकर के साथ नन्दगोप के घर पहुँचा।

जीवन्धर के मित्रों में 'पद्मास्य' नामक एक मित्र था जो कि नन्दगोप की जाति का था, इसलिये जीवन्धर ने यह निर्णय कर लिया था कि नन्दगोप की पुत्री का विवाह पद्मास्य के साथ कराऊंगा।

विवाह मंडप में जीवन्धर अपनी मित्र-मण्डली के साथ आ

बैठा, नन्दगोप और उसकी पत्नी गोदावरी उन्हें अपने घर आये देखकर प्रसन्न हो रहे थे।

विवाह-विधि प्रारम्भ हुई, जब कन्यादान का समय आया तब जीवन्धर ने बड़ी गम्भीरता के साथ नन्दगोप से कहा कि भीलों के जीतने का मुख्य श्रेय मेरे मित्र 'पद्मास्य' को है, इस लिये आपकी कन्या का अधिकारी वही है, गोविन्दा का पति पद्मास्य ही होगा।

नन्दगोप ने कुछ विस्मित होकर मुस्कराते हुए कहा कि आपकी जैसी इच्छा !

जीवन्धर ने कहा कि हम सब मित्रों का हृदय एक है, केवल शरीर भिन्न-भिन्न हैं। विवाह में सम्मिलित होने वाले स्त्री-पुरुषों ने जीवन्धर की उदारता तथा मित्र-प्रेम की बहुत प्रशंसा की।

इस तरह गोविन्दा का पाणिग्रहण पद्मास्य के साथ हो गया। पुत्री के साथ-साथ नन्दगोप ने अपनी घोषणा के अनुसार पद्मास्य को सोने की सात पुतलियां भी प्रदान कीं।



तीसरा प्रसङ्ग

श्रीदत्त सेठ

राजपुरी में एक 'श्रीदत्त' सेठ रहता था, वह अच्छा धनिक था, उसके पिता ने व्यापार द्वारा बहुत सी लक्ष्मी संचित की थी, अतः अपने पिता की मृत्यु के अनन्तर श्रीदत्त अपने पिता के विपुल धन का स्वामी बन गया।

मनुष्य बहुत पौरुष और परिश्रम से धन-उपार्जन करते हैं किन्तु उस धन का उपभोग वे अपने जीवन में बहुत कम कर पाते हैं, परिश्रम से संचित किये हुए धन को वे बहुत सावधानी से खर्च करते हैं, उनका लक्ष्य अपने भोग-उपभोग की अपेक्षा संचय की ओर अधिक रहता है। उनके हृदय में दो बातें बैठी रहती हैं। १—कभी अचानक कोई रोग, निर्बलता, शरीर-भङ्ग आदि ऐसी विपत्ति आ सकती है जिसके कारण शरीर परिश्रम करने योग्य न रह सके, उस समय अपने पास बचा हुआ धन ही जीवन-निर्वाह के काम आ सकता है। २—मृत्यु का कोई समय निश्चित नहीं, साधारण बहाने से शरीर की हलचल सदा के लिये बन्द हो सकती है, उस दशा में पुत्र पुत्री स्त्री आदि आश्रित व्यक्तियों के पालन पोषण के लिये धन का होना आवश्यक है।

इन ही बातों को ध्यान में रख कर दूरदर्शी मनुष्य जितना धन एकत्र करता है, खर्च उस से कम मात्रा में करता है, परिवार

की रक्षा का प्रश्न सदा मनुष्य के सामने बना रहता है, इसी विचार से बुद्धिमान् मनुष्य स्वयं कष्ट सहन करके अपने पुत्र-पुत्रियों के लिये कुछ न कुछ धन छोड़ ही जाता है। इसी प्रकार से संचित धन श्रीदत्त को प्राप्त हुआ था।

श्रीदत्त अपने पिता के छोड़े हुए धन से अपना जीवन-निर्वाह करने लगा, वह अपने सुखी जीवन के लिये जिस धन का उपयोग कर रहा था, उस धन को उसके पिता ने कितने परिश्रम और कठिनता से एकत्र किया है, इस बात का अनुभवन उसे रंचमात्र न था।

अनायास (बिना परिश्रम के) प्राप्त हुआ धन मनुष्य को निकम्मा, सुस्त बना देता है। इसके सिवाय ऐसे धन से मनुष्य प्रायः विलास-प्रिय (शौकीन) एवं व्यर्थव्ययी (फिजूल-खर्ची) बन जाता है। अनेक प्रकार के दुर्व्यसन भी ऐसे मनुष्य को लग जाते हैं।

एक दिन श्रीदत्त ने अपना भण्डार (खजाना) कुछ खाली हुआ देखा इससे उसके हृदय में एक विचारधारा बह उठी कि इस प्रकार तो मेरा यह विशाल धन-भण्डार किसी दिन सर्वथा खाली हो जायगा। कुएं से अदि जल सदा निकलता रहे और उसमें अपने नीचे के सोतों से पानी न आवे तो कुएं का जल भी समाप्त हो सकता है। सूर्य के ताप से समुद्र का पानी प्रतिदिन भाप बन कर उड़ता रहता है यदि उसमें प्रतिदिन सैकड़ों नदियों का जल न आता रहे तो समुद्र भी सूख सकता है, विशाल पर्वत-

जैसे अन्न के भण्डार से यदि प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा भी अन्न निकाला जावे तो एक दिन वह भी समाप्त हो जाता है, इसी तरह यदि मैं अपने पिता के धन-भण्डार में से खर्च ही करता रहूंगा तो इस में भी कुछ न बचेगा।

वर्षा आने से पहले बुद्धिमान मनुष्य अपने घर की छत और छप्पर ठीक कर लेता है जिस से कि वर्षा के समय उसके मकान में पानी न टपकने पावे, उसी तरह अपने पिता की धनराशि समाप्त होने से पहले मुझे भी कुछ उपाय कर लेना चाहिये।

स्वाभिमानी पुरुष अपने पराक्रम और परिश्रम से अपना जीवन-निर्वाह करता है, किसी दूसरे के धन के आश्रय आजीविका नहीं करता। सुपुत्र अपने पिता की लक्ष्मी में वृद्धि करता है, उसको कम नहीं होने देता। मैं अपने पिता के पद-चिन्हों पर चलकर क्यों न धन का उपार्जन करूं? मेरे मस्तक में बुद्धि, भुजाओं में बल और पैरों में स्फूर्ति है।
फिर मैं उनका सदुपयोग क्यों न करूं?

जो व्यक्ति अपने पिताकी लक्ष्मीको कम कर देता है वह कुपुत्र है, जो उस लक्ष्मी का उपभोग करता हुआ, उसमें अपने परिश्रम से कुछ मिलाता भी रहता है किन्तु उसमें कुछ वृद्धि नहीं कर कर पाता वह 'पुत्र' है और जो अपने पिता के भण्डार को तथा यश को अपने पुरुषार्थ से बढ़ा भी देता है वह 'सुपुत्र' है। मुझे सुपुत्र बनना चाहिये।

व्यापार द्वारा लक्ष्मी का यथेष्ट समागम और अपने भाग्य

तथा पुरुषार्थ की परीक्षा होती है, अतः मुझे भी अपने पिता की तरह द्वीप, द्वीपान्तरों में जाकर व्यापार करके लक्ष्मी को अपनी चरण-दासी बनाना चाहिये, घर में पड़े रहकर मैं उसका दास बन गया हूँ।

अपने घर में पड़े रहना कायर कुपुत्रों का काम है, वीर साहसी मनुष्य घर से बाहर निकल कर परदेश में अपने बुद्धि, बल-विक्रम से धन-संचय करता है। वीर, सिंह और गज जिस ओर निकल जाते हैं वहीं अपना घर बना लेते हैं।

ऐसा विचार करके श्रीदत्त ने परदेश में जाकर व्यापार करने का निर्णय किया। समुद्र के मार्ग से अन्य द्वीपों में जाकर माल बेचना और खरीदना अधिक लाभदायक समझा।

तदनुसार श्रीदत्त ने राजपुरी से उन पदार्थों की खरीद की जो अन्य द्वीपां में न होते थे और अच्छे शुभ-मुहूर्त में जहाज द्वारा अन्य द्वीपों के लिये प्रयाण किया। कुछ दिन समुद्र-यात्रा का आनन्द लेकर श्रीदत्त एक द्वीप में जाकर उतरा।

वहां पर राजपुरी से खरीदा हुआ माल बेचा। उस द्वीप में जो माल अधिक उत्पन्न होता था वह खरीद कर जहाज में भरा और उसको समीप के अन्य द्वीपो में बेचा। इस प्रकार द्वीप द्वीपान्तरो मे अनेक प्रकार के माल का क्रय विक्रय (खरीद बेच) करने से श्रीदत्त को बहुत लाभ हुआ। उसने कुछ ही दिनों में बहुत सा द्रव्य-उपार्जन किया।

मनुष्यको धनका समागम शुभकर्म-उदय से होता है। जो

मनुष्य पूर्व जन्म में साधु-जन-सेवा, दीन दुखी जीवों की रक्षा, अनाथ स्त्री, बालक के पालन पोषण, दान आदि उपकारी कार्यों में अपना धन व्यय करते हैं, उन के सांसारिक विभूति प्राप्त करने में सहायक शुभ कर्म का संचय होता है. जिस के प्रभाव से इस जन्म में उन को व्यापार आदि में सफलता प्राप्त होती है। जिन मनुष्यों ने पहले भव में दान आदि पर-उपकार कार्यों में अपना द्रव्य नहीं लगाया, सदा न्याय-अन्याय से धन संचय करने में ही लगे रहे, वे अपने लिये अशुभ कर्म का बीज बो लेते हैं, जिस से उन को इस जन्म मे अनेक प्रकारके उद्योग, व्यापार आदि करते हुए भी सफलता नहीं मिलती, लक्ष्मी उन से रुष्ट रहती है।

शुभ कर्म-उदय से यद्यपि मनुष्य को सफलता प्राप्त होती है किन्तु वह सफलता अपने आप अनायास (बिना परिश्रम किये) नहीं मिला करती। जिस तरह सामने आये हुए भोजन के लिये हाथ, मुख चलाना आवश्यक है, हाथों और मुख का परिश्रम किये बिना केवल भोजन से ही भूख नहीं मिट सकती, प्यास बुझाने के लिये पानी पीने का परिश्रम तो करना ही पड़ेगा, इसी तरह धन-उपार्जन के लिये व्यापार आदि उद्यम करना भी आवश्यक है, व्यापार के साथ शुभ कर्म उदय की सहायता से धन-लाभ होता है। सारांश यह है कि प्रत्येक कार्य के लिए-मनुष्य को परिश्रम अवश्य करना चाहिये, परिश्रम सफल होना या न होना पूर्व-संचित शुभ अशुभ कर्म के अधीन है।

किस समय कैसा कर्म उदय हो रहा है यह साधारण एवं अल्पज्ञ मनुष्य नहीं जान सकता, इस कारण सफलता पाने के लिये ठीक उद्योग करना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

श्रीदत्त ने अपने भाग्य और पुरुषार्थ से अच्छा धन-उपार्जन कर लिया तब उसने अपने घर लौटने का विचार किया।

परदेश में मनुष्य चाहे जितने दिन रह लेवे, चाहे जैसा सुख सफलता पा लेवे किन्तु अन्त में उस को अपना घर स्मरण हो ही आता है, दूर देश में दिन भर उड़ने फिरने वाला पक्षी सूर्यास्त के समय अपने घोंसले की ओर चल ही देता है।

श्रीदत्त ने परदेश से भी स्वदेश के लिये लाभदायक विकने-योग्य माल खरीदा और अपना जहाजी बेड़ा तयार किया। शुभ वेला से अर्हन्तदेव का स्मरण करके जहाज में जा बैठा और मल्लाहों को जहाज चलाने की आज्ञा दी। आदेश मिलते ही जहाज समुद्र की छाती पर राजपुरी की ओर चल पड़े।

उस समय ऋतु बहुत सुहावनी थी, ठंडी पवन धीमे-धीमे चल कर मल्लाहों को थपकियां दे रही थी. अपने घर जाने की धुन में मल्लाह तरह-तरह के गीत गाकर मस्ती के साथ जहाज चला रहे थे। प्रभात होता था, लाल-लाल सूर्य का गोला पहले आकाश लाल बना देता था, फिर धीरे-धीरे प्रकाश उसमें से फूट पड़ता था, जहाज के समस्त यात्री निद्रा छोड़कर जाग उठते और दिन की क्रिया में लग जाते थे, दोपहर होता, सूर्य का संताप अपने यौवन पर पहुँच जाता, फिर अधेड़ मनुष्य की तरह

उसके तेज में कमी होने लगती और संध्या समय बूढ़ा बन जाता, तदनन्तर जर्जरित सूर्य अस्ताचल की ओर चल देता था, मानो दिन भर की थकावट मिटाने के लिये विश्राम करने चला जाता हो। इस तरह सूर्य प्रतिदिन जहाज के उन यात्रियों को जन्म, बचपन, यौवन, बुढापे और मरण का पाठ सिखाता था किन्तु खेद ! उस ओर किसी का ध्यान न जाता था।

धीरे-धीरे रात्रि का अन्धकार पैर फैलाता जाता, इधर जहाज में यात्री अपनी हलचल बन्द करके सो जाते थे। किन्तु जहाज बराबर समुद्र में निर्बाध गति से निरन्तर बढ़ते चले जाते थे, उन्हें अपनी थकावट मिटाने की कुछ भी चिन्ता ही न थी, नाविक (मल्लाह) बारी-बारी से विश्राम करके रात-दिन जहाजों को ठेलते हुए समुद्री मार्ग तय कर रहे थे। मार्ग में नये-नये द्वीप आते और कुछ देर में पीछे छूट जाते थे। इस तरह चलते-चलते अनेक दिन हो गये और राजपुरी नगर समीप आने लगा।

अकस्मात् (अचानक) एक दिन श्रीदत्त ने अनुभव किया कि बहुत जोर की आंधी (तूफान) आ गई है। आंधी के प्रबल वेग ने जहाज के मेरुदण्ड (मस्तूल) को झकझोर डाला, जहाज का पाल फाड़कर चिथड़े-चिथड़े कर दिया, वायु के प्रबल थपेड़े बिना पतवार चलाये ही विभिन्न दिशा में जहाज को वेग से ले जाने लगे।

समय संसार में सदा एक-सा नहीं रहता, जहां राग रंग के नगाड़े बजते हैं वहां शोक के बाजे बजते भी देर नहीं लगती।

बलभद्र राम प्रभात-समय राजसिंहासन पर बैठने वाले थे, अयोध्या में सर्वत्र हर्ष का समुद्र उमड़ रहा था कि उसी समय उनको राजमहल छोड़कर चौदह वर्ष तक बन में चले जाने की आज्ञा हुई, उसी अयोध्या में उसी समय घर-घर में शोक की काली घटा छा गई।

श्रीदत्त ने आंधी का वेग देख लंगर डालकर जहाज खड़ा कर देने की आज्ञा दी, लंगर डाला गया, जहाज क्षण भर के लिए रुका किन्तु आंधी की भारी ठोकर ने जहाज को विचलित कर दिया और लङ्गर की जंजीर तोड़ डाली।

उधर समुद्र भी आंधी से क्षुब्ध हो उठा, हाथी के बराबर ऊँची-ऊंची बलवान लहरें चारों ओर उठने लगीं, जिन्हें देखकर ऐसा लगता था कि पानो पहाड़ों का रूप रख कर जहाजों पर टूट पड़ रहा है। उन भयानक लहरों ने जहाज के लिए प्रलय का दृश्य (नजारा) उपस्थित कर दिया। अब वायु के साथ पानी के थपेड़े भी जहाज के बल की परीक्षा करने लगे। लहरों ने जब जहाज को अपने सामने निर्बल देखा तब वे आक्रमण (हमला) करके जहाज में भीतर घुसने लगीं।

जहाज के यात्रियों के सामने मृत्यु नृत्य करने लगी। समुद्र में जीवन का आधार जहाज ही होता है, वह जहाज ही जब वायु और समुद्री लहरों के थपेड़ों से छिन्न भिन्न होता हुआ दीखने लगा तब उन्हें अपना जीवन अनिच्छा से उस समुद्र में ही समाप्त होता हुआ जान पड़ा।

वे सब यात्री यहां तक कि जहाज को खेने वाले सब मल्लाह भी व्याकुल हो उठे। वे सब चिल्लाने लगे, रोने लगे और प्राण बचाने के लिये इधर उधर दौड़ने लगे, एवं चिन्तातुर भयातुर होकर जीवन-रक्षा का साधन ढूंढने लगे।

संसार में जीवों को सबसे अधिक प्रिय अपना जीवन है। जीवन की रक्षा के लिये ही प्रत्येक अबोध तथा सुबोध प्राणी अनेक तरह की भाग-दौड़ करता है, भयानक से भयानक और सरल से सरल तथा कठिन से कठिन काम करते हुए भी अपने जीवन पर आंच नहीं आने देता। दूसरे निर्बल जीवों के जीवन से खिलवाड़ करने वाले बलवान प्राणी भी जब अपना जीवन अरक्षित देखते हैं, तब उन की व्याकुलता देखते ही बनती है। वनराज सिंह अपने बल के अभिमान में चाहे जिस जीव को मार कर अपनी भूख मिटा लेता है किन्तु जब वह अपना जीवन मृत्यु के मुख में देखता है, उस समय लुक छिप कर अपने प्राण बचाने वाली कायरता उस की वीरता का उपहास करती है।

बानरी (बन्दरिया) अपने बच्चे से इतना प्यार करती है कि मर जाने पर भी उसे नहीं छोड़ती, अपनी छाती से चिपटाये फिरती रहती है, किन्तु जिस समय वह अपने पैरों के नीचे अग्नि ज्वाला देखती है उस समय अपने प्राण बचाने के लिये अपने उस प्रिय बच्चे को अपने पैरों के नीचे रख कर उस के ऊपर खड़ी हो जाती है।

जहाज के यात्रियों को भयातुर-व्याकुल देखकर जीवन-मृत्यु की कला से परिचित धीर वीर श्रीदत्त बड़ी गम्भीरता के साथ बोला—

जीवन-मृत्यु का रहस्य

"मित्रो ! जब तुम यात्रा करने परदेश में निकले हो तो फिर लम्बी परदेश-यात्रा से क्यों भयभीत होते हो ? जीवन और मृत्यु तो रात्रि और दिन के समान सदा आगे पीछे चलते रहते हैं; जीवन की क्षणिक विश्रान्ति ही तो 'मृत्यु है, इस विश्राम से घबड़ाते हो ? भयभीत होने से क्या तुमको मृत्यु छोड़ देगी ? मृत्यु का दिन यदि आज निश्चित है तो तुम्हें अपना जीवन उसके भिक्षा-पात्र में अवश्य डालना होगा। कोई एक तो ऐसा बलिष्ठ प्राणी बतलाओ जो मृत्यु के पंजे से बाहर हो ? यह शरीर जीव नहीं है, जीव तो इस शरीर में कुछ समय का अतिथि है, जिस समय यह अतिथि (मेहमान-यात्री) इस शरीर को अपने रहने, ठहरने योग्य नहीं समझता, उसी समय इस शरीर को छोड़ कर नये शरीर की ओर चल देता है, इस नवीन भवन (शरीर) में जाने का दूसरा नाम ही 'मृत्यु' है, इससे डरते हो ? नवीन शरीर में जाते समय हर्ष मनाओ। मृत्यु शरीर की होती है, न कि इस अजर-अमर जीव की, फिर भयभीत किस लिये हो रहे हो ? विपत्ति से तभी तक डरना चाहिये जब तक कि वह सामने न आवे, जिस समय विपत्ति सामने आ खड़ी होवे उस समय उससे भिड़ जाना चाहिये। मृत्युका समय कोई न कोई निश्चित है,

वह दो दिन पहले आया तो क्या और दो दिन पीछे आया तो क्या। इस लिये डरो मत, मृत्यु का धीरता और वीरता से स्वागत करो।

संसार में अभी तक ऐसे शस्त्र का आविष्कार नहीं हुआ जो आत्मा को छिन्न-भिन्न कर सके, ऐसा विष भी अभी तक न बन सका जो इस शरीर के अधिष्ठाता जीव का जीवन नष्ट कर सके, संसार का कोई भी प्रबल आघात जीव का विनाश नहीं कर सकता, खेद इस बात का है कि शरीर की मृत्यु को अजर अमर जीव ने भूल से अपनी मृत्यु समझ लिया है।

मित्रो ! जीवनमृत्यु के इस वास्तविक प्रश्न को समझो।

हां, तुम ने अनजान होकर जो कार्य अब तक नहीं किया वह कर डालो। शुद्ध मन से, मधुर वाणी और अचल आसन से उस नित्य निरञ्जन, निर्विकार, अनन्त-गुणी प्रभु का चिन्तन करो, जिस का ध्यान सारे दुःखों को दूर भगा देता है और जीवन में अपूर्व शक्ति, उत्साह तथा स्फूर्ति भर देता है।

श्रीदत्तकी बात सुन कर सब लोग व्याकुलता छोड़ कर निर्भय बन गये और भगवान् के चिन्तन में लीन हो गये।

सब को समझा कर श्रीदत्त स्वयं विचार करने लगा कि—

मैं घर से चला था परदेश से कुछ लाने के लिये, किन्तु घर पहुँचने से पहले ही यहां सब कुछ दिये जाता हूं। जो धन मुझे अपने गृहस्थ-जीवन के लिये आवश्यक प्रतीत हुआ था, वही

धन आज अपने साथ मुझे भी समुद्र में लिये जा रहा है, क्या इसीलिये इस का नाम रत्नाकर है ! मृत्यु की मुझे रंचमात्र-भी चिन्ता नहीं, मृत्यु की चिन्ता अन्यायी, अत्याचारी, पापी को हो, सच्चरित्र व्यक्ति उससे क्यों चिन्तित हो, चिन्ता केवल यही है कि परिवार को मैं यहां से अपना अन्तिम समाचार नहीं भेज सकता, मेरी परदेश यात्रा की खबर तो उन को है, निकट आई हुई मेरी इस महायात्रा की खबर उन्हें नहीं है। अस्तु। कोई बात नहीं. अब जीवन विश्राम लेना चाहता है तब इन निःसार चिन्ताओं से उसमें क्यों विघ्न डालूं।

श्रीदत्त यह साच ही रहा था कि आंधी के भयानक आघात तथा समुद्र की भयानक लहरों की टक्कर ने उस जहाज को छिन्न भिन्न कर दिया। बना हुआ सुदृढ़ मनोहर ढांचा बिखर कर टुकड़े-टूकड़े हो गया, जहाज के यात्री समुद्र पर पानी के बुलबुलों की तरह दिखाई देने लगे। अपने- शरीर के सिवाय किसी के पास कुछ न रहा और वह शरीर भी साथ छोड़ने के लिये तयार हो गया।

संसार की क्या अद्‌भुत लीला है जागृत (जीवित) अवस्था में यह जीव अचेत रहता है, एक-एक कण को पकड़ कर उसे अपना बनाना चाहता है, अंगुल-अंगुल भर भूमि पर स्वामित्व जमाता है और जब जाग्रत दशा-जीवन का अन्त होता है तब सब कुछ छोड़ देता है, मानो उस समय इसकी निद्रा भङ्ग होती है, और तात्विक बोध विकसित हो उठता है।

धीर गम्भीर श्रीदत्त भी गम्भीर समुद्र में जल-आधार पर आ गिरा, श्रीदत्त का साहस और धैर्य अटल था, वह जरा भी न घबराया, उसने इधर उधर दृष्टि डाली, कुछ दूर पर उसके जहाज की लकड़ी का एक बड़ा टुकड़ा दिखाई दिया, हाथ पैर मारकर उसने उस लकड़ी को जा पकड़ा और उसके सहारे किनारे की ओर तैरते हुए पवित्र हृदय और शुद्ध वाणी से इष्ट परमात्मा का स्मरण करने लगा। परमात्मा के चिन्तवन से उसका मानसिक बल और भी बढ़ गया। तब वह भुजाओं की शक्ति से समुद्र को पीछे धकेलता हुआ किनारे की ओर अग्रसर होने लगा, लकड़ी का टुकड़ा उसके तैरने में जितनी सहायता करता था, किनारे की ओर बहने वाली वायु और समुद्र को लहरें उससे भी अधिक उसकी सहायक बन रही थीं। परिणाम यह हुआ कि श्रीदत्त समुद्र के किनारे पर जा लगा, उसके साथियों का क्या हुआ, श्रीदत्त को इसका कुछ पता न चला।

समुद्र-तट पर पहुंच कर श्रीदत्त अपनी थकान मिटाने के लिये एक वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम करने लगा, इतने में वहां उसे एक पुरुष अपनी ओर आता हुआ दिखाई दिया। उस आगन्तुक ने श्रीदत्त को नमस्कार किया और उससे कुशल समाचार पूछे।

श्रीदत्त के हृदय में भरी हुई शोक-घटा उमड़ आई और रुन्धे हुए स्वर में धीरे-धीरे समुद्र की घटना कह सुनाई, अन्त में कहा कि अकेला मैं बचा हूं और सब कुछ समुद्र के उदर में चला गया है, यही मेरा कुशल या अकुशल समाचार है।

आगन्तुक मनुष्य ने उसको धीरज बन्धाया और कहा कि जीव का सर्वस्व उसका स्वस्थ-शरीर है जिसके आधार से उसका जीवन विविध लीलायें करता है, सो आपके पास है ही। यही आपका सर्वस्व (सब कुछ) है, अन्य चीजें तो फिर भी मिल जावेंगी।

आप मेरे साथ चलिये, आपको राजपुरी पहुंचाने की व्यवस्था कर दी जायगी। श्रीदत्त उस मनुष्य के साथ चल दिया।

मार्ग में उस मनुष्य ने श्रीदत्त से कहा कि विजयार्द्ध पर्वत के दक्षिणी भाग के गान्धार देश में 'नित्यालोक' नाम का एक नगर है, वहां के भूपति का नाम 'गरुड़वेग' है, उसकी रानी का नाम 'धारिणी' है, उनके एक सर्वगुण-सम्पन्न अनिन्द्य-सुन्दरी 'गन्धर्वदत्ता' नामक कन्या है, वह कन्या यौवन के प्रथम चरण में प्रवेश कर रही है, अपनी पुत्री की यौवन दशा देखकर माता पिता को उसके पाणिग्रहण की चिन्ता हुई।

कन्या के शरीर पर जब यौवन के चिह्न प्रकट होते हैं, तब उसके शरीर के प्रत्येक अङ्ग पर सौन्दर्य की छटा छिटकने लगती है, किन्तु माता-पिता के हृदय में उसी समय से चिन्ता का अंकुर उत्पन्न हो उठता है, और ज्यों-ज्यों उस पुत्री का यौवन-सौन्दर्य निखरता है, माता-पिता की चिन्ता भी त्यों-त्यों उग्र होने लगती है। मनुष्य अन्य सब वस्तुओं को अपने घर में रख सकता है परन्तु अपनी युवती पुत्री को अपने घर में अधिक दिन तक नहीं रख सकता, उसका तो किसी योग्य पुरुष के साथ पाणिग्रहण

करना ही पड़ता है। विवाह हो जाने पर भी पुत्री के सुख-दुःख को चिन्ता माता-पिता को जन्म भर करनी पड़ती है।

गरुड़वेग ने निमित्त-ज्ञानी (ज्योतिषी) से पूछा कि मेरी पुत्री का वर किस तरह, कहां पर मिलेगा? निमित्त ज्ञानी ने उसे बताया कि राजपुरी में गन्धर्वदत्ता को जो व्यक्ति वीणा बजाने में जीत लेगा, वही उस का पति होगा।

आप के वंश के साथ गरुड़वेग का कुल-क्रम से पुराना प्रेम-सम्बन्ध चला आ रहा, अतः गन्धर्वदत्ता को आप के घर पहुंचाने का उपक्रम बनाया गया है। यह बात जान कर कि आप इधर समुद्र-मार्ग से आ रहे हैं, आप को लाने के लिये मुझे यहां भेजा है।

गरुड़वेग उन विद्याधरों का राजा है जो आकाश में उड़ने आदि अनेक प्रकार की विद्याओं के स्वामी होते हैं। गरुड़वेग को अपना मित्र जान कर श्रीदत्त को मन में हर्ष हुआ, क्यों कि समृद्धि-सम्पन्न पुरुष की मित्रता से अनेक प्रकार के लाभ अनायास ही मिल जाते हैं।

श्रीदत्त उस आगन्तुक विद्याधर के साथ आकाश-मार्ग से नित्यालोक नगर जा पहुंचा। गरुड़वेग ने श्रीदत्त का बहुत सम्मान किया, और धन तथा माल नष्ट हो जाने की चिन्ता मन से दूर करने की उस को प्रेरणा की, श्रीदत्त को गरुड़वेग ने आश्वासन दिया कि जितना धन चाहिए यहां से अपने साथ राजपुरी ले जाओ, गन्धर्वदत्ता तुम्हारी पुत्री है, इस का विवाह खूब समारोह से करो।

श्रीदत्त का हृदय प्रफुल्लित हो गया, उस की समस्त चिन्ताएं और व्याकुलता तत्काल दूर हो गई।

ठीक है, गृहस्थ की प्रायः सारी समस्यायें धन के द्वारा हल हो जाती हैं। परिवार का पालन पोषण, समाज में यश, राज्य में सम्मान और लोक में अभ्युदय मनुष्य को धन-द्वारा प्राप्त होता है, धन के द्वारा पुरुष घर में स्वर्ग और जंगल में मंगल कर सकता है। जो काम जगत् में असाध्य और कठिन माने जाते हैं वे धन-बल से साध्य और सरल हो जाते हैं। धन के कारण मनुष्य के हृदय में उल्लास, उत्साह, पराक्रम हिलोरें लेता रहता है, समस्त योग्यतायें विकसित हो जाती हैं. वाणी में प्रभाव और शरीर में स्फूर्ति आ जाती है, धनी व्यक्ति को सारा संसार हरा-भरा दीख पड़ता है। जिस समय धन की गर्मी मनुष्य से दूर हो जाती है उस समय स्वस्थ बलवान् शरीर भी बलहीन हो जाता है, मुख पर कान्ति नहीं रहती, वाणी स्वयं प्रभाव-शून्य हो जाती है, मन से उत्साह विदा ले लेता है, बुद्धि में स्फूर्ति नहीं रहती, चित्त विक्षिप्त हो जाता है।

धन-नाश से कोई-कोई मनुष्य उन्मत्त (पागल) हो जाते हैं और किसी मनुष्य के हृदय पर इतना भारी आघात लगता है कि वह आत्म-हत्या तक कर बैठता है। अथवा उसकी हृदय गति रुक जाने से मृत्यु तक हो जाती है; इस कारण अर्थ (धन) भी एक प्राणशक्ति है। यानी—धन के समागम पर मनुष्य स्वयं तेजस्वी बन जाता है और धन-नाश होते ही वह सारा तेज क्षण भर में न जाने कहां चला जाता है।

जो श्रीदत्त समुद्र में सर्वस्व नष्ट हो जाने से निष्प्रभ तथा निष्क्रिय हो गया था वही श्रीदत्त क्षण भर में गरुड़वेग के द्वारा धन-प्राप्त होने की आशा में प्रफुल्लित हो उठा, उसकी सारी मानसिक, वाचनिक और शारीरिक शक्तियां पहले की तरह कार्य करने लगीं।

गरुड़वेग ने श्रीदत्तको कुछ दिन अपने यहां ठहरा कर उसका अच्छा अतिथि-सत्कार किया, फिर उसको विपुल धन सम्पत्ति प्रदान की और राजपुरी में स्वयम्वर-विधि से विवाह कर देने के लिये अपनी पुत्री गन्धर्वदत्ता को उसके साथ करके बड़े प्रेम से विदा किया।

श्रीदत्त ने राजपुरी में बहुत हर्ष और उत्साह से प्रवेश किया अपने घर पहुंचकर वह अपने परिवार से मिलकर प्रसन्न हुआ।

श्रीदत्त की पत्नी ने जब सुन्दरी नवयुवती गन्धर्वदत्ता को अपने पति के साथ घर आया देखा तो उसे कुछ आशङ्का हुई कि क्या मेरा स्वामी परदेश से विपुल-लक्ष्मी के साथ-ही साथ इस युवती लक्ष्मी को भी विवाह कर लाया है?

मनुष्य जिस प्रकार अपनी भार्या (पत्नी) को किसी अन्य पुरुष के साथ आसक्त नहीं देखना चाहता, उसकी प्रिया भार्या यदि किसी अन्य पुरुष से प्रेम करने लगती है तो उसको महान मार्मिक दुःख होता है, इसी प्रकार सती पत्नी भी अपने पति में पत्नीव्रत देखना चाहती है; वह यदि अपने पति का चित्त अपने सिवाय किसी अन्य स्त्री में फंसा हुआ देखती है तो उसे महान

दुःख होता है। यदि उसका पति उसके रहते हुए अन्य विवाह कर लेता है तो वह भी स्त्री को सहन नहीं होता, इसी कारण सौत का दुःख भी जगत् में बहुत पीड़ादायक माना जाता है। स्त्री की अभिलाषा रहती है कि जिस तरह वह अपना सर्वस्व अपने पति के लिए समर्पण कर देती है, उसी तरह उसका पति भी उसके लिए करे।

श्रीदत्त की पत्नी ने अन्य बातें पूछने से पहले गन्धर्वदत्ता के विषय में पूछा कि यह लड़की कौन है? और आपके साथ कैसे आई है?

श्रीदत्त ने गम्भीरता से उत्तर दिया कि मेरे मित्र, विद्याधरों के राजा गरुड़वेग की यह पुत्री है और निमित्त-ज्ञानी के कथनानुसार इसका यहां राजपुरी में विवाह किया जायगा।

पति का उत्तर सुनकर श्रीदत्त की पत्नी सन्तुष्ट हुई तदनन्तर उसने परदेश-यात्रा की अन्य बातें अपने पति से पूछीं, श्रीदत्त ने प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सारे समाचार उसको कह सुनाये।

दूसरे ही दिन श्रीदत्त राजपुरी के अधिपति काष्ठाङ्गार के पास गया। परदेश से लाये हुए कुछ मूल्यवान रत्न उसने राजा को भेंट किये और गन्धर्वदत्ता के स्वयम्बर के विषय में अनुमति (आज्ञा) मांगी। काष्ठाङ्गार ने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

तब श्रीदत्त ने एक सुन्दर विशाल स्वयम्वर मण्डप बनवाया और शुभ दिन नियत करके आस पास के नगरों में तथा राजपुरी में घोषणा करा दी कि 'जो व्यक्ति वीणा बजाने में

गन्धर्वदत्ता को जीत लेगा वह गन्धर्वदत्ता का स्वामी होगा।'

सुन्दर कन्या के मिलने की आशा से आकर्षित होकर अनेक नगरों के राजा विशाल वैभव के साथ सज धज कर निश्चित दिन पर राजपुरी में एकत्र हुए। स्वयम्वर-मण्डप बाहर से आये हुए राजपुत्रों से, क्षत्रिय युवकों तथा राजपुरी के दर्शनार्थियों से खचाखच भर गया, जीवन्धर कुमार भी अपने मित्रमण्डल के साथ सज धज कर आया और काष्ठाङ्गार भी स्वयम्वर मण्डप की कार्यवाही देखने को यथासमय आ गया।

मण्डप गोल आकार में बना था, चारों ओर आगन्तुक मनुष्यों के बैठने के लिये स्थान बनाया गया था और बीच में एक ऊंचा सुन्दर मञ्च (स्टेज) बनाया गया था। मञ्च पर सुन्दरी लजीली किन्तु चंचला गन्धर्वदत्ता अपनी अनेक वीणाऐं साथमें लेकर आ बैठी।

गन्धर्वदत्ता एक तो स्वयं सुन्दरी थी ही, उस का वर्ण कमल के समान गौर था, मुख लाल और नेत्र हरिणी के समान बड़े और चंचल थे। तथा नाक, कान आदि शरीर के सभी अवयव एक दूसरे की अपेक्षा अधिक सुन्दर थे। दूसरे नव-यौवन ने उस के शरीरके समस्त अङ्ग उपाङ्गों को उभार कर उसके लावण्य को और भी अधिक निखार दिया था, कांति से उसका मुखमण्डल दर्पण की तरह चमकता था। इन सब बातों से उसके शरीर में अपूर्व आकर्षण आ गया था, इसी कारण मण्डप की समस्त जनता एक टक दृष्टि से गन्धर्वदत्ता को देख रही थी। विवाह के इच्छुक

युवक-पुरुषों के हृदय गन्धर्वदत्ता को देखकर मन ही मन मोहित हो रहे थे और उनके हृदय में एक विचित्र खलबली उन्हें व्याकुल कर रही थी।

नियत समय पर बाजों की मङ्गल ध्वनिपूर्वक स्वयम्वरका कार्य प्रारम्भ हुआ। गन्धर्वदत्ता सम्हल कर बैठ गई, और उसने परखी हुई अपनी वीणाओं को अपने सामने रख लिया। उसकी धाय और दासियां उसके पास बैठ गई। एक प्रतिहार यथा-क्रम से एक-एक वीणा बजानेवाले युवक को बुलाने लगा। प्रत्येक युवक गन्धर्वदत्ता के सामने आकर अपनी-अपनी वीणा से वीणा बजाने का कौशल प्रकट करने लगा।

गन्धर्वदत्ता जितनी सुन्दर थी उससे भी अधिक वीणा बजाने में चतुर थी, उसकी वीणा से जो मधुर ध्वनि लय, ठीक आरोह अवरोह के साथ निकलती थी, उसे सुनकर जनता शिर हिलाने लगती।

गंधर्वदत्ता की बीन बजाने की प्रवीणता देखकर बहुत से युवकों को तो उसके सामने आने का साहस ही न हुआ, बहुत से अपना उपहास होने की आशङ्का से अपने स्थान से न उठे, बहुत से अपने स्थान से उठे तो सही किन्तु एक स्त्री के सामने हार जाने की आशङ्का से फिर अपने आसन पर बैठ गये। कुछ युवक यह विचार कर गन्धर्वदत्ता के सामने आये कि जय पराजय (जीत हार) की तो कोई बात नहीं किन्तु इस सुन्दरी कन्या को समीप से जाकर अच्छी तरह देख तो लेंगे। वे जब एक-एक

करके उसके सामने आकर बैठे तो उसका मनोहर रूप देखकर वीणा बजाना ही भूल गये उनको अपनी हार तथा हंसी का भी कुछ ध्यान न रहा।

कुछ युवक साहस और उत्साह के साथ गन्धर्वदत्ता के सामने वीणा बजाने आये और उन्होंने भरपूर यत्न भी किया, अनेक प्रकार के राग रागिनी वीणा द्वारा गाकर गन्धर्वदत्ता को हराना चाहा किन्तु गन्धर्वदत्ता ने गान और वीणा-वादन (बीन बजाने) में जो प्रवीणता प्राप्त की थी उसके सामने सफल न हो सके।

जो व्यक्ति गन्धर्वदत्ता से हार जाता था वह झेंपकर पृथ्वी की ओर देखता हुआ चुपचाप अपने आसन पर उदासीन होकर जा बैठता था। आस पास के मनुष्य भी उसका उपहास करते न चूकते थे।

इस तरह अकेली गन्धर्वदत्ता ने अनेक वीणा बजाने वालों को क्रम क्रम से परास्त कर दिया। जीवन्धरकुमार बड़े ध्यान से गन्धर्वदत्ता के वीणा बजाने को देखता तथा सुनता रहा और उन सब बातों को ताड़ता रहा जिनके कारण गन्धर्वदत्ता विजय पाती थी।

जब बाहर से आये हुए सब युवक गन्धर्वदत्ता के सामने हार चुके, तब जीवन्धर कुमार बड़ी धीरता और साहस के साथ मुस्कराता हुआ अपने आसन से उठा और हाथी की तरह भूमता हुआ गन्धर्वदत्ता के सामने अपनी घोषवती वीणा के साथ जा पहुँचा।

गन्धर्वदत्ता जीवन्धर के सुन्दर, प्रसन्न, तेजस्वी, मन्दस्मित मुख को देखकर मुग्ध हो गई। जीवन्धर ने गन्धर्वदत्ता से बजाने के लिये वीणा मांगी, गन्धर्वदत्ता ने अपने पास रखी हुई वीणाओं में से एक उठाकर दे दी।

जीवन्धर ने देखा कि उसका मुख-छिद्र अधिक चौड़ा है, जिससे मोटा स्वर निकलेगा, अतः उसने वहवीणा गन्धर्वदत्ता को लौटा दी और दूसरी वीणा मांगी। गन्धर्वदत्ता ने दूसरी वीणा दे दी।

जीवन्धर ने उसे ध्यान से देखा तो उसका मुखछिद्र अधिक छोटा था जिसमें बहुत बल लगाने पर भी मन्द स्वर निकलता, अतः उसने तीसरी वीणा मांगी।

गन्धर्वदत्ता समझ गई कि जीवन्धर इस विषय का चतुर खिलाड़ी है, तब उसने तीसरी वीणा जीवन्धर को दी, उस वीणा का छिद्र ठीक था किन्तु उसमें कुछ रोंये थे, अतः जीवन्धरको वह भी निर्दोष न जंची, तब उसने वह वीणा भी लौटा दी।

अन्त में जीवन्धर अपनी घोषवती वीणा से ही गन्धर्वदत्ता के साथ प्रतियोगिता के लिये तयार हुआ।

जिन-जिन राग रागिनियों के साथ गन्धर्वदत्ता ने अन्य लोगों को हराया था, जिस आरोह अवरोह के साथ वह वीणा बजाती थी, जीवन्धर वह सब कुछ जान चुका था, अतः जीवन्धर ने उन राग रागिनियों के सिवाय अन्य राग रागिनियों के साथ वीणा बजाई।

जीवन्धर तरुण, बलवान् युवक था, दीर्घ काल तक स्वर साधने तथा तीव्रतम ध्वनि निकालने की क्षमता (शक्ति) उसमें स्वभाव से थी, अतः जिस समय जीवन्धर ने वीणा बजाई, तब समस्त मण्डप में सन्नाटा छा गया, समस्त जनता मन्त्रमुग्ध सी हो कर जीवन्धर का वीणा सुनने लगी। जिस समय वह पंचम स्वर में राग अलापता, उस समय श्रोताओं के शिर झूमने लगते।

इसके उत्तर में गन्धर्वदत्ता ने बहुत प्रयत्न किया कि जीवन्धर से भी विशेष आकर्षक स्वर में वीणा बजा दिखावे किन्तु विशेषता प्राप्त करना तो दूर, वह जीवन्धर की बराबरी भी न कर सकी। अन्त में उसने अपने आप अपनी वीणा पृथ्वी पर रखदी।

जीवन्धर के मित्रों ने, नन्दगोप आदि ग्वालमण्डली ने, गन्धोत्कट के प्रिय-जनों ने तथा राजपुरी की जनता ने जीवन्धर की विजय पर बड़ी हर्ष-ध्वनि की जिससे स्वयम्वर-मण्डप गूंज उठा। चारों ओर से उपस्थित जन जीवन्धर को तथा उसके पिता को बधाई देने लगे।

उधर जीवन्धर-जैसा अनुपम सुन्दर वर पाकर गन्धर्वदत्ता मन ही मन सबसे अधिक प्रसन्न हुई, उसने अपनी पराजय (हार) को जय (जीत) से भी अधिक मूल्यवान समझा।

उसका ऐसा समझना उचित ही था क्योंकि जिस व्यक्ति के साथ संसार सागर में अपनी जीवन-नौका खेनी है वह यदि

अपने मन के अनुसार सर्वगुण-सम्पन्न मिल जावे तो कन्या का इससे बढ़कर हर्ष और क्या हो सकता है ?

गन्धर्वदत्ता ने अपनी धाय को संकेत किया, धाय ने प्रसन्न होकर गन्धर्वदत्ता के हाथ में पुष्पमाला दी। गन्धर्वदत्ता ने मुस्कराते हुए हरिणी-समान चञ्चल किन्तु लज्जा से नम्र नेत्रों से जीवन्धर का मुख देखते हुए अपने कांपते हुए हाथों से वह वरमाला हृदय के अनुराग के साथ जीवन्धर के गले में डाल दी ।

मण्डप में विराट् हर्षनाद हुआ, जनता जीवन्धर का जयघोष करने लगी और हर्ष के बाजे मधुर स्वर में बजने लगे।

श्रीदत्त को बहुत प्रसन्नता हुई। लोग परस्पर कहने लगे कि कन्या और वर एक दूसरे से अधिक सुन्दर और गुणी हैं, वर कन्या का ऐसा सुन्दर सुयोग कठिनता से मिला करता है, गन्धर्वदत्ता बहुत भाग्यशालिनी है जो उस को जीवन्धर जैसा वर प्राप्त हुआ है।

जीवन्धर की विजय पर जहां सब को हर्ष हुआ वहां काष्ठाङ्गार के हृदय में बहुत दुःख हुआ। उसने भीतर ही भीतर हारे हुए राजाओं को भड़काया कि यह कन्यारत्न तो राजपुत्रों के योग्य है। आप लोगों के रहते हुए यह तोल नाप करने वाला वैश्यपुत्र इस कन्या का स्वामी कैसे हो सकता है ? इस को इस अतिसाहस का दण्ड अवश्य मिलना चाहिए।

काष्ठाङ्गार की बात सुन कर कुछ राजाओं ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया, कुछ राजाओं ने कहा कि स्वयम्वर की

मर्यादा तोड़ना क्षत्रियों का काम नहीं, जब जीवन्धर ने विजय प्राप्त की है तब वही उस कन्या का स्वामी है। कुछ ईर्ष्यालु राजा काष्ठाङ्गार की बातों में आ गये और कहने लगे कि 'जगत में जो भी उत्तम वस्तु होती है उस का स्वामी राजा होता है, न कि वैश्य। इसलिए जीवन्धर को मार भगा कर गन्धर्वदत्ता को इससे छीन लेना चाहिये।'

मनुष्य को सुमति तथा कुमति आते कुछ देर नहीं लगती, सुमति आने पर मनुष्य स्व-परहितकारी कार्य करता है, शान्त, सुखकर वातावरण बनाता है, न्याय-मर्यादा की रक्षा करता है तथा मनुष्य से देव बन जाता है, किन्तु जब मनुष्य के हृदय पर कुमति का उदय होता है तब वह दानव बन जाता है और अपने कुल की स्वच्छ मर्यादा को तोड़ कर ऐसे निन्दनीय कार्य करने पर उतारू हो जाता है, जिससे जनता में क्षोभ जाग उठता है। अशान्ति कलह का नृत्य होने लगता है, उस समय उस मनुष्य को अपनी निन्दा, अपयश तथा आने वाली विपत्ति का रंचमात्र भी ध्यान नहीं रहता।

काष्ठांगार द्वारा भड़काये गये उन राजाओं ने जीवन्धर पर आक्रमण करने की ज्यों ही चेष्टा की, कि तत्काल जीवन्धर और उस के मित्रों ने धनुष उठाया और जोर से धनुष की डोरी की टङ्कार की।

रंग में भंग पड़ गया, हर्ष में विभोर जनता धनुष की टङ्कार सुन कर चकित रह गई और भयभीत हो हड़बड़ा कर इधर उधर

भागने लगी। गन्धर्वदत्ता भयभीत हरिणी की तरह इधर उधर देखने लगी। जीवन्धर ने उस को धैर्य बन्धाया कि मैं अभी क्षण भर में इन लोगों को मार भगा देता हूँ। समस्त मण्डप में एक दम क्षोभ मच गया।

जीवन्धर के धनुष की टङ्कार सुन कर विपक्षी राजा भी समझ गये कि जीवन्धर तोलना नापना ही नहीं जानता बल्कि धनुष वाण का भी खिलाड़ी है। देखते ही देखते जीवन्धर और उसके मित्रों के धनुष, वर्षा-ऋतु की जल-वर्षा की तरह वाण-वर्षा करने लगे और विपक्षी ईर्ष्यालु राजाओं को संभलने का अवसर भी न दिया।

ऐसी विकट स्थिति में उन राजाओं ने अपना प्राण बचाना ही उचित समझा और तुरन्त पीठ दिखा कर रण-भूमि से इधर उधर भाग खड़े हुए। तथा अपना मुख छिपाकर चुपचाप अपने घरों की चल दिये। अशान्ति की ज्वाला जितने वेग से उठी थी उतने ही वेग से वह भी शांत हो गई। गन्धर्वदत्ता ने जान लिया कि उसका पति केवल वीणा बजाना ही नहीं जानता बल्कि वह एक धीरवीर योद्धा भी है।

जीवन्धर का एक वार फिर विजयघोष हुआ, न्याय-प्रिय लोगों के हृदय में इससे अपार हर्ष हुआ परन्तु काष्ठाङ्गार का हृदय और भी अधिक ईर्ष्या से जल भुन गया।

दुर्जन मनुष्य अकारण दूसरे की हानि पर बहुत प्रसन्न होता है, चाहे उसको उस हानि से कुछ भी अपना लाभ न हो और

अन्य पुरुषों का अभ्युदय (बढ़वारी) देख कर दुर्जन को असीम दुःख होता है, चाहे उस अभ्युदय से उसकी अपनी हानि कुछ भी न हो।

शांति हो जाने पर इस सब घटना से श्रीदत्त सेठ बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि उसके मित्र गरुड़वेग ने जो भार उसको सौंपा था, वह भार उसका बहुत कुछ हलका हो गया।

घर आकर श्रीदत्त ने एक सुन्दर विवाह-मण्डप तयार कराया और शुभ मुहूर्त में गन्धर्वदत्ता का पाणिग्रहण जीवन्धर के साथ बहुत धूमधाम से कर दिया।

गन्धर्वदत्ता विद्याधर की पुत्री थी, अतः दूर देश की बात जान लेना, थोड़े से समय में सैंकड़ो कोश दूर पहुंच जाना तथा दूसरे को पहुँचा देना आदि अनेक विद्याओं में वह पारङ्गत थी।

गन्धोत्कट और उसकी पत्नी सुनंदा ने रूपवती, गुणवती गन्धर्वदत्ता का पुत्र-वधू के रूप में अपने घर पर अच्छा स्वागत किया।

जीवन्धर और गन्धर्वदत्ता परस्पर में बहुत प्रेम के साथ एक दूसरे का सम्मान करते हुए आनन्द से रहने लगे।



चौथा प्रसंग

ऋतुराज वसन्त के स्वागत में वायु मन्द-मन्द बहने लगी, पृथ्वी ने हरी घास की कोमल चादर बिछा दी, खेतों में सरसों के फूलों ने संसार को वसन्त के आगमन की सूचना दी, वृक्षों ने नवीन पत्र, कोपलों के हरे वस्त्र पहने, वन उपवन विचित्र रंगीन सुगन्धित पुष्पों से महक उठे, मन्द पवन से झूमती हुई वृक्षों की टहनियां लोगों को अपनी ओर बुलाने लगीं। कोयल पंचम स्वर में मधुर राग अलापने लगी, असह्य शीत के विलय हो जाने पर जगत के अणु-अणु में हर्ष-उत्साह की धारा फूट निकली, जनता में अपूर्व मस्ती जागृत हुई। रात्रि को वायु की हलकी थपकी से सारा जगत गहरी नींद का आनन्द लेता और दिनों में विभिन्न क्रीड़ाओं में मस्त हो जाता।

राजपुरी के बाहर अनेक स्वच्छ सरोवर जल से भरे हुए थे, उनमें लाल, नील, श्वेत कमल के फूल खिले हुए थे, मन्द वायु के झकोरे उनमें धीमी धीमी लहरें उठाते और कमल के फूल हिल-हिल कर लोगों को जलक्रीड़ा के लिए बुलाने का संकेत कर रहे थे। कलहंस, क्रौंच, सारस आदि पक्षी जलक्रीड़ा का आनन्द लेते हुए जो परस्पर मधुर प्रेमालाप करते थे उसको सुनने के लिये स्त्री पुरुषों का ध्यान उस ओर अनायास आकृष्ट हो जाता था।

सरोवरों के चारों ओर बनी हुई सीढ़ियों को पवन और जल की लहरों ने धोकर जनता के लिये साफ कर दिया था।

राजपुरी की जनता जलक्रीड़ा का आनन्द अनुभव करने के लिये घरों से बाहर निकल पड़ी, वसन्ती वस्त्र पहने, तेल, उबटन आदि सामग्री अपने अपने साथ लेकर किशोर, कुमार, तरुण, स्त्री, पुरुष अपनी २ मित्र-मंडली के साथ लेकर सरोवरों की ओर चल पड़े।

जीवन्धर की युवक टोली भी जीवन्धर के साथ बाहर निकली अपने मित्रों के बीच में जीवन्धर ऐसा दीखता था जैसे कि तारों के बीच में चन्द्र मण्डल।

मार्ग में एक स्थान पर कुछ ब्राह्मण हवन करने की तयारी कर रहे थे, वे स्नान करके स्वच्छ पवित्र वस्त्र पहन कर बैठ थे। हवन कुण्ड के समीप दूध, घी, धूप, चन्दन, कपूर, नारियल, दाख छुहारा आदि मेवा, लकड़ी आदि हवन की सामग्री रक्खी हुई थी। ब्राह्मण पुजारी हवन-कुण्ड में लकड़ियां रख रहे थे, कि इतने में अचानक वहां पर एक कुत्ता आ गया और उसने लपक कर दूध घी को चाटना प्रारम्भ कर दिया।

ब्राह्मणों की दृष्टि जब कुत्ते पर पड़ी तो उनको उस कुत्ते पर बहुत क्रोध आया कि इसने हमारी हव्य सामग्री अपने अपवित्र मुख से दूषित कर डाली, अब हम हवन किस तरह करेंगे?

उन्होंने हवन के लिये आई हुई लकड़ियाँ अपने हाथों में उठा लीं और सब-के-सब उस कुत्ते पर टूट पड़े। बड़ी निर्दयता के

साथ कुत्ते को मारने लगे। कुत्ता लकड़ियों की मार से बुरी तरह चिल्लाने लगा। कुत्ते के उस करुणाजनक चिल्लाने का प्रभाव उन ब्राह्मणों के हृदय पर कुछ न हुआ, कुत्ते का शरीर घायल हो जाने पर भी वे सब पुजारी शान्त न हुए और वे उसे मारते ही रहे।

क्रोध एक ऐसी भयानक गर्मी है जो मनुष्य के मस्तिष्क को बिगाड़ देती है, क्रोधी मनुष्य का विवेक, करुणा, क्षमा, धैर्य आदि गुण दूर भाग जाते हैं। मानवता का स्थान दानवता ले लेती है, बुद्धि का सन्तुलन बिगड़ जाता है और विचारशक्ति नष्ट हो जाती है, इस कारण मनुष्य क्रोध में आत्म-घात, पर-घात, बाल-घात, स्त्री-घात आदि कुकृत्य करते भी नहीं चूकता।

जल-क्रीड़ा के लिये जाते हुए जीवन्धर ने कुत्ते की करुण आवाज सुनी, उसका हृदय दया से एकदम भर गया। वह अपने मित्रों के साथ कुत्ते को बचाने दौड़ा, उसने वहाँ पहुँचते ही उन क्रोध से अन्धे ब्राह्मणों को एक ओर हटाया और उनको उनको फटकार कर कहा—

तुम लोग यह क्या कर रहे हो? निर्बल प्राणी को ऐसी निर्दयता से मारना क्या मनुष्य का कर्त्तव्य काम है? ऐसी मार यदि तुम्हारे ऊपर पड़े तो बताओ, तुम्हारी क्या दशा होगी? यह कुत्ता तो बेचारा अज्ञानी दीन-हीन पशु है, इसके ऊपर अपना बल दिखलाना कौन-सी बुद्धिमानी है? इधर तो हवन करके तुम धर्म करना चाहते हो और उधर कुत्ते की हत्या करते

हुए भी नहीं डरते ? विचारो तो सही तुम में और पशु में क्या अन्तर रहा ?

जीवन्धर को सामने खड़ा देखकर वे ब्राह्मण सिटपिटा गये उनके मस्तक से क्रोध का नशा तुरन्त उतर गया और अपने कृत्य पर बहुत लज्जित हुए. उनके मुख से कुछ भी उत्तर देते न बना।

फिर जीवन्धर ने कुत्ते की ओर देखा, कुत्ते की बुरी दशा थी, वह अब चिल्ला भी न सकता था, लम्बी-लम्बी सांसें लेकर सिसक रहा था, उसके शिर पर घातक चोटें लगी थीं इसलिये उसके शिर और मुख से रक्त बह रहा था, उसके पैर छटपटा रहे थे, नेत्रों की पुतलियां ऊपर चढ़ गई थीं, उसका रोम-रोम मनुष्य की राक्षस-वृत्ति की साक्षी दे रहा था, तथा इस दयाहीन संसार से प्रयाण करने की तयारी कर रहा था।

जीवन्धर ने उसके मुख में पानी डाला और उसके शरीर पर हवा करने लगा किन्तु इन उपचारों से कुछ भी लाभ न हुआ। जीवन्धर ने देखा कि अब इसका जीवित रहना असंभव है, तब जीवन्धर ने अन्त समय उसके हृदय में कुछ शांतिका संचार करने का उपाय किया, उसको बहुत मीठे शब्दों में सुन्दर उपदेश दिया और णमोकार मंत्र सुनाया।

कुत्ता बहुत बुद्धिमान पशु होता है, मनुष्य के संकेत, क्रिया तथा शब्दों को समझ लेता है, तदनुसार जीवन्धर के सान्त्वना तथा धैर्य देने वाले मिष्ट वचन और परमदेव के नमस्कार की ध्वनि कुत्ते ने शान्ति के साथ श्रवण की, क्षण भर उसका चित्त क्लेश की

ओर से हटकर शान्ति का अनुभव करने लगा। उसी समय उसने अन्तिम श्वास लेकर अपना पशु-जीवन समाप्त किया।

जीवों की आगामी आयु प्रायः जीवन के अन्त समय बना करती है, उस समय जीवोंके जैसे शुभ, अशुभ विचार होते हैं उनके ही अनुसार उन जीवों को शुभ अशुभ योनि में ले जाने वाली आयु का सम्पर्क जुड़ जाता है। जगत में इसी लिये किंव-दन्ती (कहावत) प्रसिद्ध है कि 'अन्त मति, सा गति'। उस कुत्ते का भविष्य अच्छा था इस कारण संयोग से उसके अन्त समय जीवन्धर वहा आ पहुँचे और उन्होंने मरणासन्न उस कुत्ते के हृदय में शान्ति का संचार किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि कुत्ते ने देव-योनि प्राप्त की, वह मर कर यक्षेन्द्र हुआ।

जीव अपने अशुभ मानसिक भावों से ही नरक जा पहुँचता है और अपने शुभ विचारों के ही कारण देव शरीर पा लेता है।

देव उत्पन्न होते ही थोड़े समय में पूर्ण युवा (जवान) हो जाते हैं, मनुष्य की तरह शिशु, किशोर, कुमार, युवा दशाओं में देवों को वर्षों नहीं लगाने पड़ते। अतः यक्षेन्द्र ने उत्पन्न होते ही, अपने दिव्य (अवधि) ज्ञान से अपने जन्म पर दृष्टि डाली तब उसको ज्ञात हुआ कि 'मैं एक कुत्ता था, लकड़ियों की मार से जब मरण के समीप हुआ तब जीवन्धर ने अचानक मेरे पास पहुंच कर अपने उपदेश से मेरा उद्धार किया, इसलिये जीवन्धर मेरा बहुत उपकारी मित्र है। सबसे पहले उससे मिलना उचित है।'

ऐसा विचार कर वह यक्षेन्द्र जीवन्धर के पास आया और हाथ जोड़ कर उनके सामने खड़ा हो गया और कहने लगा कि–"मैं आपका दास यक्षेन्द्र हूँ, कुछ देर पहले जब मैं कुत्ते के शरीर में दुःख से छटपटा रहा था तब आपने अपनी शुभ वाणी से जो मेरा उपकार किया उसी का फल आप देख रहे हैं, मैं यक्षेन्द्र हुआ हूँ, आप मेरे अकारण-बन्धु, महान्-उपकारी मित्र हैं, जब कभी आपको मेरी सेवा की आवश्यकता हो, आप मुझे स्मरण करना, मैं तत्काल आपकी सेवा मे उपस्थित हो जाऊँगा।

जीवन्धर को अपने शुभ यत्न के शुभ फल पर बहुत हर्ष हुआ और कुत्ते को देव शरीर में देखकर कुछ आश्चर्य भी हुआ, किन्तु उन्होंने मन ही मन विचार किया कि वट (बरगद) वृक्ष की विशाल काया सरसों से भी छोटे बीज से उत्पन्न होती है, मेरे मीठे वचनों का भी वैसा ही फल हुआ है। जीवन्धर ने बड़ी प्रसन्नता के साथ यक्षेन्द्र को अपनी छाती से लगाया और गाढ़ आलिङ्गन किया, एवं मुस्कराते हुए देव-शरीर प्राप्त करने की उसे बधाई दी, तथा अपनी मिष्टवाणी से अपना प्रेम प्रगट किया।

यक्षेन्द्र वहाँ से अन्तर्धान (गायब) होकर अपने स्थान को चला गया और जीवन्धर अपने मार्ग पर आगे बढ़े।

वसन्त विहार के लिये जाने-वाली राजपुरी की जनता में दो परमसुन्दरी नवयुवती कन्यायें सुरमंजरी और गुणमाला भी अपने परिवार तथा दासियों के साथ चली जा रही थीं, दोनों एक अवस्था की थीं, साथ-साथ खेली-कूदीं और पढ़ी-लिखी

थीं, इस कारण दोनों में परस्पर बहुत स्नेह था।

वे दोनों सखियां स्नान करने के लिये अपने साथ उबटन-चूर्ण (पाउडर) लाई थीं। आपस में बातचीत करते हुए वे अपने-अपने उबटन की प्रशंसा करने लगीं, पहले तो दोनों सखियों का वार्तालाप प्रेम से हंसी में होता रहा, किन्तु कुछ देर पीछे उस वार्तालाप में तनातनी आ गई, विवाद बढ़ गया। तब उन दोनों ने आपस में यह निर्णय किया कि 'जिसका उबटन घटिया प्रमाणित हो वह बिना स्नान किये घर को वापिस चली आवे।'

संयोग से उधर अपने मित्रों के साथ जीवन्धरकुमार आ निकले। दोनों सखियों ने अपनी-अपनी दासियों को अपना-अपना उबटन देकर घटिया-बढ़िया का निर्णय कराने के लिये जीवन्धरकुमार के पास भेजा, जीवंधरकुमार ने दोनों उबटनों को हाथों की चुटकी से मसल कर उनका रंग देखा, फिर उनको अपने हाथों पर रगड़कर उनकी चिकनाई देखी और अन्त में नाक से सूंघकर परीक्षा की, तब उन्होंने गुणमाला का उबटन सुरमंजरी के उबटन से उत्तम बतलाया।

सुरमंजरी की दासी ने जीवन्धरकुमार से पूछा कि आपका निर्णय सत्य कैसे माना जाय? दोनों में से एक उबटन तो बढिया होगा ही, परन्तु गुणमाला का ही उबटन श्रेष्ठ है यह कैसे स्वीकार कर लिया जाय?

जीवंधरकुमार मन्द-मन्द मुस्कराते हुए बोले, तुम भी

देखलो, यह कह कर उन्होंने दोनों उबटनों को खुले स्थान में रख दिया, उबटनों को रखते ही गुणमाला के उबटन पर सुगन्धि से आकर्षित होकर भौंरे मंडराने लगे, मंडराते-मंडराते सुगन्धि में मस्त होकर उसको सूंघने आ बैठे। सुरमंजरी के उबटन पर एक भी भ्रमर नहीं आया।

यह देख कर सुरमंजरी की दासी ने जीवन्धरका निर्णय सत्य मान लिया, और आकर सब समाचार सुरमंजरी से कह दिया। सुरमंजरी के हृदय में अपना उबटन घटिया प्रमाणित होने से बहुत दुःख हुआ, किन्तु जीवन्धर की परखपर वह मुग्ध हो गई और उसने अपने मन में पक्का प्रण कर लिया कि "मैं जीवन्धर के सिवाय अन्य किसी पुरुष के साथ विवाह न करूंगी।"

सुरमंजरी का उबटन जब घटिया प्रमाणित हो गया तब अपनी प्रतिज्ञा (शर्त) के अनुसार सुरमंजरी बिना जलक्रीड़ा किये घर लौटने लगी। इस पर गुणमाला ने अपनी सखी को बड़े अनुनय विनय और प्रेम से समझाया कि, 'हंसी खेल की बात में इतना अप्रसन्न नहीं होना चाहिये, तेरे चले जाने पर मेरे हृदय को बहुत दुःख होगा, जलक्रीड़ा फीकी हो जायगी, यहां तक आ गई है, अब बिना स्नान किये यहां से लौट जाना अच्छा नहीं, मेरा अपराध क्षमा कर।'

किन्तु सुरमंजरी ने गुणमाला की एक भी बात नहीं मानी और जिस जलक्रीड़ा के लिये घर से बाहर निकली थी उस जल-क्रीड़ा का बिना आनन्द लिये ही घर को वापिस लौट गई।

संसार में तीन हठ प्रसिद्ध हैं—१-बालहठ-२-राजहठ और ३-स्त्री हठ। बच्चों को जो धुन सवार हो जाती है उसको बिना पूरा किये उनको शांति नहीं आती। राजा जो हठ कर बैठता है राजमद में उसका पूरा करके ही छोड़ता है, ठीक इसी तरह स्त्रियां भी जो हठ पकड़ लेती हैं, प्रायः वे उसे नहीं छोड़तीं।

सुरमंजरी के चले जाने पर गुणमाला का बहुत दुःख हुआ उसने अपने मन में कहा कि यदि मैं उसके उबटन को ही बढ़िया मान लेती और उससे विवाद न करती तो मेरा क्या बिगड़ जाता ? बिना अपनी प्रिय सखी के जलक्रीड़ा में क्या मनोरंजन होगा।

इस तरह उदासचित्त होकर गुणमाला अपने परिवार-जनों के साथ सरोवर पर पहुंची, वहां उसने उनके साथ बहुत देर तक स्नान भी किया किन्तु उसके हृदय में न उल्लास आया और न उसको कुछ आनन्द अनुभव हुआ।

स्नान करके वह जब अपने घर को लौट रही थी, उस समय काष्ठाङ्गार का प्रधान हाथी, मदोन्मत्त हो गया (हाथी के गले से पसीने जैसा मद जल जब निकलता है, उस समय हाथी मस्त होकर किसी के वश में नहीं रहता. पागल सा हो जाता है) और अपने पैरों की जंजीर तोड़कर अपने घर से (हाथी खाने से) बाहर निकल भागा। एक तो वह वैसे ही पर्वत-समान विशाल-काय था, फिर वह मदोन्मत्त हो गया तथा हस्तिपाल (फीलवान) का अंकुश भी उसके ऊपर न रहा, अतः निरंकुश होकर इधर-उधर

दौड़ने लगा। मार्ग में जो कोई आता उसे सूंड से पकड़कर इधर उधर फेंक देता, पैरों से रौंद डालता। इस तरह उसने बहुत से मनुष्य मार दिये और बहुत से घायल कर दिये, हाथी के इस उपद्रव से नगर में हाहाकार मच गया। उसको पकड़ने के बहुत उपाय किये गये किन्तु सब कार्य व्यर्थ हुए।

झूमता झामता वह मस्त हाथी संयोग से उस मार्ग पर आ निकला जिस मार्ग से गुणमाला अपने परिवार के साथ घर को आ रही थी। हाथी को अपनी ओर आता देखकर सब लोग बहुत भयभीत हुए। संयोग से हाथी गुणमाला की ओर झपटा। यह देखकर उसके परिवार के स्त्री-पुरुष अपने-अपने प्राण बचाने के लिये इधर उधर भाग गये. गुणमाला अकेली रह गई।

जिस समय प्राणों पर सङ्कट आता है उस समय प्रायः सभी प्राणी अपने प्रिय-जनों को भी अरक्षित छाड़ कर अपनी प्राण-रक्षा में लग जाते हैं। माता भी अपनी प्राण-रक्षा के लिये भागने में बाधक समझ कर अपने दुधमुंहे प्रिय बच्चे को अरक्षित छोड़ कर चली जाती है।

किन्तु गुणमाला की धाय ने गुणमाला का साथ उस समय भी न छोड़ा।

सच्चा प्रेम भयानक संकट के समय भी नहीं छूटता। संकट के समय ही अपनी प्यारी स्त्री, अपने प्रिय मित्र, अपनी धार्मिक दृढ़ता और अपने साहस की परीक्षा हुआ करती है।

गुणमाला की धाय गुणमाला को बचाने के लिये गुणमाला के सामने आ खड़ी हुई और सहायता पाने के लिये उच्च स्वर

से चिल्लाने लगी। सौभाग्य से जीवन्धरकुमार अपने मित्रों के साथ जल-क्रीड़ा से निपट कर उसी मार्ग से आ रहे थे। उन्होंने धाय का चिल्लाना सुना, साथ ही पागल हाथी का उन को ओर झपटना भी देखा।

वीर जीवन्धर ने आव देखा न ताव, तत्काल गुणमाला और उस की धाय की ओर वेग से दौड़ पड़े।

वीर मनुष्य किसी भी प्राणान्तक भय से रंचमात्र भी विचलित नहीं होता, मृत्यु उस के साहस के सामने लज्जित हो जाती है। निर्बल दीन दुखी प्राणी पर किसी बलवान आततायी (हमलावर) का आक्रमण होते देख वीर योद्धा चुप नहीं बैठता, उस समय वह अपनी शक्ति का परिचय देकर त्रस्त जीव की रक्षा करके सन्तुष्ट होता है।

जीवन्धर ने मदोन्मत्त हाथी के पास पहुंच अपनी वज्र-मुष्टि (जोरदार मुक्के) से हाथी की सूंड पर प्रहार किया और लोहे के कुण्डल से ३-४ बार हाथी को ऐसा मारा कि हाथी का मद सूख गया और वह मार की पीड़ा से चिंघाड़ कर अपने घर की ओर भागा।

गुणमाला के प्राण बच गये, हाथी के भाग जाने पर गुण-माला के कुटुम्बी-जन एकत्र हुए और जीवन्धर के साहस की प्रशंसा करने लगे तथा गुणमाला से स्नेह के साथ उस की कुशल क्षेम पूछने लगे कि हाथी के आक्रमण से उसे कहीं कुछ चोट तो नहीं लगी? गुणमाला ने प्रसन्न-चित्त होकर सब को उत्तर दिया

कि — आप लोग तो सब सुरक्षित हैं न ! मुझे असहाय छोड़कर अब मेरी कुशल पूछने आये हैं ! मेरा आयु कर्म शेष था, अतः सौभाग्य से इस वीर युवक ने अपने प्राण संकट में डाल कर मुझे बचा लिया, अन्यथा मेरी मृत्यु में क्या सन्देह था, मेरा तो नया जन्म हुआ है।

गुणमाला का उत्तर सुनकर उसके परिवार के मनुष्य बहुत लज्जित हुए।

हाथी से बचाते समय जीवन्धर के नेत्र गुणमाला के नेत्रों से टकरा गये, नेत्रों के मिलते ही दोनों के हृदय में एक दूसरे के लिए प्रेम का अंकुर उत्पन्न हो गया। क्षण भर में दोनों के मुख-मण्डल पर मन्दस्मित मुस्कराहट स्वयं आ गई। तत्काल मुस्कराते हुए गुणमाला के चंचल नेत्र लज्जा के भार से झुक गये, किन्तु गुणमाला के हृदय में एक मीठी पीड़ा जागृत कर गये।

साथ ही उन चंचल नेत्रों ने पल भर जो जीवन्धर का प्रफुल्लित सुन्दर मुख देखा था उसका अमिट चित्र उसके मन-पटल पर अङ्कित कर दिया।

गुणमाला एक विचित्र मीठी व्याकुलता के साथ अपने घर पहुंची। घर पहुंचकर उसके माता-पिता ने उससे हाथी के आक्रमण का समाचार पूछा, उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया, माताने वात्सल्य से अपनी छाती से उसको चिपटा लिया और जीवन्धर का बहुत उपकार माना।

गुणमाला को जिस समय एकान्त मिला, उस समय उसके

हृदय में जीवन्धर की स्मृति (याद) जाग उठी, उसका हृदय अन्नमना हो उठा, चित्त में अनेक विचारधाराएँ बहने लगीं, भूख होते हुए भी उसे भोजन करने का ध्यान न रहा, अनेक संकल्प विकल्पों में उसका मन उलझ गया।

जब उसकी माता विनयमाला ने भोजन करने के लिये गुणमाला को कहा तो गुणमाला एक दम ऐसी चौंक उठी, मानो अभी उसकी निद्रा भङ्ग हुई है, उस समय उसको भूख अनुभव हुई, माता की प्रेरणा से उसने भोजन भी किया परन्तु उसको भोजन में कुछ स्वाद न आया, जैसे-तैसे पेट भर लिया।

शैया पर लेटी तो उसको निद्रा न आई, जीवन्धर को देखने वाले नयन जीवन्धर को फिर देखने के लिये लालायित हा उठे, उनमें नींद कहां से आती। गुणमाला की दशा अद्भुत थी, वह अपनी व्याकुलता छिपा कर भी न रख सकती थी और लज्जा के कारण किसी से कह भी न सकती थी।

अन्त में वह उठी और उसने एकान्त में अपने प्रेम-पात्र जीवन्धर को एक प्रेम-पत्र लिखा कि—

"प्रियवर! आपने मदोन्मत्त हाथी से रक्षा करके जो मुझे जीवन प्रदान किया, वह जीवन अब जीवन-भर अपके चरणों में रहना चाहता है। यह न तो किसी और जगह रह सकेगा और न अब कहीं इसको रहने का अधिकार है। आप बहुत उदार परोपकारी हैं, कृपा करके मेरी प्रार्थना स्वीकार करके मेरे जीवन को अमिट व्याकुलता मिटाइये। आपने जिस तरह मुझे हाथी के

के सङ्कट से बचाया उसी तरह अब मेरी इस सङ्कट से भी रक्षा कीजिये, मेरा समस्त संकट आपकी चरण-छाया में रहने से दूर हो जायगा।

आपकी चरणदासी बनने को इच्छुक—
गुणमाला"

गुणमाला ने यह पत्र लिखकर अपने सुशिक्षित और असीम प्यार से पाले हुए तोते के गले में बांध कर जीवन्धरकुमार के पास भेजा।

जीवन्धर के हृदय में भी गुणमाला के लिये अनुराग हो चुका था। जिस समय तोता जीवन्धर के पास पहुंचा और पहुँचते ही उसने जीवन्धर को अपनी मीठी वाणी में यह आशीर्वाद दिया कि—

'जीवन्धरकुमार गुणमाला के साथ चिरकाल तक सुखी जीवन प्राप्त करें।

तो जीवन्धर के चित्त में गुणमाला की स्मृति जागृत हो गई। उन्होंने बड़े प्रेम से उस तोते को अपने हाथों में पकड़ लिया, उसके शरीर पर प्यार का हाथ फेरा, हाथ फेरते हुए जीवन्धर को उसके गले में बन्धा हुआ पत्र मिला, पत्र खोलकर जीवन्धर ने उस पत्र को अनेक बार पढ़ा, और पढ़ते-पढ़ते क्षण भर के लिये आत्म-विस्मृत हो गया (अपने आपको भूलगया) तदनन्तर उसको जलक्रीड़ा के लिये जाने, सुरमंजरी, गुणमाला के उबटन-चूर्ण के जांच करने, हाथी के आक्रमण से गुणमाला की रक्षा करने की

समस्त घटनाओं का स्मरण हो आया। इन घटनाओं के साथ ही गुणमाला का विकसित लाल कमल के समान सुन्दर लाल मुख तथा उसके चंचल लजीले नेत्र अपनी आंखों के सामने स्पष्ट दिखाई देने लगे।

'गुणमाला ने क्षणिक घटना के बदले ही अपने हृदय में मुझे उच्च-आसन पर बिठाया है।' यह बात सोचकर जीवन्धर का हृदय भी गुणमाला के लिये व्याकुल हो उठा किन्तु थोड़ी देर पीछे सावधान होकर उसने गुणमाला को पत्र का उत्तर लिखा—

'प्रिय गुणमाला !

तुम यथार्थ में गुण-माला हो. तुम्हारे अनुराग और सद्‌भावों का आदर करता हूँ। उस शुभ दिन की प्रतीक्षा में हूँ, जब तुम्हारी भावना सफल होगी।

"जीवन्धर"

पत्र तोते के गले में बांध कर तोते को बहुत प्यार करके उड़ा दिया, तोता थोड़ी ही देर में गुणमाला के पास पहुंच गया।

जीवन्धर का पत्र पढ़ कर गुणमाला का मन कुछ सन्तुष्ट हुआ कि जीवन्धर ने उस की प्रार्थना ठुकराई नहीं है, स्वीकार करली है। तब जीवन्धर से मिलने के लिये उसका हृदय और भी व्याकुल हो उठा।

जीवन्धर के साथ गुणमाला के अनुराग हो जाने की बात

गुप्त न रह सकी, और गुणमाला के पड़ोसियों को भेद मालूम हो गया। गुणमाला के पिता के साथ ईर्ष्या रखने वाले दो मनुष्य सेठ गन्धोत्कट के पास आये और उन्होंने जीवन्धर तथा गुणमाला के पारस्परिक प्रेम तथा पत्र-व्यवहार का सब वृत्तान्त गन्धोत्कट को कह सुनाया।

गन्धोत्कट ने सब बातें शान्ति के साथ सुनीं और फिर गम्भीरता से उन्हें उत्तर दिया कि कुलीन (शुद्ध उच्च वंश वाले) कुमार कुमारी में यदि प्रेम भाव स्थापित होता है तो इस में क्या हानि है? जीवन्धर यदि किसी नीच, दुराचारिणी, निन्द्य कन्या से प्रेम करता, तब तो बुरी बात थी, गुणमाला के साथ अनुराग होने में क्या बुराई है?

गन्धोत्कट का उत्तर सुन कर वे दोनों खिसिया कर चुपचाप अपने घर चले आये।

अपने पड़ोसियों की काना-फूंसी गुणमाला के माता-पिता को जब मालूम हुई तब उन्होंने आपस में परामर्श करके जीवन्धर के साथ गुणमाला का विवाह शीघ्र कर देना ही अच्छा समझा। तदनुसार गुणमाला के पिता सेठ कुबेरमित्र ने एक चतुर दूत गन्धोत्कट के पास भेजा।

उस दूत ने गन्धोत्कट से कुबेरमित्र का संदेश कहा कि 'आप गुणमाला को अपनी पुत्र-वधू बनने की स्वीकारता दें।' गन्धोत्कट ने अपनी भार्या सुनन्दा के साथ विचार-विनिमय करके उस दूत को स्वीकारता दे दी।

कुबेरमित्र ने जब गन्धोत्कट की स्वीकारता पा ली तो उस को बहुत प्रसन्नता हुई। उस ने तत्काल निपुण ज्योतिषी को बुलाकर गुणमाला के विवाह का शुद्ध मुहूर्त निकलवाया, संयोग से मुहूर्त बहुत निकट समय का निकला। अतः तत्काल दोनों ओर विवाह उत्सव की तयारी होने लगी।

जीवन्धर और गुणमाला के विवाह का समाचार राजपुरी में सर्वत्र फैल गया, गन्धोत्कट तथा कुबेरमित्र के प्रियजनों में, जीवन्धर की मित्र-मण्डली में जहां हर्ष का सागर उमड़ उठा, वहीं काष्ठाङ्गार की छाती पर सांप लेटने लगे।

जीवन्धर की वर-यात्रा बड़े समारोह तथा महान उत्सव के साथ कुबेरमित्र क घर पहुंचो। कुबेरमित्र ने सब वर-यात्रियों का बड़े प्रेम और उत्साह के साथ स्वागत किया।

सुसज्जित विवाह-मण्डप में सुन्दर वस्त्र आभूषण पहने जीवन्धर और गुणमाला दोनों आकर बैठे। गृहस्थाचार्य ने विधि पूर्वक उन का पाणिग्रहण संस्कार कराया तथा उस अवसर पर वर-वधू को आशीर्वाद देते हुए विवाह का उद्देश समझाया कि—

विवाह की पद्धति तीन उद्देशों के लिये प्रचलित है।

१—सदाचार पालन, २—सन्तान उत्पादन, ३—सुखद जीवन। वर-वधू को विवाह के पश्चात् ब्रह्मचर्य अणुव्रत का आचरण करके अपना सदाचार सुरक्षित रखना चाहिये, वर को पर स्त्री-गमन और वधू (पत्नी) को परपुरुष (पतिके सिवाय अन्य मनुष्य) के साथ काम-क्रीड़ा का त्याग कर देना चाहिये। जैसे शुद्ध

भूमि और शुद्ध बीज से अच्छे वृक्ष की उत्पत्ति होती है, उसी तरह शुद्ध कुल वाली कन्या और शुद्ध कुलीन वर के रज-वीर्य से अच्छे संस्कार वाली सन्तान उत्पन्न होती है। जो कि वंश-परम्परा तथा धर्म-मर्यादा एवं कुल मर्यादा को चिर समय तक स्थिर रखती है।

जीवन-यात्रा को सुख-शान्ति-पूर्वक चलाने के लिये पुरुष को स्त्री की सहायता आवश्यक है और स्त्री को पुरुष की अत्यन्त आवश्यकता है। स्त्री पुरुष जब पति-पत्नी के रूप में एक दूसरे के साथ अटूट प्रेम के बन्धन में बन्ध जाते हैं तब वे एक दूसरे की रक्षा तथा प्रसन्नता के लिये अपनी सब शक्तियां लगा देते हैं। पुरुष अपनी स्त्री को अपना सर्वस्व दे डालता है और स्त्री अपना सर्वस्व अपने पति के लिये समर्पण कर देती है। इस तरह दो शरीर एक हृदय होकर गृहस्थ-आश्रम की गाड़ी चलाते हैं। पति-पत्नी को सुख-दुख में सदा एक दूसरे के साथ शरीर-छाया की तरह रहना चाहिये। दोनों को यथा-समय धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ का सेवन करना चाहिये।

गृहस्थाचार्य का उपदेश गुणमाला और जीवन्धर कुमार ने स्वीकार किया। उपस्थित स्त्री पुरुषोंने वर-वधू को आशीर्वाद दिया और अनेक मंगल-वाद्यों (बाजों) की मधुर ध्वनि के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। कुबेरमित्र ने बहुत सा द्रव्य जीवन्धर को उपहार में दिया।

गुणमाला और जीवन्धर की अभिलाषाऐं सफल हुई और दोनों आनन्द के साथ रहने लगे।



पाँचवाँ प्रसङ्ग

मदोन्मत्त हाथी से गुणमाला की रक्षा करते समय जीवन्धर ने जो हाथी को अपने मुक्कों तथा लोहे के कुंडल से मार लगाई थी, उस मार से हाथी को ऐसी भीतरी चोट लगी जिससे हाथी को अपना भोजन करना कठिन हो गया, हस्तिपाल ने उस हाथी को भोजन कराने के लिये अनेक उपाय किये, अनेक प्रकार सुस्वादु पत्ते पत्तियां, मीठे गन्ने, घास, वृक्षों की टहनियां उसके सामने रक्खीं, अन्न, चावल, दालों के बने हुए विभिन्न प्रकार के व्यञ्जन उसके लिये लाये गये, दूध दही खांड के बने हुए मिष्ठान्न से उस हाथी का चित्त खाने के लिये लालायित किया गया, किन्तु हाथी ने किसी भी वस्तु का छुआ तक नहीं।

हस्तिपाल ने उसका मधुर, प्रेम-भरे वचनों से प्रसन्न करने का यत्न किया, उसके मस्तक और सूंड पर प्यार से वार-वार हाथ फेरा, उसे अनेक वार पुचकारा किन्तु हाथी भोजन करने के लिये तयार न हुआ।

तब उसने हाथी के मुख, दांत, सूंड, कान को अच्छी तरह देखा, उसके प्रत्येक अङ्ग की परीक्षा की कि कहीं पर कोई फोड़ा, घाव, शोथ (सूजन) आदि रोग तो नहीं है किन्तु उसे कोई रोग भी प्रतीत न हुआ। फिर उसने अन्य कुशल हस्तिपालों से उस हाथी की परीक्षा कराई, अनेक अनुभवी पशुचिकित्सक

वैद्यों से उसके रोग की जांच कराई किन्तु किसी को कोई रोग हाथी के शरीर में ज्ञात न हुआ। तब हस्तिपाल बहुत घबराया कि अब इसको भोजन खिलाने का क्या उपाय करूँ? अनेक दिन विना कुछ खाये-पिये हो गये हैं, राजा की सवारी का मुख्य हाथी है. दिन पर दिन भोजन न करने से बलहीन होता जा रहा है, क्या करूं?

बात वास्तव में कुछ और थी, हाथी का शरीर का कोई रोग न था, उसको हृदय का रोग था। जीवन्धर की मार से हाथी के शरीर में जितनी पीड़ा न हुई जितना कि उसके हृदय को गहरी ठेस पहुंची क्योंकि वह काष्ठाङ्गार की सवारी का प्रमुख हाथी था, सबसे अधिक लाड़ प्यार, आदर सन्मान इसी हाथी का होता था, हस्तिपाल कभी उसको मार का हाथ भी न लगाता था, किन्तु जीवन्धर ने उसको साधारण हाथी के समान प्रबल मार लगाई. इसको हाथी ने अपना बहुत बड़ा अपमान समझा, इसी लिये उसने दुखी होकर खाना पीना छोड़ दिया।

हाथी जिस तरह शरीर-आकार में सबसे बड़ा होता है उसी तरह वह सब पशुओं से अधिक बुद्धिमान भी होता है। वह संकेत से सब काम करना अच्छा समझता है, मार खाकर कोई काम करने का उसे अभ्यास नहीं होता, वह अपने शत्रु, मित्र, मान अपमान को अच्छी तरह समझता है।

अन्त में उस पट्ट हाथी के भोजन-त्याग का सब समाचार हस्तिपाल ने काष्ठाङ्गार को कह सुनाया। काष्ठाङ्गार ने सब बातें

सुन कर हाथी को जाकर देखा और उसके शरीर पर प्यार का हाथ फेरा तो हाथी की आंखों से आंसू गिरने लगे।

काष्ठाङ्गार ने समझ लिया कि हाथी को जीवन्धर के हाथों से मार खाने की हृदय-वेदना है, और कोई रोग नहीं है। यह जानते ही काष्ठाङ्गार की त्यौरी चढ़ गई, आंखों में रक्त उतर आया, जिससे दोनों नेत्र लाल हो गये और उनसे अग्नि की चिनगारी-सी निकलने लगी, मुख-मण्डल क्रोध से लाल हो गया, होठों को अपने दांतों से चबाते हुए बोला कि—

'वणिकपुत्र का इतना दुःसाहस! मेरी सवारी के पट्ट-हाथी पर प्रबल मार! जिस हाथी पर सदा राजपुरी-नरेश प्रेम का हाथ फेरता है, उसका हस्तिपाल कभी उसको हाथ भी नहीं लगाता, उस राजहस्ती का इतना बड़ा तिरस्कार! यह अपमान हाथी का नहीं अपितु उसके स्वामी का है। अच्छा जीवन्धर! तुझे जा अपने बल का अभिमान हो गया है. तेरा वह दुर्मद तो धूल में मिलाना ही होगा।

यह कहता हुआ काष्ठाङ्गार वेग से राजभवन में चला गया और जाते ही उसने सेनापति को बुलाया, थोड़ी देर में सेनापति सामने आ खड़ा हुआ।

काष्ठाङ्गार ने सेनापति को आज्ञा दी कि गन्धोत्कट के पुत्र जीवन्धर ने पट्ट हस्ती को घातक मार देकर मेरा भारी अपमान किया है, इसके लिये उसको पकड़ कर शीघ्र मेरे सामने उपस्थित करो।

सेनापति ने कहा कि 'जो प्रभु की आज्ञा।' सेनापति चला गया।

जीवन्धर ने पहले उस भील-सेना को हराया था जिस को कि काष्ठाङ्गार की सेना न हरा सकी थी, तथा वीणा बजाने में जीत कर उसने राजकन्या गन्धर्वदत्ता को अपनी पत्नी बनाया था, इन बातों से काष्ठाङ्गार के हृदय में जीवन्धर कुमार के लिये पहले से ही जलन उत्पन्न हो गई थी, वह यहां तक सोचने लगा था कि कभी जीवन्धर मेरा राज-सिंहासन भी न छीन ले। इस कारण इस राज-कण्टक को वह सदा के लिये दूर करना चाहता था, परन्तु उसको अपनी इच्छा पूर्ण करने का अवसर न मिला। अब हाथी को मारने का बहाना उसके हाथ आ गया, अतः उसने अपने हृदय में ठान लिया कि जीवन्धर को उस लोक में पहुँचा दूं, जहां से वह फिर कभी लौट कर राजपुरी में वापिस न आ सके। काष्ठाङ्गार के मलिन हृदय ने जीवन्धर के प्रशंसनीय स्वच्छ गुणों को भी दोष रूप में देखा। जैसे कि पाण्डु (पीलिया) रोगी को सब वस्तुऐं पीली ही दृष्टिगोचर होती हैं।

सेनापति जीवन्धर के पराक्रम से परिचित था, अतः उसने उसको पकड़ लाने के लिये सेना की एक टुकड़ी गन्धोत्कट के घर भेज दी। उस सेना ने जाकर गन्धोत्कट का घर घेर लिया। जीवन्धर को जब इस बात का पता चला, तो उसके रक्त में उबाल आया और कवच (बख्तर) पहन कर धनुष बाण उठाने लगा।

इतने में ही गन्धोत्कट ने आकर उसको रोक दिया और बहुत मीठे स्वर में उस से कहा कि—

पुत्र ! मैं समझता हूं कि तुम्हारे बल के सामने यह छोटी राजसेना कुछ भी नहीं, तुम इसको क्षण भर में मारकर भगा दोगे, किन्तु तुमको तीन बातों का विचार करना आवश्यक है—

१—तुम्हारे गुरु ने जो काष्ठांगार से एक वर्ष तक युद्ध न छेड़ने की प्रतिज्ञा तुम्हें कराई थी, वह समय अभी पूरा नहीं हुआ। गुरु-आज्ञा भङ्ग करना विनीत शिष्यों का कार्य नहीं।

२—राजसेना के साथ युद्ध करने से काष्ठांगार का कोप तुम्हारे परिवार पर पड़ेगा और उसका परिणाम न केवल तुम्हें, बल्कि तुम्हारे माता, पिता, भाई आदि सभी को भुगतना पड़ेगा। क्या तुम सारे परिवार को विपत्ति में डालना चाहते हो ?

३—काष्ठाङ्गार यहाँ का राजा है, उसके पास केवल इतनी ही सेना नहीं है, और भी बहुत बड़ी सेना है, यदि तुमने इस सेना की टुकड़ी को जीत भी लिया, तो युद्ध यहीं समाप्त न हो जायगा। तुरन्त उसकी बड़ी सेना आ जायगी, उस समय तुम क्या करोगे ? साधारण बल पर राजा से टक्कर लेना बुद्धिमानी नहीं। राजहठ जग में प्रसिद्ध है, जरा-सी बात पर राजा बड़ा भारी विनाश करने से भी नहीं चूकता। इसलिये तुम अभी राजसेना के साथ युद्ध न करो।

योद्धा को युद्ध करने से पहले सब कुछ देख लेना चाहिये। जो मनुष्य बल के अभिमान में नीति (युक्ति) से काम नहीं लेते वे कभी विजय नहीं पाते। बैंत का हलका पतला वृक्ष प्रबल आंधी के सामने झुक जाता है और आंधी चले जाने पर फिर

सीधा खड़ा हो जाता है, इसलिये वह भयानक आंधी से बच जाता है, किन्तु आम का भारी, ऊँचा पेड़ आंधी के सामने भी अभिमान में खड़ा रहता है, इसका परिणाम यह होता है कि आंधी का झोंका उसको जड़ से उखाड़ कर सदा के लिये नीचे लिटा देता है।

तुम इस समय बेंत के पेड़ की तरह नीति का आचरण करो भविष्य में जब तुम्हारा बल बढ़ जावे, तब अवसर देखकर राजयुद्ध की बात करना।

जीवन्धर ने कहा आपकी आज्ञा शिरोधार्य (सिर झुकाकर मानने योग्य) है, मुझे आशीर्वाद दीजिये।

गन्धोत्कट के नेत्रों में आंसू छलछला आये, उसने रुद्ध-कण्ठ से 'तुम सदा स्वस्थ दीर्घ जीवन प्राप्त करो' कहते हुए जीवन्धर के सिर पर प्रेम का हाथ फेरा।

जीवन्धर निर्भय एवं निःशङ्क होकर घर से निकला, गन्धोत्कट ने उसे राजसेना को समर्पण कर दिया। सेनापति जीवंधर को लेकर काष्ठाङ्गार के सामने उपस्थित हुआ।

काष्ठाङ्गार ने बड़े दर्प के साथ जीवंधर से पूछा कि मेरे प्रधान हाथी को क्यों मारा ?

जीवन्धर—वह मदोन्मत्त (पागल) होकर जनता को त्रास दे रहा था। मार्ग में चलने वाली स्त्रियों के ऊपर उसने आक्रमण कर दिया था। अतः मुझे उनकी रक्षा करने के लिये हाथी पर प्रहार करना पड़ा।

काष्ठाङ्गार - हाथी ने क्या किसी स्त्री को क्षत-विक्षत किया था ?

जीवंधर—यदि मैं यथा-समय उनकी सहायता न करता तो अवश्य वह ऐसा कर डालता।

काष्ठाङ्गार ने क्रोध से नेत्र लाल करके कहा कि—हाथी ने जब किसी भी स्त्री को शारीरिक हानि नहीं पहुंचाई, तब निरपराध राजकीय हाथी को भारी मार से घातक चाट पहुंचाना महान् अपराध है, ऐसा करके तूने मेरा अपमान किया है, अतः इसके लिये तुझे मृत्यु का अतिथि (मेहमान) बनाया जायगा।

जीवन्धर ने कुछ कहना चाहा किन्तु काष्ठाङ्गार ने कड़क कर उत्तर दिया कि बस, चुप कर, मैं अब और कुछ नहीं सुनना चाहता। काष्ठाङ्गार ने सेनापति को आज्ञा दी कि जाओ, इसको चांडाल के सुपुर्द करो और शीघ्र शूली पर चढ़ाने का प्रबन्ध कर दो।

सेनापति ने नम्रता के साथ काष्ठाङ्गार को नमस्कार करते हुए कहा कि—'जो प्रभु की आज्ञा।'

सेनापति जीवन्धर को अपने साथ लेकर वध-भूमि की ओर चल दिया।

(प्राचीन समय में प्राणदण्ड देने के लिये एक लोहे का गोल लट्ठा पृथ्वी में गढ़ा रहता था, उसकी नोंक बर्छी की तरह तीक्ष्ण होती थी और नीचे की ओर क्रमशः उसकी मुटाई अधिक होती जाती थी। उसको 'शूली' कहते थे। जिस मनुष्य को प्राणदण्ड

दिया जाता था, उसको लकड़ी के तख्ते पर खड़ा करके शूली की नोंक पर पहुंचा देते थे। फिर तख्ता नीचे गिरा दिया जाता था और वह दण्डित मनुष्य शूली की नोंक पर टंग जाता था, शूली की नोंक गुदा मार्ग से घुसकर पेट की आंतों को छेदती हुई, कण्ठ, शिर तक जा पहुंचती थी और दंडित मनुष्य भारी वेदना के साथ प्राण छोड़ देता था, इस तरह मृत्यु-दण्ड का नाटक समाप्त होता था।)

नगर की जनता ने जब जीवन्धर कुमार के मृत्युदण्ड का समाचार सुना तब नगर में हाहाकार मच गया, स्थान-स्थान पर मनुष्यों की टोलियां इस विषय की तरह-तरह से आलोचना करने लगीं।

कुछ वृद्ध मनुष्य कहने लगे कि जीवन का आधार अन्न ही यदि विष बन जाये, आकाश ही यदि शिर पर गिरने लगे और राजसिंहासन पर बैठ कर राजा ही अन्याय करने लगे तो उसे कौन रोक सकता है?

युवक मण्डली रोष के साथ परस्पर बात कर रही थी कि जिस जीवन्धर ने अपने बल से हाथी-जैसे बलवान जन्तु का पराभव करके राजपुरी की जनता की रक्षा की, उस जीवन्धर को उस पराक्रम का काष्ठाङ्गार ने यह पुरस्कार दिया है!

स्त्रियां आपस में कह रही थीं कि स्त्रियों की प्राण-रक्षा करने वाले वीर को मृत्युदण्ड देकर राजा ने भारी अन्याय किया है। स्त्रियों के जीवन से भी अधिक मूल्यवान राजा अपने हाथी के

प्राण समझता है ! जब कि हाथी जीवित है, मरा नहीं है तब उसने जीवन्धर को मृत्यु का दण्ड क्यों दिया ?

कुछ अनुभवी मनुष्यों ने कहा कि जिन भीलों से मार खा कर राजसेना भी भाग आई थी उन भीलों को अपने पराक्रम से हराकर जीवन्धर ने राजपुरी का सन्मान स्थिर रक्खा था, ऐसे वीर को अकारण मृत्यु-दण्ड देना अन्याय ही नहीं, प्रथम श्रेणी की मूर्खता भी है ।

जीवन्धर के मित्रों ने क्षोभ और रोष में आकर कहा कि पिता तथा गुरु की आज्ञा मानकर जीवन्धर ने जो क्रोध पर नियन्त्रण (काबू) रक्खा वह अद्भुत है । यदि जीवन्धर अपना क्रोध न दबाता तो आज राजपुरी में रक्त की नालियां बहने लगतीं और राजमुकुट उनमें तैरता हुआ दृष्टिगोचर होता । जीवन्धर के महान् बल के सामने राजसेना क्या चीज है ?

बहुत से प्रौढ़ लोग कहने लगे कि गन्धर्वदत्ता के स्वयम्वर में अनेक राजाओं को बात की बात में मार भगाने-वाले महाबली जीवन्धर को, देखें शूली पर कौन किस तरह चढ़ाता है ?

गन्धोत्कट के घर जीवन्धर के मृत्यु-दण्ड से एक दम हा हाकार मच गया, गन्धोत्कट, सुनन्दा (पिता माता) नन्दाढ्य (भाई) गन्धर्वदत्ता तथा गुणमाला आदि सब परिजन करुणा-जनक विलाप करने लगे ।

जीवन्धर के मित्र-परिकर, सम्बन्धी तथा अन्य प्रियजनों के हृदय में असह्य वेदना हुई ।

इस तरह राजपुरी के घर-घर में जीवन्धर के मृत्यु-दण्ड पर भारी क्षोभ मच गया। जनता काष्ठाङ्गार के अन्याय को धिक्कारने लगी।

बधभूमि को जाते हुए जीवन्धर के हृदय में किसी भी प्रकार का भय या शंका न हुई। जीवन्धर ने निर्भय रूप से विचार किया कि सम्पत्ति और विपत्ति एक ही कर्मवृक्ष के दो तरह के फल हैं। पूर्व भव में जैसा बीज बोया जाता है उसी प्रकार का फल इस जन्म में जीव के सामने आया करता है। सम्पत्ति के समागम में अभिमान के साथ प्रसन्न होना और विपत्ति आने पर विषाद करना, रोना, व्याकुल होना, कायर पुरुष का काम है, धीर वीर पुरुष विपत्ति को भी अपनी ही वस्तु समझकर उसका स्वागत करता है, उससे घबड़ाता नहीं। सुख या दुख कोई अन्य व्यक्ति नहीं दिया करता, न दे सकता है, बल्कि अपने उपार्जित कर्म ही सुख दुख के मूल कारण हैं। जन्म से भी पूर्व पिता का मरण, जन्म लेते ही माता का वियोग, अन्य घर में पालन पोषण, सुख सम्पत्ति का संयोग और अब मृत्यु का दण्ड सब कुछ मेरे अपने कर्मों का परिणाम है, इसमें काष्ठाङ्गार आदि का कुछ दोष नहीं, काष्ठाङ्गार ने मुझे मृत्युदण्ड दिया है किन्तु उस बेचारे को यह बात मालूम नहीं कि आत्मा जब अमर है तब उसकी मृत्यु कैसे हो सकती है? शूली, तलवार, वाण, बर्छी, अग्नि, वायु, पानी, पर्वत से आत्मा तो कभी छिन्न-भिन्न विनष्ट नहीं होता, शरीर ही नष्ट होता है सो उसी समय आत्मा को नवीन शरीर मिल जाता है, फिर मुझे मृत्यु-दण्ड कैसा?

यदि मैं चाहूं तो अपने शरीर-बल से इस सेनापति को तथा वधक को मार कर भगा सकता हूँ किन्तु आज अपने भाग्य की लीला भी देख लूं कि वह कैसे दृश्य सामने लाता है ?

बध-भूमि (फांसी की जगह) में पहुँच कर जीवन्धर को चाण्डाल ने शूली के तख्ते पर खड़ा किया, जीवन्धर ने शुद्ध हृदय से भगवान की आराधना करके, अपने मित्र सुदर्शन यक्ष (कुत्ते वाले जीव) का स्मरण किया।

स्मरण करते ही सुदर्शन यक्ष अदृश्य (गुप्त) रूप में जीवन्धर के सामने तत्काल उपस्थित हो गया। जीवन्धर को शूली के तख्ते पर खड़ा हुआ देख कर राजपुरी की जनता के नेत्रों से आंसू निकल रहे थे उसी समय उनके देखते-देखते उस यक्षने जीवन्धर को अदृश्य कर दिया और शूली की नोंक पर पहुँचे हुए जीवन्धर को उड़ाकर अपने साथ ले गया, जनता देखती रह गई, उसकी समझ में कुछ न आया। लोगों को भ्रम हो गया कि जीवन्धर को शूली से मार कर लुप्त कर दिया गया है।

गन्धोत्कट को मुनि महाराज ने भविष्य-वाणी की थी कि श्मशान में मिला हुआ पुत्र मृत्युञ्जयी होगा, उसे कोई भी न मार सकेगा, तथा गन्धर्वत्ता भी अपने विद्याबल से अपने पति के निर्बाध जीवन से परिचित थी, अतः उन्हें जीवन्धर की मृत्यु की आशङ्का न हुई। जीवन्धर के वियोग से उन्हें कुछ दुख अवश्य हुआ।

सुदर्शन यक्ष जीवन्धर को अपने साथ अपने घर चन्द्रोदय

पर्वत पर ले गया और वहां पर उसने जीवन्धर का अभिषेक (स्नान) किया, सुन्दर वस्त्र आभूषण पहनाये, सुस्वादु भोजन-पान कराया और कोमल शय्या पर शयन कराया।

कुछ दिनों तक जीवन्धर कुमार वहां रहा, फिर उसने वहां से प्रस्थान करने का विचार किया। तब उस यक्ष ने जीवन्धर के साथ बहुत स्नेह प्रगट करते हुए कहा कि—

'एक वर्ष के भीतर आप अपना राजपुरी का राज-सिंहासन प्राप्त करेंगे और राज्य करने के बाद राज-शासन त्याग कर साधु बनेंगे, तदनन्तर तपश्चरण करके मुक्ति भी प्राप्त करेंगे।

अपनी भविष्य कथा सुनकर जीवन्धर को बहुत प्रसन्नता हुई। चलते समय उस यक्ष ने जीवन्धर को यथेच्छ (मन चाहा रूप बनाने, विष दूर करने तथा गाने में प्रवीणता-ये तीन विद्याएँ सिखला दीं। और चलते समय कहा कि जब कभी मेरी सेवा की आवश्यकता हो, स्मरण करते ही मैं आपके निकट आ पहुँचगा।

जीवन्धर बहुत प्रसन्नता के साथ वहां से अकेला ही चल पड़ा। निर्भय रूप से वन में चला जा रहा था कि आगे चल कर उसने देखा कि जङ्गल के बांसों की रगड़ से आस-पास के वृक्षों में भयानक आग लग गई है और वह दूर तक फैल गई है। उस भयानक आग के घेरे में बहुत से हाथियों का एक झुण्ड फंस गया है। अग्नि ज्यों-ज्यों हाथियों के समीप आती जा रही थी, अग्नि के सेक से हाथी झुलस रहे हैं। अपनी रक्षा के लिये इधर-उधर दौड़ते हैं किन्तु अपने चारों ओर अग्नि पाकर वे दुख से

चिंघाड़ रहे हैं, परन्तु उस निर्जन वन में उनकी चिंघाड़ व्यर्थ जा रही है।

यह करुणा-जनक दृश्य देख कर जीवन्धर का हृदय दया से पसीज गया, हाथियों का जीवित जलना जीवन्धरसे न देखा गया, परन्तु अग्नि बुझाने का कोई उपाय भी उसकी समझ में न आ सका। तब उसने अपने शुद्ध हृदय से भगवान् का ध्यान किया और अपनी पवित्र भावना से सङ्कल्प किया कि यह भयावनी आग तुरन्त बुझ जावे जिससे ये बेचारे हाथी बच जावें।

जीवन्धर की भावना सफल हुई और संयोग से उसी समय वहां बादल गड़गड़ाये और ऐसी मूसलाधार जल-वर्षा हुई कि देखते देखते वह भयानक दावानल (जङ्गल की आग) क्षण भर में बुझ गई, हाथियों का त्राण हुआ, और जीवन्धर को बहुत सन्तोष हुआ।

जीवन्धर ने विचार किया कि जिस तरह मुझ को मृत्युदण्ड मिला और उससे मेरा परित्राण (रक्षा) हुआ उसी तरह इन हाथियों को भी मृत्यु ने आ घेरा था किन्तु वे सबके सब बच गये।

सज्जनों का हृदय दूसरों को दुखी नहीं देखना चाहता, दूसरों के दुःख-मोचन से उन्हें अपार हर्ष होता है। वे दूसरे के कष्ट को अपने कष्ट से और दूसरे की रक्षा को अपनी रक्षा से अधिक महत्व देते हैं, दया-अहिंसा को वे सबसे उत्तम गुण अनुभव करते हैं।

जीवन्धरकुमार वहां से आगे चला, मार्ग में उसको कुछ पवित्र तीर्थस्थान मिले, मन्दिर मिले, उसने बहुत भक्ति और सन्मान से उनकी वन्दना की। वहां उसको एक यक्षी (देवी) भी मिली जो कि जीवन्धर के भव्य आचरण से बहुत प्रभावित हुई, उसने जीवन्धर का अच्छा स्वागत किया, उसका अनेक प्रकार से सन्मान किया, भोजन कराया तथा वस्त्र आभूषण प्रदान किये। जीवन्धर कुछ समय वहां ठहरा फिर वह वहां से आगे चल दिया।

मार्ग में जीवन्धर को बहुत बड़ा घना जङ्गल मिला, जिस में हाथी, सिंह, बाघ, चीता, सूअर, वनगाय, अजगर आदि जङ्गली पशु स्थान-स्थान पर मिले, वृक्षों की घनी छाया में सूर्य किरण भी वहां नहीं पहुँच पाती थी, वृक्षों पर अनेक प्रकार के बन्दर उतरते, चढ़ते क्रीड़ा कर रहे थे, हरी-हरी घास चरते हुए हिरन जहां कहीं दीख पड़ते थे, जलाशयों में अनेक जलचर तथा क्रौंच सारस आदि पक्षी किलोल कर रहे थे।

जीवन्धर कुमार ने वह महावन निरापद रूप से पार किया, फिर अनेक दुर्गम पर्वत, गहरे नदी-नाले भी मार्ग में आये साहसी वीर जीवन्धर ने उन्हें भी लांघ कर अपना प्रयाण (सफर) चालू रक्खा। किसी भी जड़ चेतन पदाथ ने जीवन्धर को रंच-मात्र भी हानि न पहुँचाई, जीवन्धर निर्भय होकर आगे बढ़ता चला गया।

जिस मनुष्य के साथ धैर्य, साहस, उत्साह, तेज और सौभाग्य हो उसको भयानक दुर्गम मार्ग भी सरल हो जाता है, हिंसक

जन्तु भी उसके लिये अपनी हिंसा-वृत्ति छोड़ देते हैं और प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ उसकी सहायता करता है।

चलते-चलते जीवन्धर कुमार पल्लव देश में जा पहुँचा पल्लव देश अच्छा धन जन-पूर्ण हरा-भरा सुन्दर देश था। उसकी भूमि उर्वरा (उपजाऊ) थी, सब प्रकार के अन्न वहां उत्पन्न होते थे, बड़े-बड़े उद्यानों में अनेक प्रकार के फल-फूल-दार वृक्ष देश की सुख-समृद्धि की साक्षी दे रहे थे, हृष्ट पुष्ट दुधेल गायों के झुण्ड प्रत्येक गांव में विचर रहे थे, सभी मनुष्य अपने अपने कार्य में लगे हुए प्रसन्न दिखाई देते थे।

पल्लव देश में प्रवेश करते ही उसको 'चन्द्राभा' नामक सुन्दर नगर मिला। जिसमें चन्द्रिका (चांदनी) के समान श्वेत उन्नत विशाल भवन पंक्तिबद्ध बने हुए थे, प्रत्येक भवन पर रंग-विरंगी पताका लहरा रही थीं। उस नगर के बाजार बहुत सुन्दर बने हुए थे जिनमें सब प्रकार की वस्तुऐं क्रय विक्रय (खरीद बिक्री) की जाती थीं। व्यापारी और ग्राहक बहुत उत्साह से अपने-अपने कार्य में संलग्न थे।

उस नगर का राजा 'धनपति' था जो कि पराक्रम और न्याय से शासन करता था, उसके राज्य में अनीति, अत्याचार, दुराचार का नाम कहीं भी सुनाई न देता था, सारी प्रजा उसकी छत्रछाया में प्रसन्नता से जीवन-निर्वाह कर रही थी।

राजा की तिलोत्तमा नामक रूपवती, गुणवती धर्म-परायणा और पतिपरायणा रानी थी। तिलोत्तमा की कोख से लोकपाल

तथा पद्मा नामक पुत्र-पुत्री ने जन्म लिया। पुत्र और पुत्री अपने माता-पिता के अनुसार सर्वगुण-सम्पन्न थे, दोनों सर्वाङ्ग-सुन्दर थे एवं स्वस्थ और सुशिक्षित थे। इसी कारण वे राजा रानी को बहुत प्रिय थे। लोकपाल बड़ा था और पद्मा छोटी थी।

क्रमशः दोनों ने किशोर वय समाप्त करके यौवन-अवस्था में प्रवेश किया। नव-यौवन ने लोकपाल और पद्मा का सौन्दय और भी अधिक सुन्दर बना दिया।

पद्मा एक दिन राजभवन के उद्यान में अपनी सखी-सहेलियों के साथ खेल रही थी, अनेक तरह के रंगीन सुगन्धित फूलों को चुनती, सूंघती और अपनी सखियों पर फेंकती हुई पद्मा चञ्च-लता के साथ उद्यान-क्रीड़ा का आनन्द ले रही थी, कि अचानक उसका पैर झाड़ी के नोचे गुंजलक मारे बैठे हुए, फूलों को सुगन्धिमें मस्त काले सर्प के ऊपर पड़ गया। पैर पड़ते ही सर्प पद्मा की टांग से लिपट गया और क्रोध में आकर उसने पद्मा के पैर में डँस लिया।

पद्मा अकस्मात् अपने पैर से लिपटे हुए सर्प को देखते ही भय से चीख उठी और पछाड़ खाकर गिर पड़ी। सर्प उसके पैर से छूट कर धीरे से झाड़ियों में चला गया। पद्मा की सखियां भी भयभीत होकर चीखती हुई राजभवन की ओर दौड़ीं और पद्मा के माता-पिता को तत्काल सब समाचार जा सुनाए।

सर्प द्वारा पद्मा का डँसा जाना सुनते ही रानी विलोचना और धनपति राजा का हृदय कांप गया, वे दोनों अपनी पुत्री को

देखने के लिये बाग में दौड़े आये। वहां आकर उन्होंने देखा कि पद्मा पृथ्वी पर मूर्छित पड़ी है, शिर के लम्बे बाल बिखर गये हैं, और नेत्र बन्द हैं, श्वास निःश्वास ले रही है किन्तु अचेत है। कानों ने अपना काम बन्द कर दिया है, अतः अपने माता-पिता की स्नेह-भरी, व्याकुलता-सूचक, उच्च स्वर से उच्चरित आवाज भी पद्मा नहीं सुन पाती। वह इस तरह अचेत लेटी पड़ी हुई थी मानो स्वस्थ गहरी निद्रा का आनन्द ले रही है, शारीरिक दुःख का रंचमात्र भी जिसे अनुभव नहीं।

किन्तु उसकी यह अचेत निद्रा राजा-रानी के लिये भारी चिन्ता का कारण बन गई क्योंकि वे जानते थे कि सर्प की डंसी हुई पद्मा की अचेत निद्रा ही उसके जीवन का सबसे भयानक चिह्न है। राजा ने अपनी प्रिय पुत्री को गोद में उठाया और राजभवन में लाकर कोमल शैया पर लिटा दिया।

तदनन्तर अपने मन्त्री को बुलाकर आदेश दिया कि पद्मा का सर्पविष दूर करने के समस्त उचित प्रबन्ध जल्दी से जल्दी किये जावें।

मन्त्री ने क्षण भर में नगर के समस्त वैद्यों और मन्त्र-वेत्ताओं को राजमहल में एकत्र किया और उनको पद्मा का विष दूर करने का आदेश दिया।

वैद्यों ने सर्प का विष दूर करने-वाली सभी अनुभूत औष-धियों का प्रयोग किया। क्रम से अनेक जड़ी-बूटियां घिस कर उस को पिलाईं कि पद्मा के शरीर की रग-रग में समाया हुआ विष

वमन (कय) द्वारा बाहर निकल जावे, किन्तु उनका कुछ भी प्रभाव न हुआ। तब उन्होंने शल्यचिकित्सा (चीर फाड़) से विष को खींचने के यत्न किये, पर कुछ भी लाभ न हुआ। नाक में तीव्र औषधियां फूंकी परन्तु पद्‌मा को एक भी छींक न आई, नेत्रों में अनेक तीक्ष्ण अंजन भी लगाये, किन्तु उसकी आंखें भी न खुल सकीं।

इस तरह प्रसिद्ध अनुभवी वैद्यों की कोई भी चिकित्सा सफल न हुई, तब मन्त्र-विशारदों ने जिस झाड़ी के समीप पद्‌मा को सर्प ने काटा था वहां पर आकर उसी सर्प को बुला कर पकड़ने के बहुत यत्न किये जिससे कि उसी सर्प द्वारा पद्‌मा का विष चूसवा लिया जाय किंतु सर्प का पता भी न चला। तब उन्होंने पद्‌मा पर ही अपने मंत्रों का प्रयोग किया, जिन के प्रभाव से पद्‌मा का विष नष्ट हो जावे और पद्‌मा धीरे-धीरे सचेत हो जावे किंतु उनकी मंत्र-शक्ति भी सफल न हुई।

तान्त्रिक लोगों ने भी अनेक तंत्र प्रयोग करके अपने राजा की प्रिय पुत्री को निर्विष करना चाहा जिस से कि यश के साथ उन्हें बहुत बड़ा पुरस्कार भी मिले, परंतु सब व्यर्थ हुआ।

पद्‌मा का सुन्दर सुवर्ण-वर्ण शरीर धीरे-धीरे नीला होने लगा, मुख से फेन भी निकलने लगा।

राजा रानी का अपनी पुत्री का जीवन प्रतिक्षण मृत्यु के निकट जाता हुआ दीखने लगा. वे बहुत घबराये, उन्होंने मंत्री को आदेश दिया कि पद्‌मा का विष दूर करने के लिये तुरन्त अन्य उपाय किये जावें।

मन्त्री की कुशल बुद्धि भी कुण्ठित हो गई उसको कोई भी सफल उपाय विचार में न आया। अन्त में उसने नगर में घोषणा कराई कि जो व्यक्ति राजपुत्री पद्मा का विष उतार देगा उसको राज्य की ओर से बहुत भारी पारितोषिक दिया जावेगा।

सौभाग्य से जीवन्धरकुमार उसी समय चन्द्राभा नगरी में प्रवेश कर रहा था, उसने भी उस घोषणा को सुना। उसके हृदय में उत्साह की लहर लहराने लगी। अपने मित्र सुदर्शन यक्ष से सीखी विष-हरण विद्या की परीक्षा करने का उसको अच्छा अवसर मिला। वह दबे-पांव राजभवन की ओर बढ़ा और बहुत शीघ्र राजमहल में जा पहुंचा।

तरुण वीर जीवन्धरकुमार के तेजस्वी मुख को देखकर लोग एक ओर हट गये और पद्मा तक पहुंचने के लिये जीवन्धर को मार्ग दे दिया। जीवंधर ने सर्प विष में मूर्छित पद्मा का भोला भाला सुन्दर मुख देखा जो कि विष के प्रभाव से धीरे-धीरे गहरा नीला होता जा रहा था।

जीवन्धर को देखकर राजा रानी को कुछ आशा का संचार हुआ, वे दोनों गिड़गिड़ाकर जीवन्धर से बोले कि भद्र युवक! अपने कुशल-प्रयोग से हमारी इस पुत्री को जीवित कर दो, हम तुम्हारा बहुत उपकार मानेंगे। यदि यह नीरोग न हुई तो हम भी इसी के साथ परलोक-यात्रा करेंगे।

जीवंधर गम्भीर मुद्रा में मुस्कराया और धीर गम्भीर मिष्ट स्वर में बोला कि 'घबड़ाइये नहीं, आपकी पुत्री अभी थोड़े समय में स्वस्थ हो जायगी।'

जीवंधर के वचन सुनकर राजा रानी ने सन्तोष की ठंडी सांस ली, उनके हृदय में आशा का सचार हो उठा।

जीवन्धरकुमार ने कुछ औषधियों को पानी के साथ पत्थर पर घोंट कर लेप बनाया और उसको सर्प द्वारा काटे हुए स्थान पर लगाया फिर कुछ मन्त्र प्रयोग करके सरसों के दाने उस स्थान पर फैंके, सर्प का विष पैर के उस स्थान पर उबलने-सा लगा, छोटे-छोटे बबूले से उठते हुए दिखाई दिये, कुछ देर पीछे उस लेप में एक औषधि और मिलाई और दूध से पैर को धोकर वह लेप वहाँ फिर लगाया। फिर मंत्रित सरसों के दाने पैर पर फैंके तब उस स्थान से विष-मिश्रित काला रक्त निकलने लगा।

तदनन्तर जीवंधर ने दूध को मन्त्र द्वारा मंत्रित करके उस दूध से पद्मा का मुख धोया, फिर एक तीक्ष्ण औषध पद्मा की नाक में जार से फूँक दी, औषध ज्यों ही नाक में भीतर पहुंची कि पद्मा को एक जोर की छींक आई।

पद्मा को छींक आती देख उसके माता-पिता और भाई को बहुत प्रसन्नता हुई।

पद्मा के शरीर पर विष को आई हुई कालिमा धीरे-धीरे कम होने लगी। तब तीसरी बार जीवंधर ने फिर लेप लगाया, अब की वार विष के कणों के साथ कुछ-कुछ लाल रक्त पैर में से निकलने लगा। तब जीवंधर ने दूध को फिर मंत्रित किया और पद्मा के नेत्रों पर उसके छींटे मारे, छींटे लगते ही पद्मा के नेत्रों के पलक कुछ हिले और उसने करवट बदला।

करवट बदलते देख पद्मा का बड़ा भाई लोकपाल हर्ष से उछल पड़ा।

अब जीवंधरकुमार ने सरसों के दाने मंत्र पढ़ पढ़कर पद्मा की चोटी से लेकर एड़ी तक फैंकना प्रारम्भ किया, उधर पैर में से विष के कण निकल निकलकर बाहर आ रहे थे, इधर रक्त भी अब लाल आने लगा था। कुछ देर बाद जीवन्धरकुमार ने जल से उसके शरीर को छिड़का, फिर राजा रानी को कहा कि अब 'अपनी पुत्री को पुकारिये।'

पद्मा की माता ने बड़े हर्ष और उत्सुकता से पद्मा को 'पुकारा बेटी पद्मा! उठ, सोते हुए तुझे बहुत देर हो गई है। कब तक सोती रहेगी?'

देखते-देखते राजपुत्री सचमुच ऐसे उठ बैठी जैसे कि उसके लिये प्रभात अभी हुआ हो। अपने चारों ओर एकत्रित पुरुष स्त्रियों को देखकर वह आश्चर्य-चकित होकर पूछने लगी कि यह क्या बात है?

उसकी माता ने स्नेह से उसे अपनी छाती से चिपटा लिया और प्रेम-भरे स्वर में बोली 'कुछ नहीं, तू तो सो रही थी तुझे देखने के लिये ये सब आये हुए हैं।'

धीरे-धीरे पद्मा को उद्यान की क्रीड़ा तथा काले सर्प द्वारा काटने की बातें स्मरण हो आईं।

राजा रानी तथा पद्मा के भाई लोकपाल ने जीवन्धर का बहुत सन्मान किया तथा बड़ी भारी कृतज्ञता प्रगट करते हुए

कहा कि 'आपने हमारी पद्मा का ही नहीं बल्कि हमको भी जीवन-दान दिया है।'

जीवन्धर ने विनम्र स्वर में कहा 'जीवन का दान कौन किसका दे सकता है। सर्प का काटा हुआ प्राणी प्रायः तीन दिन तक विष में अचेत, मृत मनुष्य की तरह पड़ा रहता है, नाड़ी की गति भी रुक जाती है परन्तु उसके शरीर में जीवन रहा आता है, मेरे मित्र ने विष दूर करने की जो विद्या मुझे सिखलाई थी मैंने तो उस विद्या का प्रयोग करके अपना कर्तव्य-पालन किया है।

जीवन्धर की मुखाकृति, उसके वार्तालाप तथा चाल ढाल, बर्ताव, व्यवहार से लोकपाल ने यह निश्चय कर लिया कि जीवन्धरकुमार साधारण मनुष्य नहीं है, उच्च श्रेणी का वीर तथा गुणी युवक है। सो ठीक है—घोड़े के गुण दोष उसकी चाल से पहचाने जाते हैं और मनुष्य का वंश, गुण, दोष उसके वार्तालाप (बातचीत) से जान लिये जाते हैं।

लोकपाल ने एकांत में अपने माता-पिता को सम्मति दी कि पद्मा युवती हो चुकी है। अब इसके पाणिग्रहण में अधिक विलम्ब करना उचित नहीं। जीवंधर ने इसके प्राण बचाकर इसके साथ जो उपकार किया है, उसका समुचित बदला यही है कि जीवंधर के साथ इसका पाणिग्रहण कर दिया जावे। शारीरिक चिह्नों से जीवंधर महान् वीर राजपुत्र प्रतीत होता है। ऐसा किये बिना हम अपने कर्तव्य-पालन में पीछे रहे आवेंगे।

राजा धनपति को लोकपाल की सम्मति बहुत उचित मालूम हुई और उसने उसका अच्छा समर्थन किया, किन्तु तिलोत्तमा रानी ने कहा कि जीवन्धर पद्मा के लिये वर तो उचित दीखता है परन्तु उसके पास है तो कुछ नहीं खाली हाथ है, राज-भवन में पली हुई पद्मा उसके साथ किस तरह सुखी जीवन बितावेगी ?

राजा ने तथा लोकपाल ने तत्काल उत्तर दिया कि अपना आधा राज्य जीवन्धर को दहेज में देदेंगे। यह सुनते ही तिलोत्तमा के नेत्रों में हर्ष के आंसू छलछला आये और बड़ी प्रसन्नता से उसने भी अपनी स्वीकृति (मंजूरी) दे डाली।

यह बात जब पद्मा के कान तक पहुँची, तब उस के हृदय में भी असीम हर्ष हुआ. तभी से वह जीवन्धर का तरुण सुगठित शरीर, सुन्दर सौम्य, तेजस्वी मुख देखकर अपने मन में उससे अनुराग करने लगी ।

वर के चुनाव के लिये कन्या का पिता वर के निर्मल उच्च वंश को देखता है, कन्या की माता वर की सम्पत्ति पर ध्यान देती है और कन्या अपने भावी पति के सौन्दर्य पर आकर्षित होती है तथा जन साधारण विवाह-सम्बन्धी सुस्वादु खान पान में रुचि प्रगट करता है।

लोकपाल ने अपनी बहिन के पाणिग्रहण का प्रस्ताव जीवन्धर कुमार के सामने रक्खा, कि 'पद्मा का जीवन आपने बचाया है, अब आप इसको अपनी जीवन-सहचरी बनाइये।'

जीवन्धर कुमार ने मन्दस्मित (मुस्कराते) मुंह से मौनरूप में स्वीकारता दे दी। राजा धनपति और त्रिलोत्तमा को जीवन्धर की स्वीकारता से बहुत सन्तोष और प्रसन्नता हुई।

तब शुभ मुहूर्त में बड़े आनन्द-उत्सव के साथ सुलक्षणा, अनिन्द्य सुन्दरी, नवयौवन में पदार्पण करने-वाली पद्मा का पाणि-ग्रहण जीवन्धर कुमार ने किया। कन्यादान के साथ धनपति ने जीवन्धर कुमार को अपना आधा राज्य प्रदान किया।

जिस राज्य तथा सुन्दरी कन्या प्राप्त करने के लिये राजाओं को बड़े-बड़े भयानक युद्ध करने पड़ते हैं, अनेक छल आदि दुर्नीतियों का प्रयोग करना पड़ता है, कभी कभी इस कार्य में अपना जीवन भी खो देना पड़ता है, वे दोनों वस्तुयें जीवन्धर कुमार को विदेश में विना कुछ स्व-पर हानि पहुँचाये, विना मांगे तथा विना कोई प्रयास किये स्वयं बड़े सन्मान के साथ मिल गईं। शूली पर चढ़ा हुआ जीवन्धर चन्द्राभा राजा के आधे भाग का स्वामी बन गया! भाग्य की लीला विचित्र है।

सौभाग्य के उदय होने पर मनुष्य को अनचाही वस्तु भी स्वयं आकर मिल जाती है किन्तु जब दुर्भाग्य का चक्कर आता है तब अपने पास की वस्तु भी चली जाती है। सौभाग्य के समय मनुष्य को अभिमान हो जाता है, वह समझ लेता है कि "यह सब कुछ सफलता, धन सम्पत्ति तथा सुपुत्र, सुपत्नी, सुमित्र का समागम, कीर्तिका विस्तार, व्यापार में लाभ आदि मेरे अपने उद्योग से हो रहा है, मैं बड़ा बुद्धिमान चतुर और

उद्यमी हूँ।" परन्तु बुद्धिमान मनुष्य न तो उस समय जरा भी दूषित अभिमान करता है और न ऐसा सोचता है। वह तो यही विचार अपने हृदय में रखता है कि "बुद्धि और उद्यम तो अवश्य होने चाहिये परन्तु केवल इतने से ही काम नहीं बनता इसके साथ ही पहले दान परोपकार आदि शुभ कार्यों से कमाया हुआ शुभ कर्म का उदय भी अवश्य होना चाहिये। शुभ कर्म का उदय हुए विना हजारों कठिन उद्योग करने पर भी सफलता नहीं मिला करती। मुझे जो सफलता मिल रही है उसमें केवल मेरी बुद्धि और परिश्रम का ही चमत्कार नहीं है, बल्कि उससे भी अधिक भाग्य की सहायता है। इस लिये मैं अभिमान किस बात का करूं? अपने अच्छे दिन बनाये रखने के लिये जितना हो सके उतना त्याग, परोपकार, दान, दीन दुखी जनता की सेवा, तथा लोक-कल्याण भी अवश्य करता रहूँ।"



छठा प्रसंग

राज-कन्या पद्मा के साथ विवाह करके जीवन्धर चन्द्राभा नगरी के सुन्दर राजभवन में रहने लगा। जीवन्धर पद्मा के साथ कभी उद्यान-क्रीड़ा करता था, कभी जल-विहार का आनन्द अनुभव करता था और कभी वन-विहार से चित्त प्रसन्न करता था। दोनों परस्पर में गाढ़ स्नेह के द्वारा दो शरीर होते हुए भी एक-हृदय होकर गृहस्थ-जीवन का सुख अनुभव करते थे। एक दूसरे से क्षण भर अलग न होना चाहते थे। दोनों एक साथ भोजन करते, एक साथ घूमते, एक साथ सोते तथा साथ ही साथ जागते थे। पद्मा के माता पिता जीवन्धर और पद्मा का पारस्परिक अटूट प्रेम-भाव देखकर प्रसन्न थे।

विवाह संस्कार से वर कन्या एक ऐसे प्रेमसूत्र में बंध जाते हैं जो कि जीवन भर उन्हें पृथक् (अलग) नहीं होने देता। पति अपनी पत्नी के सुख के लिये समस्त उपाय काम में लाता है और पत्नी अपने पति को प्रसन्न रखने के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है। पति अपनी पत्नी की रक्षा में अपने प्राण की बाजी लगाने को तयार रहता है और पत्नी अपने पति को सुरक्षित रखने के लिये अपने प्राणों की चिन्ता नहीं करती। पति पत्नी के ऐसे अनुपम प्रेम के कारण ही गृहस्थाश्रम स्वर्ग बन जाता है।

कोई-कोई पति-पत्नी एक स्वभाव के नहीं होते, इस कारण उनमें परस्पर जब प्रेम टूटने का अवसर आता है, तब पति-पत्नी बुद्धिमानी से परस्पर एक दूसरे को समझाकर, एक दूसरे की बात मान कर और कुछ मनवाकर उस प्रेम में अन्तर नहीं आने देते। एक दूसरे के स्वभाव और इच्छाओं को अच्छी तरह समझकर आपस में एक दूसरे के मन को ठेस पहुँचाने वाली कोई ऐसी बात नहीं करते, एक दूसरे को प्रसन्न रखने वाले ही कार्य करते हैं। इस तरह उनका भी प्रेम-सूत्र अटूट बन जाता है।

घर में सब तरह का वैभव और सम्पत्ति रहते हुए भी यदि पति पत्नी में परस्पर प्रेम नहीं, तो उस घर में सदा क्लेश रहता है। वह घर नरक बन जाता है, उसका समस्त वैभव नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, संसार में उस घर की निन्दा और उपहास होता है। घर में धन-सम्पत्ति न होने पर भी पति-पत्नी में यदि परस्पर प्रेम होता है तो वह घर स्वर्ग समान आनन्द देता है, उस घर का यश सर्वत्र फैल जाता है। इस कारण गृहस्थाश्रम की सब से बड़ी सम्पत्ति पति पत्नी का आपसी प्रेम है।

जीवन्धर को चन्द्राभा में पद्मा के साथ आनन्द से रहते हुए जब बहुत समय बीत गया, तब एक दिन एकान्त में जीवन्धर ने अपने मन में विचार किया कि 'अपने ससुर की सम्पत्ति पर निर्वाह करना कायर पुरुषों का काम है, शूरवीर मनुष्य अपने बाहुबल से प्राप्त की हुई सम्पत्ति का उपभोग किया करते हैं।

मुझको काष्ठाङ्गार से अपने पिता का तथा अपने अपमान का बदला लेना है, यहां रहकर मैं अपने कर्त्तव्य को भूल गया हूँ, यह मेरे लिये उचित्त नहीं। ससुराल में अधिक दिन तक रहना बुद्धिमान पुरुष का कार्य नहीं।'

ऐसा विचार करके जीवन्धर ने चन्द्राभा से आगे चलने का निश्चय किया और एक दिन पद्मा को बिना कुछ कहे-सुने चुप-चाप वहां से चल दिये।

जीवन्धर के चले जाने से पद्मा को बहुत दुःख हुआ, अपने पति के वियोग से पद्मा ने खाना-पीना छोड़ दिया। लोकपाल ने जीवन्धर कुमार को खोज कर लौटा लाने के लिये चारों ओर बहुत से मनुष्य भेजे, उन मनुष्यों ने मार्ग में जाते हुए जीवन्धर कुमार को पा भी लिया और चन्द्राभा को वापिस चलने के लिये बहुत विनय से निवेदन भी किया, किन्तु जीवन्धर कुमार ने उन को अपना निश्चय समझा दिया कि मैं जिस काम के लिये चन्द्राभा नगरी से बाहर निकला हूँ जब तक वह सिद्ध न हो जावेगा तब तक मैं चन्द्राभा न आ सकूंगा। पद्मा मेरे हृदय में है, मैं उसे भुला नहीं सकता। अपना राज्य स्थापित करके पद्मा को अपने पास बुलाऊंगा। तब तक पद्मा को तथा तुम सब को मेरी प्रतीक्षा करनी चाहिये। मेरे कार्य में विघ्न डालना उचित नहीं।

इस तरह प्रेम से समझा-बुझा कर जीवन्धर ने उन मनुष्यों को पीछे लौटा दिया और आगे-आगे चल पड़ा।

कर्मठ मनुष्य किसी लोभ लालसा में फंस कर अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होता, उस के सामने भावना से भी उच्च पद कर्तव्य का होता है।

नदी, वन, पर्वतों और मैदानों को पार करता हुआ जीवन्धर कुमार आगे चला जा रहा था, मार्ग में उस को अनेक तीर्थक्षेत्र मिले, उन की बहुत भक्ति से पूजा वन्दना की। चलते-चलते मार्ग में उस को एक साधु-आश्रम मिला। साधु-आश्रम में आकर जीवन्धर कुमार ने अनेक साधुओं को भिन्न-भिन्न तरह की तपस्या करते देखा—

कोई साधु चारों ओर अग्नि जला कर बीच में बैठा था, कोई साधु वृक्ष पर उलटा लटका था, किसी साधु ने अपना हाथ ऊंचा उठा रक्खा था, कोई एक पैर से खड़ा हुआ था, किसी ने अपने शिर की जटा बहुत बढ़ा ली थीं और किसी ने अपने नाखून बढ़ा रक्खे थे। कोई शिर पृथ्वी पर टेक कर पैर आकाश की ओर करके उल्टा खड़ा था, किसी ने अपने शरीर पर भस्म लपेट रक्खी थी, कोई साधु सूर्य की ओर मुख करके चुपचाप खड़ा हुआ था। इत्यादि। वहां पर जितने साधु थे उतनी तरह से वे भिन्न-भिन्न प्रकार से तपस्या कर रहे थे।

एक जटा-धारी साधु नदी में स्नान करके आया था और अपने चारों ओर लकड़ियों तथा उपलों (गोबर के कंडों) का ढेर लगा कर आग जला कर वहां बैठने ही वाला था कि जीवन्धर-कुमार ने उससे पूछा कि यह क्या कर रहे हो?

उस तपस्वी ने अभिमान-भरे क्रोध के साथ उत्तर दिया कि तुम्हें दिखाई नहीं देता यह तपस्राश्रम है, यहां के रहने वाले सभी साधु-सन्त तपस्या करते हैं ?

जीवन्धरकुमार ने कहा कि जिस क्रिया से केवल शरीर को कष्ट मिले, आत्मा को रंच मात्र भी शुद्धि न हो, उसको तपस्या समझना या कहना बहुत भूल है। साधु को आत्म-साधन के लिये महान दयालु होना चाहिये, यह बात आपकी तपस्या में नहीं पाई जाती।

उस साधु का क्रोध और भी उग्र हो गया और वह जीवन्धर को अपने गुरु के पास ले गया। यह देखकर आश्रम के समस्त साधु एकत्र हो गये और बड़ी उत्सुकता के साथ अपने आचार्य तथा जीवन्धर का वार्तालाप सुनने लगे।

जीवन्धर ने उस आचार्य तथा उसके सब शिष्यों को सम्बोधित करके कहा कि—

शरीर और आत्मा दोनों पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं, जिस नदी के स्नान से शरीर साफ हो जाता है, उस जल से आत्मा की शुद्धि नहीं होती बल्कि नदी तालाब में स्नान करते समय आप के शिर की जटाओं में छोटी-छोटी मछलियां, मेंढक आदि जलचर जीव फंस कर मर जाते हैं।

(जीवन्धर ने उस साधु की जटा-जूट में फंसी हुई कई छोटी-छोटी मछलीं दिखाईं।) जिस काम में रंच मात्र भी अन्य जीवों को कष्ट पहुंचे या क्षुद्र जीवों की हिंसा हो, वह कार्य धर्माचरण

का कैसे माना जा सकता है ? आप जो अपने चारों ओर आग जलाकर तपस्या करते है, उस आग में चींटी, मकोड़े, पतंगे आदि हजारों जीव-जन्तु मरते रहते हैं फिर ऐसी तपस्यासे अहिंसा धर्म का आचरण कैसे हो सकता है ? इसलिये आप यदि अपना आत्मा शुद्ध करना चाहते हैं, तो विवेक से कार्य कीजिये।

तपोवन के बुद्धिमान् गुरु को जीवन्धर की बातें कुछ हित-कारी मालूम हुई, उसने जीवन्धर से कहा कि हे युवक ! तूने आत्मा को क्या समझा है ? तेरे विचार से आत्मा निर्मल कैसे बन सकता है ?

जीवन्धरकुमार ने मुस्कराते हुए कहा कि—

ज्ञान, सुख, बल आदि अनन्त गुणों का भण्डार यह आत्मा अपनी ही भूल से इस संसार-चक्र में चक्कर लगा रहा है। संसार की सभी चीजें आत्मा से अलग हैं, यहां तक कि यह शरीर भी इस आत्मा का नहीं है। न कोई वस्तु आत्मा की कभी हो सकती है और न कभी हुई, इस कारण यदि आत्मा संसार की सब वस्तुओं से मोह ममता का सम्बन्ध तोड़ले, तो न तो संसार में किसी वस्तु को अच्छा समझ कर उससे प्रेम करेगा और न किसी को बुरा मानकर उससे द्वेष करेगा। तब संसार में न इसका कोई मित्र होगा और न कोई शत्रु। उस दशा में इसके अभिमान, क्रोध, काम, लोभ, छल, ईर्ष्या, घृणा आदि दुर्भाव अपने आप शान्त हो जायेंगे, ऐसी अवस्था में आत्मा निर्मल होता चला जायगा।

आप लोगों ने घर बार छोड़कर इस निर्जन वन में रहना शुरू किया, यह तो अच्छी बात है, किन्तु इसके साथ ही अपने हृदय में आत्म-ज्ञानकी ज्योति जगाओ। अपने मनको यदि आप अपने वश में कर सकेंगे तो आत्म-सिद्धि प्राप्त करने में आपको देर न लगेगी। इसलिये आप सांसारिक इच्छाओं को रोको। क्षमा, सत्य, शौच, ब्रह्मचर्य, त्याग आदि गुणों को अपने आचरण में लाने का अभ्यास करो। तब ही आत्मा के भीतरी शत्रु काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार आदि अपने आप भाग जायेंगे।

एक छोटा कांटा चुभने से भी जैसा तुमको दुःख होता है वैसा ही दुःख दूसरे जीवों को भी होता है, वे चाहे छोटे हों या बड़े। साधु बन कर तुमने दूसरे जीवों की रक्षा न की तो साधु बनने से क्या लाभ हुआ? घर-बार छोड़ने का अभिप्राय तो यही है कि जगत् के सभी जीवों को दया का दान दिया जाय, सबकी रक्षा की जाय। यदि अपनी किसी भी क्रिया से किसी भी जीव को दुःख पहुंचा तो समझ लो कि साधु-चर्या में उतनी ही कमी है।

अहिंसा (किसी को न सताना) मुख्य धर्म है। आप लोगों को उसका पूरा-पूरा आचरण करना चाहिये। अपना ध्यान सब ओर से हटाकर आत्मा की ओर लगाओ, तभी आत्मा शुद्ध होगी। मुख से जो कुछ बोलो वह सत्य हो, प्रिय हो तथा हितकारी हो, क्रोध, अभिमान और कपट की मात्रा वचन में रंचमात्र भी न होनी चाहिये।

मन पर ऐसा कड़ा नियन्त्रण रक्खो कि उसमें कामवासना का जरा भी उदय न होने पावे, संसार की स्त्री-जाति को माता बहिन की दृष्टि से देखना उचित है। एवं साधु का सबसे बड़ा चिन्ह धन-सम्पत्ति से सर्वथा (मन-वचन-शरीर से) दूर रहना है। जिस साधु के पास एक कौड़ी भी हुई तो वह साधु कौड़ी का समझना चाहिये। इसके सिवाय आप लोगों का भोजन बहुत ही सात्विक, सादा और शुद्ध होना चाहिये।

संसार, अपने शरीर और भोग उपभोग की सभी वस्तुओं से मोह ममता का विचार भी मन में न आने दो।

प्रतिदिन अपने दोषों को सूक्ष्म-दृष्टि से देखकर उनसे दूर रहने का प्रयत्न किया करो। संसार के सब प्रपंच से दूर, पूर्ण निरंजन, कृत-कृत्य, पूर्णज्ञानी, पूर्णसुखी परमात्मा तुम्हारे इस आत्मा में छिपा हुआ है, उसको आत्म-ध्यान से ढूंढ निकालो, यह तुम्हारा आत्मा ही शुद्ध होकर परमात्मा हो जायगा। पूर्ण शुद्ध आत्मा फिर कभी अशुद्ध नहीं होता और न कभी फिर संसार-चक्र में, आवागमन के फेर में पड़ता है। ज्ञान, दर्शन, सुख, शक्ति आदि सभी आत्मिक गुण पूर्ण विकसित हो जाते हैं, उन गुणों पर फिर कोई आवरण या मैल नहीं आने पाता। तपस्या तथा साधु बनने का यही फल है, इसी फल को पाने का यत्न करो।'

साधुओं का गुरु जीवन्धर की बातें सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ उसने जीवन्धर से कहा कि—

"वीर युवक ! तू आयु में हमसे छोटा हुआ तो क्या, किन्तु ज्ञान में हमसे बड़ा है। तू ने जो कुछ कहा उसका एक-एक शब्द हमारे हृदय पर अङ्कित हो गया है। आज से ही हमारी तपस्या की दिशा बदल जायगी, अब हमारा भविष्य उज्ज्वल होगा। तुझे सुखी, स्वस्थ, दीर्घ जीवन मिले। आश्रम के सभी साधुओं ने जीवन्धर की हृदय से प्रशंसा की और सबने उसकी शुभ-कामना की।

जीवन्धरकुमार अपने प्रयत्न को सफल होता देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और वहां से आगे दक्षिण दिशा की ओर चल दिया। लम्बे-चौड़े वन में अकेला निर्भय पैदल यात्रा करते हुए जीवन्धर को एक ऊँचे स्थान पर बना हुआ एक सुन्दर विशाल देव-मन्दिर मिला। मन्दिर को देखते ही जीवन्धर का चित्त प्रफुल्लित हो गया। बड़ी श्रद्धा और उत्सुकता के साथ वह मन्दिर में विराजमान भगवान् की प्रतिमा का दर्शन करने के लिये मन्दिर के द्वार पर जा पहुंचा। किन्तु वहां जाकर उसने देखा कि उस सहस्रकूट देवालय का द्वार बन्द है। तब जीवन्धर ने द्वार पर खड़े होकर बड़ी भक्ति से भगवान् का स्तवन किया कि—

हे भगवन् ! आपका ज्ञान सूर्य से भी अधिक प्रकाश देने वाला है, हृदय का अन्धकार आपकी ज्ञानकिरण से ही दूर होता है। आप त्रिलोक के समस्त पदार्थों को स्पष्ट जानते हुये भी किसी भी पदार्थ से न प्रेम करते हैं, न घृणा। ऐसी विशुद्ध भावना और ऐसा व्यापक ज्ञान मैं भी आपके दर्शन से प्राप्त करना

चाहता हूँ। आपका पवित्र दर्शन आत्मा के स्वरूप का अनुभव कराने में प्रबल कारण है। आपका दर्शन ही जन्म-मरण व्याधि की परम औषधि है। आपके दर्शन के लिए मेरे नेत्र ऐसे व्याकुल हो रहे हैं जैसे कि कमल सूय के लिये। जब तक मुझे आपका पुनीत दर्शन न होगा तब तक मेरा चित्त सन्तुष्ट न होगा। मैंने जब आपका स्वागत करने के लिये अपने हृदय-कपाट खोल दिये हैं तब द्वार के ये कपाट मेरे लिए क्यों बन्द हैं ?

ऐसा स्तवन करते हुए जीवन्धरकुमार ने मन्दिर के किवाड़ों को हलका सा धक्का दिया कि वे वज्र-कपाट, जो कि बहुत दिनों से बन्द थे, अनेक दर्शनार्थी बलवान पुरुष जिनको खोलने के लिये अपने बल की परीक्षा देकर सफल न हो सके और खिन्न-चित्त हो कर वापिस चले गये, चट खुल गये। जिस तरह भव्य गणधर तथा विनीत श्रोता के उपस्थित होते ही सर्वज्ञ देव की ध्वनि निकल पड़ती है।

द्वार खुलते ही जीवन्धरकुमार तीव्र, अनुपम भक्ति-भाव से गद्-गद् होकर उस सहस्रकूट देवालय में भगवान् की भव्य प्रतिमा का दर्शन करने के लिये बड़ी उत्सुकता से घुसा। भीतर जाकर जब अर्हन्तदेव की मनोहर मूर्ति का दर्शन किया तो भक्ति में तन्मय होकर उसने लेटकर आठ अङ्गों से नमस्कार किया और अपने हृदय-उल्लास को अपनी रसना के द्वारा बाहर निकालने का यत्न करने लगा कि—

"आराध्य देव ! आपके दर्शन करते ही मेरे हृदय में संसार

की विषमय विषय-कामना नहीं रह पाती, मेरा हृदय ऐसा अनुभव करता है कि मैं आपके मुख-चन्द्र का चकोर बनकर अपने नेत्रों द्वारा अमृत-पान कर रहा हूं। जो मन संसार की आधि-व्याधियों से संत्रस्त था, वह हृदय आपका दर्शन करते ही उन संकल्प-विकल्पों से दूर हो गया है। आप जिस तरह निरंजन निर्विकार हैं, वैसी पवित्र दशा ही मैं प्राप्त करना चाहता हूँ, वह मुझे किसी और तरह से प्राप्त नहीं होगी, वह केवल आप के चरणों के निकट रह कर आप के दर्शन से ही होगी। इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप की मूर्ति मेरे हृदय में वज्र की रेखा की तरह अंकित हो जावे।

आप वीतराग हैं—न किसी प्रशंसा करने वाले पर प्रसन्न होकर उसे प्रसन्न करने की, या उस की कामना पूर्ण करने की कोशिश करते हैं, और न किसी निन्दा करने वाले व्यक्ति पर रुष्ट या क्रुद्ध होकर उस का अनिष्ट करने का यत्न करते हैं किन्तु फिर भी ऐसी विचित्रता देखी जाती है कि आप के भक्तों के समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। आप के बहुत से भक्तों ने दुःख पीड़ा के समय जब भी आप को पवित्र हृदय से स्मरण किया, तत्काल उन के दुःख दूर हो गये। आप के दर्शन तथा स्मरण से भक्त के हृदय में ऐसा तीव्र शुभ भाव प्रकट होता है, जो सुख-दायक पुण्य-कर्म की सृष्टि कर डालता है, अशुभ कर्म-पुंज को भी सौभाग्य के रूप में परिणत कर डालता है, इसी कारण आपके अनुभवी भक्त-पुरुष सुख-कर्ता और

दुःख-हर्ता मानते हैं। उनकी मान्यता असत्य भी कैसे कही जावे ?

गणधर इन्द्र आदि महान समर्थ व्यक्ति आपका गुण-गान करना चाहते हैं किन्तु आपके अनन्तगुणों को कहने में वे असमर्थ हो जाते हैं, तो भला मैं आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ । मैं संसार का कोई भी विनश्वर वैभव नहीं चाहता, अतएव इन्द्र-पद, चक्रवर्ती का सिंहासन या नारायण का शारीरिक बल भी मुझे नहीं चाहिये, मैं तो अपनी उस खोई हुई रत्नत्रय (आत्म-अनुभूति, आत्म-ज्ञान, और आत्म-लीनता) निधि को चाहता हूं, जो कि न कभी नष्ट होती है और न कभी फीकी होती है। मैं वह प्रभावशाली प्रकाश का पुंज—ज्ञान चाहता हूं, जो कि संसार की सब लीला को जानता देखता भी उस ओर लालायित न होने दे। यह सब कुछ मुझको आपके दर्शन करने से ही प्राप्त हो सकता है।"

स्तवन करने के पश्चात् ज्यों ही जीवन्धर भगवान् की तीन प्रदक्षिणा देकर पूजन करने को तयार होने लगा, कि उसके निकट आकर एक भद्र-पुरुष ने प्रसन्नता से तथा विनय के साथ नमस्कार किया। उसको देखते ही जीवन्धरकुमार ने उससे पूछा कि भाई! तुम कौन हो ? क्या कार्य करते हो और यहां किस लिए आये हो ?

उस मनुष्य ने उत्तर दिया कि यहां से थोड़ी दूर क्षेमपुरी

नाम की एक सुन्दर नगरी है, उसका शासक राजा 'नरपतिदेव' है। जो कि अच्छा नीति-निपुण, पराक्रमी न्यायी तथा प्रजा का प्यारा है। उसके शासन में कोई भी व्यक्ति दुःखी नहीं पाया जाता।

नरपतिदेव ने अपनी नगरी के सब से अधिक धनिक 'सुभद्र' को सेठ का पद प्रदान किया है। सेठ सुभद्र अच्छा धार्मिक गुणी व्यक्ति है तथा व्यापार में भी सबसे अधिक चतुर है। नगरी में उसको सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति माना जाता है, वह अच्छा लोक-प्रिय भी है। उसकी स्त्री का नाम 'निर्वृति' है। निर्वृति सेठानी सुन्दरता में जैसे प्रसिद्ध है उसी तरह स्त्रियों के योग्य शील, लज्जा, विनय, मधुरभाषण आदि गुणों की भी खान है। उसकी कोख से एक सुपुत्री का जन्म हुआ है जिसका नाम 'क्षेमश्री है। क्षेमश्री अपनी माता से भी अधिक सर्वाङ्ग-सुन्दरी है, अच्छी विदुषी और सुशील कन्या है, यौवन ने उसकी सुन्द-रता में और भी अधिक वृद्धि कर दी है।

क्षेमश्री के जन्म-लग्न के समय निमित्त-ज्ञानी ने बतलाया था कि जो भाग्यशाली इस सहस्रकूट मन्दिर के वज्रकपाट को खोलेगा वही क्षेमश्री का स्वामी होगा। निमित्त-ज्ञानी के कहे-अनुसार सुभद्र सेठ ने मुझको यहां पर इसी कार्य के लिये नियुक्त किया है। आज मेरा सौभाग्य है जो सहस्रकूट मन्दिर का द्वार आपने आकर खोल दिया। मैं इस बात की सूचना देने के लिये सेठ के

निकट जाता हूं, जब तक मैं वापिस न आऊं, कृपा करके आप यहीं पर ठहरना। मेरा नाम 'गुणभद्र' है।

गुणभद्र की बात सुनकर जीवन्धर का चित्त प्रसन्न हुआ और उसके मुख पर मुस्कराहट आ गई, उसने नेत्र और मुख के संकेत से उसको स्वीकारता देकर विदा किया और आप भगवान् की पूजा करने लग गया।

गुणभद्र हर्ष में फूला हुआ अपने स्वामी सुभद्र सेठ के पास शीघ्र पग बढ़ाता हुआ जल्दी जा पहुँचा और सेठ को सहस्रकूट जिनालय के द्वार खोलने का वृत्तान्त कह सुनाया, उसके साथ ही जीवन्धरकुमार के सुन्दर शरीर, निर्भय निःशंक-स्वभाव, कोमल वाणी और प्रसन्न मुखमुद्रा का जिक्र भी उसने सुन्दर शब्दों म कह सुनाया।

अपने अनुचर के वचन सुनकर सुभद्र सेठ को परम हर्ष हुआ।

अपनी पुत्री के लिये सर्वगुण-सम्पन्न वर पाने के लिये प्रत्येक पिता को बहुत भारी चिन्ता हुआ करती है, यदि वैसा सुयोग्य वर घर बैठे ही मिल जावे तो इससे अधिक आनन्ददायक बात और क्या हो सकती है?

सुभद्र सेठ ने यह हर्ष-समाचार अपनी पत्नी निर्वृति को भी सुनाया, जीवन्धर द्वारा सहस्रकूट जिनालय का उद्घाटन सुनकर सेठानी को सुभद्र से भी अधिक हर्ष हुआ, और

उसने अपने पति को तुरन्त सहस्रकूट मन्दिर में पहुंचने की प्रेरणा की।

पुत्री के लिये गुणवान वर प्राप्त होने की सबसे अधिक प्रसन्नता कन्या की माता को हुआ करती है।

सुभद्र सेठ ने अपने अनुचर गुणभद्र को यह शुभ समाचार सुनाने के उपलक्ष्य में अच्छा पारितोषक दिया और झटपट तयार होकर गुणभद्र के साथ सहस्रकूट देवालय की ओर चल पड़ा।

इधर सेठानी हर्ष से फूली नहीं समाती थी उसने घर के अन्य स्त्री पुरुषों से यह हर्ष-वार्ता कह सुनाई। जिसके सुनते ही घर में अपार आनन्द छा गया।

क्षेमश्री की सखियों ने हंसते मुस्कराते हुए मीठे कौतूहल के साथ क्षेमश्री को जब यह बात कही. तो क्षेमश्री का हृदय खिल उठा, उसके चित्त पर जीवन्धर को बिना देखे ही अपने भावी पति का मनोहर चित्र झलकने लगा, वह क्षण भर में अपने भविष्य सुख की विचित्र कल्पना कर बैठी, किन्तु लज्जा ने उसको एक अक्षर भी मुख से न कहने दिया। उसकी सखियों ने उसकी मीठी चुटकियां लेते हुये उसको जब तङ्ग किया, तब वह लज्जा से मुस्कराती तथा कुछ ऊपरी खीज दिखाती हुई वहां से उठकर चली गई।

सुभद्र सेठ के घर का एक-एक अणु हर्ष के पुष्प बरसाने लगा। सेठानी ने जीवन्धरकुमार के स्वागत के लिये अपने भवन

को बहुत जल्दी सजाने का आदेश दिया और स्वयं सुन्दर वस्त्र आभूषण पहन कर जीवन्धरकुमार के भव्य स्वागत का प्रबन्ध करने में लग गई ।

उधर सुभद्र सेठ सहस्रकूट मन्दिर में जा पहुंचे । उनके हृदय में जीवन्धर के तथा बहुत समय से बन्द सहस्रकूट मन्दिर के दर्शन की उत्कट अभिलाषा थी। मन्दिर में पहुंचते ही उन्होंने भगवान् की सौम्य प्रतिमा का दर्शन किया और गाढ़ भक्ति तथा हर्ष में गद्-गद् होकर भगवान् को अष्टाङ्ग नमस्कार किया, एवं तीन प्रदक्षिणा देते हुए मनोहर स्तवन पढ़कर अपना हृदय सन्तुष्ट किया।

भगवान् की भक्ति करने के पश्चात् जब सेठ ने पूजन करते हुए जीवन्धरकुमार को देखा तो उसका मन वसन्त ऋतु में खिले हुए उद्यान की तरह चहक उठा । उसको जीवन्धर-कुमार के विषय में जो कुछ उसके नौकर ने कहा था सुभद्र सेठ ने उससे भी अनेक गुणी अधिक विशेषता जीवन्धर में पाई ।

आंख और कान में यह एक बहुत भारी अन्तर है कि कान किसी वस्तु के विषय में जितना सुन पाते हैं आंख उससे कई-गुणी अधिक विशेषता उस वस्तु में पाती है। एवं कानों की सुनी हुई बात पर मन तब तक सहसा विश्वास नहीं करता जब तक कि नेत्र उस बात की साक्षी तथा समर्थन न कर दें ।

सुभद्र सेठ ने देखा कि जीवन्धर कुमार सौन्दर्य का भण्डार

है, उस जैसा सुन्दर युवक सुभद्र ने अब तक कोई नहीं देखा। जीवन्धर का चौड़ा मस्तक, विशाल वक्षस्थल (छाती), लम्बी भुजायें, खिले हुए लाल कमल जैसा प्रसन्न मुख देख कर सुभद्र सेठ प्रफुल्लित हो गया। उस ने देखा कि जीवन्धर के सुडौल, गठीले शरीर के प्रत्येक अङ्ग से यौवन-भरी वीरता फूट-फूट कर बाहर झांक रही है, जिस भक्ति में तन्मय होकर जीवन्धर भगवान् की पूजा कर रहा था उससे उस का अनुपम धार्मिक भाव प्रकट हो रहा था, जिस का प्रभाव सुभद्र सेठ के मन पर और भी अधिक पड़ा।

धार्मिक व्यक्ति जब किसी अन्य को धर्माचरण में देखता है तो उस समय उस के हृदय से अनुराग स्वयं प्रकट हो उठता है।

जीवन्धर कुमार ने जब पूजा समाप्त की तब सेठ सुभद्र बहुत प्रेम और नम्रता के साथ मिला और बहुत अनुरोध के साथ अपने घर पर चलने की प्रेरणा की। जीवन्धर ने सुभद्र का प्रस्ताव स्वीकार किया और सुभद्र के साथ क्षेमपुरी के लिये चल पड़ा।

क्षेमपुरी एक अच्छी समृद्धिशालिनी सुन्दर नगरी थी, उस में स्थान-स्थान पर हरे-भरे उद्यान, उन्नत भवन और विशाल बाजार बने हुए थे। सुभद्र सेठ का ऊंचा भवन नगर के बाहर से दिखाई दे रहा था। उस के मकान पर फहराती हुई रंग-बिरंगी ध्वजायें ऐसी जान पड़ती थीं, जैसे कि दूर से ही जीवन्धर कुमार को बुला रही हों।

जीवन्धर-कुमार जिस समय सुभद्र सेठ के घर पहुँचा, सेठ के चाकरों ने उसका बड़े समारोह से स्वागत किया। द्वार में प्रवेश करते ही उस पर पुष्प-वर्षा की और बहुत सम्मान के साथ जीवन्धरकुमार को भवन के भीतर ले गये।

भीतर पहुंचते ही सेठानी ने अपार हर्ष और स्नेह के साथ जीवन्धर का स्वागत किया तथा सम्मान के साथ उसको ऊँचे आसन पर बिठाया। सेठ और सेठानी ने जीवन्धर से उसके माता-पिता के विषय में तथा क्षेमपुरी की ओर आने के विषय में अनेक प्रश्न किये। जीवन्धर ने उन प्रश्नों का उत्तर देकर दोनों (सेठ सेठानी) का समाधान किया।

सेठ सेठानी को जब यह ज्ञात हुआ कि जीवन्धरकुमार राज-पुत्र है, तब तो उनके हर्ष की सीमा न रही।

वर में सबसे बड़ी विशेषता उसके उच्च पवित्र कुल की मानी गई है। तदनन्तर स्वस्थ-सुन्दर शरीर देखा जाता है, अन्य बातों का विचार इनके पीछे होता है।

फिर सुभद्र सेठ ने अपनी नवयुवती सुपुत्री क्षेमश्री को बुलाया और उसके साथ पाणिग्रहण का प्रस्ताव जीवन्धर के सामने रक्खा।

जीवन्धर क्षेमश्री के यौवन-भरे मनोहर सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गया। तथा लज्जा से संकुचित क्षेमश्री ने तिरछी दृष्टि से जब जीवन्धर का मुख देखा तो वह भी जीवन्धर की सुन्दरता पर मन ही मन मोहित हो गई।

वर तथा कन्या का परस्पर अवलोकन एक-दूसरे के चित्त में अपूर्व आकर्षण (एक दूसरे की ओर खिंचाव) उत्पन्न कर देता है।

जीवन्धर कुमार ने क्षेमश्री की सुन्दरता, विनय, लज्जा आदि गुणों का आदर करते हुए विवाह करने की स्वीकारता दे दी।

स्वयं आई हुई लक्ष्मी को मूर्ख पुरुष ही ठुकराता है।

जीवन्धरकुमार का अनुकूल उत्तर पाकर सुभद्र सेठ और उस की पत्नी को बहुत आनन्द और सन्तोष हुआ।

अपना प्रयत्न सफल होते देखकर सब किसी को प्रसन्नता होती ही है।

सुभद्र सेठ ने ज्योतिषी से क्षेमश्री के विवाह की शुभ स्थिर लग्न निकलवा कर विवाह की तैयारी आरम्भ कर दी।

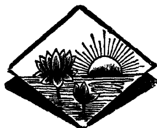
सुसज्जित सुन्दर विवाह-मण्डप तैयार किया गया, उसमें यथा-समय जीवन्धरकुमार के साथ क्षेमश्री का पाणिग्रहण हो गया। विवाह के समय आये हुये क्षेमपुरी के नरपति, नगर के प्रमुख पुरुष तथा सुभद्र सेठ के मित्र, सम्बन्धी आदि सभी ने जीवन्धर-कुमार और क्षेमश्री के जोड़े को बहुत पसन्द किया और क्षेमश्री के सौभाग्य की सभी ने प्रशंसा की तथा सभी ने इन दोनों को शुभ-आशीर्वाद दिया। सेठानी ने असीम हर्ष के साथ जीवन्धर-कुमार की आरती उतारी।

क्षेमपुरी के राजा और सेठ के मित्रों एवं सम्बन्धियों ने

अनेक प्रकार की भेटें जीवन्धरकुमार को दीं। सुभद्र सेठ ने तो बहुत सी सम्पत्ति प्रदान की ही।

क्षेमश्री का पाणिग्रहण करके जीवन्धरकुमार का चित्त बहुत प्रसन्न हुआ और जीवन्धरकुमार को पति रूप में पाकर क्षेमश्री को अपार हर्ष हुआ।

भाग्य की विचित्रता अचिन्त्य है। जीवन्धर कुमार कहाँ उत्पन्न हुआ, वहाँ पला पोषा, अपने नगर से प्राणदण्ड के अवसर पर यक्षने उसको कहाँ पहुंचा दिया। और वहाँ से इधर-उधर घूमते हुए उसको मार्ग में राजपुत्री पद्मा का अनायास समागम हुआ। तदनन्तर यहाँ पर सेठ की पुत्री उसको अपने आप प्राप्त होगई। कहाँ क्षेमपुरी और कहाँ पर राजपुरी, कहाँ जीवन्धर और कहाँ क्षेमश्री !



सातवां प्रसंग

विवाह हो जाने पर जीवन्धर कुमार अपनी नववधू क्षेमश्री के साथ क्षेमपुरी में आनन्द से रहने लगा। क्षेमश्री ने जीवन्धर को और जीवन्धर ने क्षेमश्री को अपना सब कुछ भेंट कर दिया वे दोनों दूध पानी की तरह एक-रस होकर आगाध प्रेम में निमग्न रहने लगे।

जगत् में जीवन के सच्चे साथी पति पत्नी ही होते हैं। मनुष्य अपनी पत्नी को प्रसन्न रखने के लिये, अपनी सारी शक्ति लगा देता है, यदि कभी अवसर आता है तो वह अपनी जीवन-सहचरी भार्या की रक्षा के लिये अथवा उसके सन्मान की रक्षा के लिये अपने प्राण भी समर्पण कर देता है। इस तरह स्त्री का सच्चा साथी उसके पति के सिवाय संसार में और कोई नहीं होता।

तथा स्त्री भी अपने पति को अपना स्वच्छ हृदय और अपना शरीर दे डालती है। अपने पति की सेवा करने में वह कुछ भी कमी नहीं आने देती। अपने पति को प्रसन्न रखने के लिये यदि उसको दारुण दुख भी उठाने पड़ें तो उनकी भी परवा नहीं करती। वह अपने पति को भोजन कराते समय माता के समान बन जाती है, काम काज में सम्मति देते हुए मन्त्री का काम करती है, सेवा करते हुए दासी के समान हो जाती है। अपने पति का चित्त

प्रसन्न रखने के लिये ही अपने शरीर का सुन्दर आकर्षक ढंग से शृङ्गार करती है। इस प्रकार वह अपने पति के लिये बड़ी भारी शक्ति का काम देती है। इस रूप से इस स्वार्थी संसार के भीतर पति-पत्नी रूप में स्त्री-पुरुष एक दूसरे के सबसे बड़े सेवक और सबसे बड़े सहायक होते हैं। उनका सुख और दुख साझे के रूप में जीवन भर चला करता है।

जीवन्धरकुमार बहुत आमोद-प्रमोद के साथ क्षेमपुरी में दिन बिता रहा था, उसके सास ससुर उससे बहुत प्रसन्न थे। उनको जीवन्धरकुमार की समस्त सुख-सुविधा जुटाने का पूर्ण ध्यान था, किसी भी तरह की कमी तथा चिन्ता का उसको अनुभव न होने देते थे।

जामाता (जमाई) के साथ सास-ससुर अपने पुत्र से भी अधिक अनुराग करते हैं। इसी कारण ससुरालय (ससुराल) में मनुष्य को स्वर्ग के समान आनन्द मिलता है।

क्षेमपुरी में रहते-रहते जीवन्धर को जब बहुत दिन हो गये तब जीवन्धरकुमार को अनुभव हुआ कि अब अपने सास-ससुर के प्रेम व्यवहार में वह बात नहीं रही, जो पहले थी।

ससुराल में थोड़े दिन तक ही सम्मान तथा आमोद-प्रमोद रहता है, अधिक दिन रहने पर उसमें अपने आप क्रम से कमी आने लगती है। अतः बुद्धिमान् पुरुष किसी दूसरे के घर, वह चाहे अपने ससुर का ही घर क्यों न हो, अधिक दिन तक नहीं ठहरता।

जीवन्धरकुमार ने विचार किया कि मैं वीर क्षत्रिय एवं राजपुत्र हूँ, मुझको इस प्रकार अपने सास-ससुर के घर पड़े रहना शोभा नहीं देता। कायर पुरुष ही दूसरे के आश्रय अपना समय व्यतीत करते हैं। मुझे अपने पुरुषार्थ से काम लेना चाहिये। अतः अब यहां पर अधिक ठहरना अच्छा नहीं, यहां से चल देना ही उपयोगी है।

ऐसा निश्चय करके जीवन्धरकुमार वहां से बिना कुछ कहे-सुने ही चुपचाप चल दिये। 'जाने में कोई रुकावट न खड़ी हो जाय' इस विचार से उसने अपना विचार अपनी प्रिया क्षेमश्री को भी न बताया।

जीवन्धर के चुपचाप चले जाने की वार्ता जब क्षेमश्री को मालूम हुई तो उसके हृदय को बहुत भारी आघात पहुँचा, उसको अपने चारों ओर सूना दीखने लगा, उसकी प्रसन्नता, आनन्द, चहल-पहल क्षण भर में स्तब्ध (रुक) हो गई, उसका चित्त उदास और निराश हो गया।

नवोढा (नवविवाहिता) स्त्री को अपने पति के साथ गाढा अनुराग होता है, अतः उसका हृदय-कमल अपने पति-रूपी सूर्य के अल्प वियोग से भी मुरझा जाता है।

जीवन्धर के चले जाने का समाचार जब सुभद्र सेठ और उसकी सेठानी को ज्ञात (मालूम) हुआ, तो वे बहुत व्याकुल हुए, उन्होंने जीवन्धरकुमार की खोज करने के लिये चारों ओर बहुत से मनुष्य भेजे किन्तु जीवन्धर का कहीं पता न चला। तब

वे निराश होकर चुप बैठ गये। उन्होंने अपनी प्रियपुत्री को अनेक प्रकार समझा बुझाकर उसको धीरज बन्धाया।

उधर जीवन्धर कुमार अपने मार्ग पर आगे बढ़ा जा रहा था, उसके हृदय में अपने अतीत समय की अनेक स्मृतियां और भविष्य का कार्यक्रम उथल-पुथल मचा रहा था, भाग्य और पुरुषार्थ की विचार-धारा उसके हृदय में तरंगित हो रही थी। यकायक उसके मन में यह विचार आया कि अपनी ससुराल के पहने हुए रत्न-जड़ित हार, कुण्डल, केयूर, करधनी, अंगूठी आदि आभूषण मुझे शोभा नहीं देते, किसी निर्धन भद्र पुरुष को इन्हें दे डालना चाहिये।

प्रातः का समय था कि जीवन्धर को अपने सामने एक दरिद्र मनुष्य आता हुआ दिखाई दिया। निकट आ जाने पर जीवन्धरकुमार ने उस मनुष्य को बहुत प्रेम के साथ पूछा कि—

भाई! कहां से आ रहे हो? क्या तुम्हारा हाल है? तुमने अब तक क्या संचय किया है? और अपने भविष्य के लिये भी कुछ बचाया है, कि नहीं?

वह दीन मनुष्य बोला कि श्रीमन्! मैं पिछले गांव से आया हूं, अगले गांव जा रहा हूं, खेती करता हूं। पृथ्वी माता जो कुछ दे देती है उसी पर निर्वाह करता हूं। अपनी इसी दशा पर सन्तुष्ट हूं, आगे के लिये न मेरे पास कुछ है और न कुछ बचा पाता हूं।

जीवन्धरकुमार ने उस के आत्मा की ओर संकेत करके

प्रश्न पूछा था, किन्तु वह दीन किसान उस के गूढ़ प्रश्न को न समझ पाया, इस कारण उसने जो कुछ समझा उस के अनुसार जीवन्धरकुमार को उत्तर दे दिया।

किसान का उत्तर सुन कर जीवन्धर कुछ हंसे और उन्होंने पूछा कि भाई! यह बताओ कि तुम्हारा आत्मा कहां से आया है और कहां जायगा? तुमने उसके लिए कुछ धन एकत्र किया है या नहीं? एवं तुम्हारा आत्मा स्वस्थ है या नहीं?

भोला किसान बोला कि आत्मा, परमात्मा क्या चीज है इसी बात का मुझे पता नहीं, तब मैं उसके आने-जाने के विषय में क्या कुछ बताऊँ, मेरे सामने तो अपने पेट की भूख मिटाने तथा अपने बाल-बच्चों के पालन-पोषण की समस्या रहतीहै उसी समस्या को हल करने में मेरा जीवन बीत रहा है। मेरे लिये तो खेत और अन्न ही परमात्मा हैं।

जीवन्धरकुमार ने मुस्कराते हुए उसको स्नेह के साथ कह कि अच्छा कुछ चिन्ता नहीं, तुम्हारे पेट की समस्या मैं हल कर दूंगा अब तुम भविष्य के लिये अपने आत्मा की समस्या हल करो। इसके आगे वे कहने लगे कि—मित्र!

संसार में जितने छोटे-बड़े जीव दिखाई दे रहे हैं वे सब अलग-अलग आत्मा हैं, अपने-अपने किये हुए अच्छे बुरे कम के अनुसार उनको अच्छा-बुरा शरीर मिला करता है। जैसे तुम अपने खेत में जैसा बीज बोते हो वैसा ही अन्न तुम्हारे खेत में पैदा होता है, उसी तरह पूर्वजन्म में किये हुए अच्छे-बुरे

कार्यों के अनुसार जीव को भी अच्छा-बुरा शरीर तथा सुख-दुःख का सामान मिला करता है। तुमने पहले जन्म में कुछ अच्छे काम किये थे, इस कारण तुमको कीड़े, मकोड़े, पशु, पक्षी आदि की योनि न मिलकर मनुष्य की योनि मिली। अब तुमको इस जन्म में ऐसे शुभ काम करने चाहियें जिससे अगले भव में इससे भी अच्छा स्थान तुमको मिल सके।

उस किसान को जीवन्धर की बातों में रस आया और उसने बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा कि भाई! बतलाओ मुझे क्या काम करने चाहिये जिससे मेरा परभव सुधर सके।

जीवन्धर ने अनुभव किया कि यह भव्य व्यक्ति है। उसने उसको प्रेम के साथ बतलाया कि—

"मित्र! अच्छे-बुरे काम यह जीव अपने मन के विचारों से, अपनी वाणी से तथा अपने शरीर की क्रिया से करता है, उसी अच्छी-बुरी क्रिया के अनुसार इसके शुभ-अशुभ भाग्य का समागम होता है. और उसी शुभ-अशुभ कर्म की प्रेरणा से यह जीव संसार की विविध योनियों में जन्म-मरण के चक्कर लगाया करता है। इसलिये इस संसार चक्र से निकलने के लिये मनुष्य को चाहिये कि संसार के सभी काम छोड़कर, सारी झंझटों से दूर होकर एकान्त स्थान में (वन पर्वत आदि में) रह कर आत्म-चिन्तन करे।

किसान बीच में ही बोल उठा कि घर के छोटे बच्चों,

स्त्री माता आदि परिवारको यों ही निराधार छोड़ देना चाहिये ?

जीवन्धरकुमार ने समझाया कि नहीं, परिवार से मोह छोड़ कर एकान्त में आत्मचिन्तन वही मनुष्य कर सकता है जिसको अपने परिवार के पालन-पोषण की चिन्ता न रहे। जो मनुष्य अपने परिवार के जीवन-निर्वाह की व्यवस्था न कर सके, उसको अपने घर में रह कर ही अपना आत्म-कल्याण करना चाहिये।

किसान ने कहा कि आप मुझे वही मार्ग बतलाइये।

जीवन्धरकुमार कहने लगे कि देखो—

यह आत्मा अपने गुणों का पूर्ण-अधिकारी अकेला ही है, जन्म-मरण, सुख-दुःख भोगने में इस जीव का रंचमात्र भी कोई अन्य जड़ चेतन पदार्थ साथ नहीं दे सकता। संसार की जितनी भी जड़ विभूति दीख पड़ती है वह सब इस जीव की रंचमात्र भी अपनी नहीं है, जन्म लेते समय अणुमात्र भी कोई पदार्थ न जीव के साथ आता है और न मरण समय कुछ साथ जाता है। तब ऐसी वस्तुओं से मोह-ममता करना वृथा है। सांसारिक वस्तुओं से प्रेम और द्वेष छोड़ देने से ही शत्रु-मित्र का व्यवहार, हर्ष विषाद का भाव और समग्र व्याकुलता दूर हो सकती है। व्याकुलता दूर होनेका नाम ही आनन्द—सच्चा-आनन्द प्राप्त होना है। अतः घर में रहते हुए भी मनुष्य को अपनेपरिवार तथा संसार की अन्य वस्तुओं से मोह का बन्धन शिथिल रखना चाहिये।

इस साधना के लिये गृहस्थ मनुष्य को अपने सामने कुछ आदर्श रखना आवश्यक है, जिसको लक्ष्य करके वह इस विरक्ति मार्ग में आगे बढ़ सके। इसके लिये सबसे बड़ा आदर्श पूर्ण-शुद्ध, निरञ्जन, निर्विकार, वीतराग परमात्मा है, जो कि संसार के बन्धन से, जन्म-मरणसे पूर्णमुक्त है, पूर्ण-ज्ञानी है। संसारकी सब लीला को जानता हुआ भी न किसी को प्रेम करता है, न किसी से घृणा। उसके समान आत्मा का शुद्ध रूप प्राप्त करना प्रत्येक बुद्धिमान का लक्ष्य होना चाहिये।

तदनुसार वीतराग प्रशान्त परमात्मा की वीतराग, निर्भय, निर्विकार, शान्त-मूर्ति का ध्यान से अवलोकन करना, उसके समान निर्विकार, निर्भय, शान्त होने की भावना भाना, अपनी वाणी द्वारा उसके गुण-गान करते हुए उस ओर अपने मन की प्रवृत्ति को जोड़ना आत्म-शुद्धि का सरल साधन है। संसार के सुन्दर-असुन्दर चित्र जिस तरह मनुष्य के मन में राग द्वेष की भावना जागृत करते हैं उसी तरह वीतराग देव का दर्शन, मनन, स्तवन, पूजन, मन में वीतरागता का अंकुर उत्पन्न करता है।

तथा ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये जिनमें आत्म-शुद्धि का, जीवमात्र के साथ मित्रता रखने का, किसी भी प्राणी को दुःख न पहुँचाने का पवित्र उपदेश लिखा हुआ हो, जिसमें आत्मा के बन्धन तथा मुक्ति का यथार्थ वर्णन हो, जिसके पढ़ने या सुनने से मन में पवित्रता के भाव विकसित हों; परम-श्रद्धा

के साथ ऐसे ग्रन्थों के स्वाध्याय से भी मनुष्य को पवित्र शिक्षा प्राप्त होती है।

एवं-ऐसे साधु पुरुषों की सेवा भक्ति तथा संगति करनी चाहिये, जो संसार की माया से अलग हों, रंचमात्र भी अपने पास परिग्रह न रखते हों, हिंसा, असत्यभाषण, परद्रव्यहरण, काम-वासना, पर-पदार्थ, (धन-सम्पत्ति, वस्त्र, भूषणादि) के ग्रहण को पूर्णरूप से छोड़ चुके हों। जो अपना समय ज्ञान-अभ्यास, आत्म-ध्यान, आत्म-चिन्तन, तथा लोक-कल्याण में लगाते हों। ऐसे विरक्त साधु-सन्तों की सेवा करने से भी गृहस्थ मनुष्य की चित्त-वृत्ति के तथा आचरण के शुद्ध होने का सुअवसर प्राप्त होता है।

इन वीतराग देव, शास्त्र, साधु की पवित्र श्रद्धा अपने मन में विकसित करते हुए गृहस्थ मनुष्य को अपनी शक्ति अनुसार जीवहिंसा से दूर रहना चाहिये। जिस तरह मनुष्य को एक छोटा सा कांटा चुभने से भी पीड़ा होती है, ऐसी ही पीड़ा अन्य सभी जीवों को होती है, इसलिये मनुष्य को दूसरे का दुःख अनुभव करते हुए किसी भी छोटे-बड़े प्राणी को कष्ट न देना चाहिये, न किसी के लिये बुरी भावना मन में लानी चाहिये।

दूसरे जीवों को धोखा देने वाले, भ्रम पैदा करने वाले, दूसरे का चित्त दुखाने वाले वचन कहना भी अनुचित है। हितकारी, सत्य, प्रियवचन बोलने चाहियें।

जीवन-निर्वाह के लिये प्रत्येक गृहस्थ मनुष्य अपने लिये अन्न, वस्त्र, धन, मकान आदि आवश्यक परिग्रह रखता है, उसमें से मनुष्य का यदि कोई भी पदार्थ खो जाता है तो उसे बहुत दुःख होता है, इस कारण किसी अन्य व्यक्ति की कोई चीज बिना उसके पूछे, (बिना स्वीकृति लिये) कदापि न लेना चाहिये।

कोई पुरुष यदि हमारे परिवार की स्त्री को कामवासना की दृष्टि से देखे या कामवासना का शिकार बनावे तो हमको जो दुःख होता है वैसा ही दुःख दूसरे को भी होता है, इस दृष्टि को रखते हुए अपनी विवाहित स्त्री के सिवाय संसार की समस्त स्त्रियों को अपनी माता, बहिन, पुत्री के समान समझकर पवित्र व्यवहार करना सदाचार का एक आवश्यक अङ्ग है, इसका आचरण अवश्य होना चाहिये।

तथा-अन्न, वस्त्र, धन आदि पदार्थों का संचय गृहस्थ मनुष्य को उतना करना चाहिये जितना उसको अपने लिये आवश्यक हो, अन्य व्यक्ति को दुःखदायक न हो। स्वार्थसिद्धि के लिये अन्य प्राणियों को कष्ट देना अनुचित है।

इन पांच तरह के आचरणों को गृहस्थ मनुष्य आचरण करके आत्मशुद्धि के मार्ग पर प्रगति कर सकता है।

इसके सिवाय उसको अपना आहार विहार, रहन-सहन भी ऐसा बना लेना चाहिये जिससे अन्य जीव को कष्ट न हो। तदनुसार मांस खाना, अंडा खाना, रक्त पीना सर्वथा छोड़ देना

चाहिये, जिन खाद्य पदार्थों में जीवजन्तु पैदा हो जांय उन्हें न खाना चाहिये, जो चीजें शरीर में रोग उत्पन्न करें, अपनी जीभ की लोलुपता रोककर उन चीजों को भी न खाना चाहिये। मधु (शहद) में असंख्य कृमि (सूक्ष्म जीव) होती है, अतः उसे भी अपना आहार न बनाना चाहिये।

शराब, भंग, गांजा, चरस, तमाखू आदि नशीली वस्तुओं का पीना, खाना, उपयोग करना छोड़ देना बुद्धिमान व्यक्ति को बहुत उपयोगी है क्योंकि इन वस्तुओं का खान-पान बुद्धि पर अज्ञानका पर्दा डाल देता है।

बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर और अंजीर फलों में भीतर बहुत से सूक्ष्म जीव होते हैं, अतः उनका भी आहार न करना चाहिये।

कुसंगति के प्रभाव से मनुष्यों को कुछ बुरी लत पड़ जाती हैं गृहस्थ पुरुष को उनसे भी सदा बचना चाहिये उनमें मुख्य आदतें ये हैं:—

जुआ खेलना, शिकार खेलना, मांस खाना, शराब पीना, वेश्या-गमन करना, अन्य स्त्रियों से व्यभिचार करना और चोरी करना, ये दुर्व्यसन मनुष्य को दुराचारी बनाकर पतित कर देते हैं।

जल में असंख्य सूक्ष्म जीव होते हैं, इस लिये जल दोहरे कपड़े से छानकर पीना चाहिये। सूर्य अस्त हो जाने पर अनेक सूक्ष्म कृमि कीट उत्पन्न होकर खाने पीने की वस्तुओं में आ जाते हैं जो कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं, इस कारण भोजन दिन में ही कर लेना श्रेष्ठ है।

यदि कोई मनुष्य अपना घर परिवार छोड़ कर साधु न बन सके तो घर में रह कर उसे इतनी क्रिया तो अवश्य आचरण में लानी चाहिये।

जीवन्धरकुमार ने जा उसे धर्म-उपदेश दिया वह उसे बहुत प्रिय लगा, उसने प्रसन्न होकर कहा कि इतना व्रत-आचरण तो मैं कर सकूंगा और अब से करता रहूँगा।

जीवन्धरकुमार ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा कि 'यह धर्माचरण तुम्हारा कल्याण करे।'

तदनन्तर जीवन्धरकुमार ने उसको अपने शरीर से उतार कर रत्न-जड़ित सुवर्ण के सब आभूषण दे दिये। वह किसान बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि सदाचार स्वीकार करने का फल मुझे इसी समय मिल गया, आचरण का फल तो भविष्य में मिलेगा ही और पता नहीं वह इससे कितना गुणा अधिक होगा। आपने कृपा करके मुझे जो आत्म-धर्म की निधि प्रदान की है उसके सामने यद्यपि ये आभूषण तुच्छ हैं किन्तु आपकी उदार भावना का मैं हृदय से सन्मान करता हूं। आप चिरकाल तक स्वस्थ प्रसन्न रहें।

जीवन्धर वहां से आगे बढ़ा, चलते-चलते उसके सामने एक हरा-भरा वन आया। उस वन में तरह-तरह के पक्षी वृक्षों पर चह-चहा रहे थे, हिरण, बारहसिंगे, नीलगाय आदि पशु हरी घास चर रहे थे, निकट ही उनके बच्चे क्रीड़ा कर रहे थे। छोटे-छोटे जला-शयों में कलहंस, आदि पक्षी तैर रहे थे, सारस मधुर स्वर में

परस्पर वार्तालाप कर रहे थे, अनेक प्रकार के वृक्ष फल पुष्पों से झुके हुए ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे किसी का स्वागत करते हुए अपनी नम्रता दिखला रहे हों। सुगन्धित मन्द पवन भी स्वतन्त्रता से विचरण कर रहा था।

जीवन्धरकुमार जंगल की प्राकृतिक शोभा का निरीक्षण करता हुआ आगे चला जा रहा था, चलते-चलते उसको कुछ थकावट मालूम हुई, तब विश्राम करने के लिये वह एक सघन वृक्ष के नीचे बैठ गया।

उसी समय उसकी दृष्टि समीप में हरी घास पर सन्मुख बैठी हुई एक नवयुवती स्त्री पर पड़ी, वह स्त्री गौर-वर्ण थी, यद्यपि वस्त्रों से उसका शरीर आच्छादित था किन्तु उसके अङ्गों की सुन्दरता वस्त्रों के भीतर से चमक-चमक कर बाहर आ रही थी, नवयौवन के उभार ने उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में अपूर्व आकर्षण ला दिया था, उसका मुखमण्डल कमल-सरीखा रक्त-कान्ति और चन्द्र-समान आल्हाद बखेर रहा था। उसके नेत्र हिरणी के समान बड़े और चंचल थे।

जैसे ही उसने सर्वाङ्ग सुन्दर तरुण जीवन्धर को देखा, वह मन ही मन उस पर मोहित हो गई और उसकी कामज्वाला उस के हृदय में जाज्वल्यमान हो उठी।

जिस प्रकार कामातुर पुरुष अपनी सच्चरित्र, प्रेममयी परम-सुन्दरी भार्या के होते हुए भी पाखण्डमूर्ति असुन्दरी अन्य स्त्रियों के साथ रमण करने के लिए व्याकुल हो उठते हैं, ठीक इसी

प्रकार काम-पीड़ित स्त्रियां भी इन्द्र-समान सुन्दर, बलवान् तरुण अपने प्राणवल्लभ पति को छोड़कर अन्य पुरुष से कामक्रीड़ा करने के लिए तत्पर हो जाती हैं।

वह कामातुर स्त्री अपने मद-भरे नेत्रों से जीवन्धरकुमार को देखने लगी और उसका चित्त अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उसने अंगड़ाई ली तथा एक दम उठकर खड़ी हो गई और अपना उत्तरीय वस्त्र [कमर से ऊपर का कपड़ा] शरीर पर से खिसका दिया, इस प्रकार क्षण-भर खड़ी रह कर बैठ गई, तदनन्तर मुस्कराते हुए चंचल नेत्रों से जीवन्धरकुमार की ओर तिरछी दृष्टि से देखने लगी।

कामातुर स्त्री अथवा पुरुष का विवेक, लज्जा और भय चला जाता है और वह अन्य पुरुष या स्त्री को अपने जाल में फंसाने के लिये अनेक अनुचित उपाय किया करते हैं।

सच्चरित्र बुद्धिमान जीवन्धर ने जब उस काम-विह्वला कामिनी की ओर देखा तब उसको उस स्त्री से बहुत घृणा हुई, जीवन्धर ने विचार किया कि ऐसी निन्द्य कामवासना को धिक्कार है जिसके प्रभाव से स्त्री, पुरुष अपने पवित्र सदाचार को छोड़ने के लिऐ तैयार हो जाते हैं। उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वे अपने साथ दूसरे व्यक्ति को भी दुराचारी बनाने के लिये तत्पर हो जाते हैं।

जीवन्धर कुमार ने अपना मुख उधर से फेर लिया और उस स्त्री की ओर पीठ करके बैठ गये। अपना वार खाली जाते देख

वह कामपीड़ित स्त्री खड़ी हो गई और अपने पैर के नूपुरों को झनकार करते हुए मस्त चाल से फूल तोड़ने के बहाने फिर जीवन्धरकुमार के सामने आ खड़ी हुई।

जीवन्धरकुमारने उसकी ऐसी चेष्टा देखकर वहां पर ठहरना उचित न समझा। उसने विचार किया कि एकान्त में कभी भी किसी स्त्री के पास न ठहरना चाहिए, वह चाहे अन्य स्त्री हो या अपनी बहिन, माता अथवा पुत्री ही क्यों न हो। पुरुष अग्नि के समान है और स्त्री घी के समान है। जिस प्रकार अग्नि के समीप रक्खा हुआ घी गर्मी से अपने आप पिघल जाता है, उसी त ह एकांत में बैठे हुए स्त्री-पुरुष का चित्त भी द्रवित हो उठता है।

ऐसा विचार कर जीवन्धर कुमार वहाँ से चलने के लिये उद्यत [तयार] हुआ। तब वह स्त्री एक अन्य प्रपंच रचकर जीवन्धरकुमार के पास आई और अपना करुणाजनक हावभाव बनाकर दीन मीठे रसीले स्वर में उससे कहने लगी कि मैं 'एक विद्याधर की कुमारी कन्या हूँ, अनङ्गतिलका मेरा नाम है, मेरे भाई का साला मेरी सुन्दरता पर आसक्त होकर मुझे बलपूर्वक [जबरदस्ती] मेरी अनिच्छा से मुझे यहां ले आया, अचानक जब उसने पीछा करते हुए अपनी स्त्री को देखा, तो उसके भय से मुझ को यहाँ पर अकेला छोड़ कर चला गया है। मैं तब से इस भयानक वन में इधर-उधर भटक रही हूं। मुझे यहां पर कोई आश्रय (सहारा) नहीं मिला, सौभाग्य से आप यहां आ पहुंचे हैं, अब मैं आपकी शरण में आ गई हूं, कृपा करके आप मुझे

स्वीकार कीजिये और अपनी चरण-दासी बनाकर मेरी रक्षा कीजिये।'

जीवन्धर कुमार उसकी कुटिल कामना-भरी बातों का उत्तर देने ही वाला था कि दूर से एक पुरुष की आवाज आई—

"प्रिये! तुम कहां चली गईं? इस भयानक वन में मैं कब से तुम्हारी खोज कर रहा हूं। तुम जल की प्यासी कहां भटक रही हो और मैं तुम्हारा मुख-चन्द्र देखने का प्यासा इधर-उधर भटक रहा हूं, मुझे यहां अकेला छोड़कर कहां चली गईं? तुम्हारा क्षण भर का वियोग भी असह्य है—सहा नहीं जाता। जहां भी हो, अपनी मीठी वाणी सुनाकर मेरी व्याकुलता दूर करो।"

अपने पति के ये शब्द सुनकर वह स्त्री चट बहाना बनाकर वहां से रफूचक्कर हो गई। जीवन्धर कुमार को इस पाखण्ड-भरे स्त्री चरित्र को देखकर बहुत आश्चर्य, दुःख और घृणा हुई। उसने अपने आपको धन्य समझा कि उस स्त्री का विकट, काम-जाल उसको अपने फन्दे में न फंसा सका।

थोड़ी देर बाद उस विद्याधरी का पति उस स्त्री को ढूंढता हुआ उधर आया और जीवन्धरकुमार के पास आकर अपनी स्त्री के विषय में पूछने लगा कि आपने मेरी भार्या को तो नहीं देखा? वह प्यासी थी, मैं उसके लिए जल लेने गया था, कि पता नहीं इतने में वह कहाँ चली गई?

जीवन्धर कुमार ने कहा कि भाई! एक स्त्री मैंने देखी तो

अवश्य है किन्तु मैं इतना कह सकता हूं कि वह आपकी स्त्री न होगी।

उस विद्याधर ने पूछा कि आपने कैसे जाना ?

जीवन्धरकुमार ने उत्तर दिया कि वह तो अपने आपको कुमारी कन्या कहती थी और उसको अपने लिए एक तरुण पति पाने की बड़ी तीव्र इच्छा थी। इसके लिए उसने चेष्टा भी बहुत की किन्तु उसको कुछ सफलता न मिली। तब वह तुम्हारी भार्या किस तरह हो सकती है ?

कुमारी-अवस्था में लड़की की देखभाल उसका पिता करता है, यौवन-अवस्था में वह अपने पति की रक्षा में रहती है और वृद्धदशा में स्त्री की रक्षा उसका पुत्र करता है। अतः स्त्री का स्वतन्त्र घूमना निरापद नहीं (खतरे से खाली नहीं)।

विद्याधर बोला, उसने आपके चारित्र की परीक्षा लेने के लिए यों ही कुछ कह दिया होगा, वह मेरी बड़ी पतिव्रता नारी है, मैं उसके बिना एक क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता। बतलाइये, वह बेचारी किधर चली गई है ? भयानक वन में वह किधर मेरी खोज में भटक रही है ? कहीं किसी विपत्ति में न फंस जावे ?

जीवन्धरकुमार ने कहा कि मित्र ! मन-चली स्त्रियों का चरित्र बहुत विलक्षण होता है, वे ऊपर से अपने आपको जितना सच्चरित्र दिखलाया करती हैं, हृदय से भी उतनी सदाचारिणी वे नहीं हुआ करतीं। जिसको तुम अपनी प्रिया समझते हो वह तुम को

अपना प्रियतम नहीं समझती। अभी कुछ देर पहले उसने यह प्रपंच रचा था कि 'मेरे भाई का साला मुझे जबरदस्ती पकड़ कर यहां ले आया है, किन्तु अपनी पत्नी के भय से मुझ को यहां छोड़ गया है। मैं कुमारी कन्या हूँ, मुझे अपनी भार्या बना लीजिए। यदि मैं अपने सदाचार से शिथिल होकर उसके हाव-भाव तथा मीठे शब्दों में फंस जाता, तब तुम देखते कि वह तुम्हारी प्रिया कैसी है।

विद्याधर बोला कि सम्भव है जिस स्त्री ने आपको अपने ऊपर आसक्त करने के लिये अनेक कुचेष्टाएँ कीं, यहां तक कि अपने मुख से उसने अपने मनकी कुटिल बात भी आपसे कह डाली, वह कोई अन्य स्त्री होगी। मेरी स्त्री तो इस प्रकार की कुचेष्टाऐं कभी नहीं कर सकती, उसके सदाचार का मुझे पूर्ण विश्वास है।

जीवन्धरकुमार ने उस स्त्री के रूप रंग, पहने हुए वस्त्रों का वर्ण आदि चिन्ह बतलाये तथा यह भी कहा कि उसने जैसे ही तुम्हारी आवाज सुनी कि तुरन्त यहाँ से चल दी। अब तुम स्वयं सब कुछ समझ सकते हो मेरे अधिक कहने की कुछ आवश्यकता नहीं।

चलता-फिरता बहता हुआ पानी स्वच्छ रहता है, उस जल का सब कोई सन्मान करता है—घूमता फिरता साधु भी सदाचारी पूज्य बना रहता है, राजा भी यदि अपने देश में चक्कर लगाता रहे तो उस राजा का राज्य भी ठीक बना रहता है, किन्तु

यदि स्त्री घूमती फिरती रहे तो वह प्रायः अपना सदाचार नष्ट कर बैठती है।

विद्याधर ने उत्तर दिया कि निःसन्देह, मेरी स्त्री के शरीर का रंग रूप तथा वस्त्र भी ऐसे ही हैं जैसे कि आप बतला रहे हैं। किन्तु फिर भी मुझे विश्वास नहीं होता। आप तो कृपा करके यह बतला दीजिये कि वह स्त्री यहाँ से किधर चली गई है?

जीवन्धरकुमार ने कहा कि मेरे सामने कुचेष्टा करने वाली स्त्री जब आपकी स्त्री नहीं हो सकती, वह आपके विचार से कोई अन्य ही स्त्री होगी, तब आप उसका पीछा भी क्यों करते हैं? तदनन्तर जीवन्धरकुमार ने हाथ का संकेत करके विद्याधर को बतलाया कि वह इस दिशा की ओर चली गई है।

विद्याधर उसी ओर अपनी स्त्री की खोज में चल दिया और जीवन्धर क्षण भर आश्चर्य में चुपचाप खड़ा हुआ उस विद्याधर को देखता रहा। तदनन्तर अपने मन में विषय वासना के शिकार पुरुषों के और कामातुर स्त्रियों की चेष्टाओं का विचार करताहुआ वहाँ से आगे चला।

चलते-चलते वह एक नगर के निकट पहुँचा, उस नगर के चारों ओर खड़ा हुआ उन्नत कोट था, उस के भीतर सुन्दर क्रम से बने हुए स्वच्छ सफेद ऊँचे मकान, उन्नत मंदिर, और उनकी शिखरों पर रक्खे हुए सुवर्ण कलश, तथा फहराती हुई रंग-बिरंगी ध्वजाओं को देखकर जीवन्धरकुमार ने दूर से ही समझ लिया कि यह कोई सुन्दर विशाल, समृद्धशाली नगर है।

उस नगर के बाहर हरे-भरे खेत और अनेक सुन्दर बाग बगीचे थे। जीवन्धर कुछ आगे चलकर एक अच्छे विशाल उद्यान में घुसा जिसमें कि हजारों प्रकार के छोटे बड़े फलदार वृक्ष थे, सैकड़ों तरह के सुगन्धित रंग-विरंगे पुष्पों-वाले पौदों की क्यारियाँ बनी हुई थीं। फूलों की सुगन्धि से सारा उद्यान महक रहा था। अनेक फव्वारे जल की सूक्ष्म-धाराओं को आकाश में उछाल रहे थे, आने जाने के मार्ग को छोड़कर प्राय: सब जगह हरी कोमल घास की चादर सी बिछी हुई थी। अनेक लताएँ ऊँचे पेड़ों से लिपटी हुई थीं, अनेक लताओं से छाए हुए सुन्दर मण्डप बने हुए थे। थोड़ी-थोड़ी दूर पर बैठने के लिये छोटे-छोटे स्वच्छ सुन्दर स्थल बनाये गये थे। वृक्षों. लताओं, घास तथा पौदों को हरा-भरा रखने के लिये स्वच्छ पानी की अनेक नालियां चल रहीं थीं।

जीवन्धरकुमार का चित्त उस उद्यान की शोभा देखते हुए बहुत आह्लादित हुआ, और वह एक सुन्दर स्थल पर बैठकर विश्राम करने लगा।

इतने में वहाँ पर अनेक राजकुमार अपने-अपने हाथ में धनुष वाण लिये आ पहुँचे। उन्होंने अपनी धनुर्विद्या की परीक्षा लेने के लिये अपने वाण से आम का फल नीचे गिराने का निश्चय किया। तदनुसार वे एक ऊँचे आम के वृक्ष के नीचे पहुंचे और उन्होंने उस वृक्ष पर सघन पत्रों के बीच में ऊँचे स्थान पर लगे हुए एक आम को देखा। उसे देखकर सबने एक-मत से यही

निर्णय किया कि प्रत्येक कुमार बारी-बारी से अपना वाण चला कर इस आम को नीचे गिराने का यत्न करे।

तदनुसार वे सब क्रम से अपने-अपने वाण उस आम को नीचे गिराने के लिये चलाने लगे। किसी का वाण आम से कुछ नीचा रह जाता था, किसी का वाण कुछ ऊंचा चला जाता था, किसी का वाण आम की दाहिनी ओर से निकल जाता था और किसी का बांयी ओर से। उन सब ने क्रम से अनेक बार अपनी-अपनी बारी से वाण चलायें किन्तु कोई भी राजकुमार लक्ष्यवेध (निशाने पर वार) न कर सका।

यह सब क्रीड़ा जीवन्धर बड़े कौतूहल के साथ देख रहा था, उसने जब उन राजकुमारों को निराश होता हुआ देखा तब वह उठकर खड़ा हो गया और हाथी की तरह मस्त चाल से झूमता हुआ उन कुमारों के पास पहुंचा। वहां पहुंच कर उसने एक राजकुमार से धनुष वाण अपने हाथ में लिया। तदनन्तर वाण को धनुष पर चढ़ा कर दाहिना नेत्र कुछ बन्द करके वाम नेत्र से लक्ष्य को देखते हुए वाण को उस ओर किया, तथा दाहिने पैर को आगे और बांये पैर को पीछे करके वीरासन से कुछ झुककर धनुष की डोरी खींच कर वाण चला दिया। दूसरे ही क्षण वह आम वाण की नोंक से विंधा हुआ पृथ्वी पर आ पड़ा।

जीवन्धर कुमार के धनुष वाण चलाने के कौशल को देख-कर सभी राजकुमार बहुत आश्चर्य-चकित हुए, जीवन्धरकुमार के पास आकर उन सबने उसकी बहुत प्रशंसा की।

जीवन्धरकुमार ने उन राजकुमारों से उनका परिचय पूछा, तब उनमें से एक लड़का जीवन्धरकुमार से बोला कि—

इस देश में यह 'हेमाभा' नगरी है, जैसा इसका नाम है उसी तरह की विशेषता (हेम + आभा = सोने के समान शोभा-शालिनी) भी इसमें विद्यमान है। इसके भूपति का शुभ नाम 'दृढमित्र' है वे बहुत दयालु, नीतिचतुर, प्रतापी, निर्भय, वीर क्षत्रिय हैं, न्याय नीति से शासन करते हैं। यही कारण है कि उनके राज्य में एक भी मनुष्य दुखी नहीं है, और न कभी उनके शत्रुओं को उनके राज्य पर आक्रमण करने का कभी साहस होता है। इस राज्य में आपको कहीं भी अन्याय, अत्याचार, दुराचार देखने को नहीं मिलेगा। खेती, व्यापार, विद्या-प्रचार, धर्म-पालन, अतिथि-सत्कार आदि बातें इस राज्य में बहुत अच्छे निर्बाध ढंग से चल रही हैं। इन समस्त सुख सुविधाओं का मुख्य कारण यही है कि राजा दृढ·मित्र स्वयं सदाचारी, नीति-निपुण प्रतापी शासक हैं।

उनकी भार्या का नाम 'नलिनी' है जो कि न केवल रूप सौन्दर्य की खानि है बल्कि स्त्री-उचित लज्जा, क्षमा, शील, सन्तोष, विनय, विद्या बुद्धि, विवेक, पातिव्रत्य आदि सुगुणों की भी खानि है लक्ष्मी, सरस्वती, रति, रम्भा आदि सब की विशेषताऐं उसमें पाई जाती हैं। राज्य के सुसंचालन में रानी का भी बड़ा भारी भाग है।

उस रानी नलिनी की कोख से सुमित्र आदि अनेक पुत्रों का

जन्म हुआ है, उन पुत्रों में से ही हम सब आपके सामने खड़े हुए हैं। हमारे पिता जी ने हमको, क्षत्रिय राजपुत्रों के लिये अति आवश्यक समस्त शिक्षाओं का प्रबन्ध कर दिया है, इसके लिये अपनी-अपनी कला में निपुण भिन्न-भिन्न शिक्षक हमको अपने-अपने विषय की शिक्षा देते हैं। तदनुसार अक्षर-विद्या (पढ़ना-लिखना), अश्वारोहण (घुड़सवारी), राजनीति, मल्लविद्या आदि हम सब सीख रहे हैं किन्तु हमारे पिता जी को अभी तक कोई शस्त्र-संचालन (हथियार चलाने) में चतुर शिक्षक नहीं मिल पाया है, इसी कारण हम सब अभी तक धनुष-बाण चलाने में निपुण नहीं हो पाये हैं। धनुष बाण, तलवार आदि अस्त्र-शस्त्र का कौशल क्षत्रिय राजपुत्र के लिये अन्य विद्याओं से भी अधिक आवश्यक है।

आप कृपा करके हमारे पिता जी के पास चलिये, आप हमारे पिता जी से मिल कर बहुत प्रसन्न होंगे और हमारे पिता जी भी आपको देखकर आल्हादित होंगे। उनके पास चलने में आपको रंचमात्र भी कष्ट न होगा।

जीवन्धरकुमार उन राजपुत्रों की बात स्वीकार करके उनके साथ राजमहल की ओर चल पड़ा।

राजा सर्वशक्ति-सम्पन्न शासक होता है, उससे परिचय होना बहुत लाभदायक है। अतः बुद्धिमान मनुष्य यदि कभी राजा से सम्पर्क स्थापित करने (मेल, जान पहचान करने) का अवसर पाते हैं तो वे उस समय चूक नहीं करते।

राजमहल में पहुँचकर उन राजपुत्रों ने जीवन्धरकुमार को अतिथि-गृह में अच्छे आसन पर बैठा दिया और स्वयं सबके सब बहुत प्रसन्नता के साथ अपने पिता के पास पहुंचे और उससे जीवन्धरकुमार के अनायास यहां आने तथा उनके धनुष वाण के कौशल का समस्त समाचार कह सुनाया।

राजा दृढमित्र धनुर्विद्या-निपुण जीवन्धरकुमार के आगमन की बात सुनकर प्रसन्न हुआ।

मनुष्य जिस वस्तु की खोज में हो, यदि वह वस्तु विना किसी भाग दौड़ के अपने घर आ जावे तो अत्यधिक प्रसन्नता का होना स्वाभाविक ही है।

राजा दृढमित्र बड़ी उत्सुकता के साथ तत्काल जीवन्धरकुमार के पास आया, और उससे बड़े हर्ष के साथ मिला। आते ही उसको उच्च-आसन पर विठा कर अच्छा सत्कार किया। उसने जीवन्धरकुमार के मुख तथा शरीर-आकृति को देखते ही ताड़ लिया कि जीवन्धर कोई उच्च-कुलीन युवक है। उसके साथ वार्तालाप करते हुये उसको मालूम हुआ कि जीवन्धर एक वीर योद्धा है, उसका तेजस्वी मुख-मण्डल, चौड़ा माथा, विशाल वक्षस्थल (छाती), उन्नत कंधे, लम्बे कान और भुजाएं, इस बात की साक्षी दे रही हैं कि वह कोई महान् पुरुष है। सुन्दरता तो दृढमित्रने जीवन्धरके समान अभी तक किसी अन्य पुरुष में देखी ही न थी।

दृढमित्र ने जीवन्धरकुमार से कुशल क्षेम पूछते हुए उसकी यात्रा का समाचार तथा इधर आने का कारण पूछा।

जीवन्धरकुमार ने सब बातों का यथोचित उत्तर दिया।

इसके पीछे राजा दृढमित्र ने कहा कि जिस तरह ब्राह्मण को ब्रह्म (आत्म) विद्या में और वैश्य को वाणिज्य व्यापार में कुशल होना आवश्यक है, उसी प्रकार क्षत्रिय को क्षात्र-धर्म (शूरवीरता) में निपुण होना बहुत आवश्यक है। दीन दुर्बल की रक्षा करना दुष्ट को दण्ड देना क्षत्रिय का धर्म है। किन्तु क्षात्रधर्म प्राप्त करने के लिये अस्त्र-शस्त्र विद्या में प्रवीण होना चाहिये। जो क्षत्रिय अस्त्र-शस्त्र चलाना नहीं जानता वह न तो युद्ध में अपनी रक्षा कर सकता है और न दीन दुर्बल प्राणी को ही किसी दुष्ट अत्याचारी से बचा सकता है।

क्षत्रिय राजपुत्र को तो अन्य विद्याओं की अपेक्षा शस्त्र-विद्या में निपुण होना सबसे अधिक आवश्यक है, क्योंकि उसको न केवल अपनी रक्षा करनी है बल्कि अपने राज्य को सुरक्षित रखना भी उसके लिये परम आवश्यक है। राजा को अपने बल पराक्रम से अपने राज्य का अन्तरङ्ग विग्रह-विद्रोह दबाना पड़ता है और साथ ही आक्रमणकारी अन्य राजसेनाओं के साथ घमासान युद्ध भी करना पड़ता है। अतः जो राजपुत्र अस्त्र-शस्त्र चलाना अच्छी तरह नहीं जानता वह न तो अपने पिता के राज्य को सुरक्षित रख सकता है और न अपने राज्य का विस्तार कर सकता है।

मेरे समस्त पुत्र अन्य विद्याओं में तो प्रवीण हो चुके हैं क्योंकि उन विषयों की शिक्षा देने वाले अच्छे पारङ्गत विद्वान मुझे मिल

गये थे, किन्तु ये अभी तक अस्त्र-शस्त्र विद्या में कुछ नहीं जानते। इसका कारण यह रहा कि मुझको इस विद्या का कुशल-शिक्षक अभी तक नहीं मिल सका।

सौभाग्य से हमको आपका अनायास लाभ हो गया है यदि आप कृपा करके हमारे पुत्रों को अस्त्र वस्त्र विद्या में अपने समान निपुण बना दें तो हम आपके बहुत आभारी होंगे। विद्वान् का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह जिस विद्या में प्रवीण हो वह विद्या दूसरों को भी खुले हृदय से प्रदान करे, जिससे उस विद्या का प्रसार होता जावे और जगत उस विद्या से लाभ उठावे।

जीवन्धर कुमार ने मुस्कराते हुए नम्रता के साथ मिश्र-स्वर में उत्तर दिया कि आप मेरे पिता के समान हैं आप जो आज्ञा करेंगे मैं उसका पालन करूंगा। यदि आपके पुत्र अस्त्र शस्त्र चलाने में रुचि रखते हैं, तो मैं जितना मैं जानता हूँ, वह सब उन्हें जल्दी सिखा दूंगा।

दृढमित्र बहुत प्रसन्न हुआ, उसने कहा कि कुलीन पुरुषों में ऐसे उच्च उदार सद्भाव स्वभाव से ही पाये जाते हैं। ये सब बालक आपको सौंपे जाते हैं। ये आपका अनुशासन मानेंगे। अस्त्र शस्त्र-शाला आपके नियन्त्रण में रहेगी, इसके सिवाय आप को जब कभी किसी वस्तु की आवश्यकता होगी उसकी व्यवस्था उसी समय कर दी जायगी, ये बालक आपके छोटे भाई हैं।

जीवन्धर कुमार ने मन्दस्मित (मुस्कराने) के साथ नेत्र और मुखके संकेत से राजा दृढमित्र को स्वीकारता दी। राजा भी जीव-

न्धर की स्वीकारता पाकर प्रसन्न और निश्चिन्त हुआ।

जीवन्धरकुमार सबसे प्रथम मल्लशाला में गया और उसने उन राजपुत्रों को द्वन्द्वयुद्ध (कुश्ती लड़ने) की कला सिखलाई। साथ ही अनेक तरह का शारीरिक व्यायाम (डंड, बैठक, योगासन, मुद्गर घुमाना आदि) भी सिखलाया। कुछ दिनों में जब वे राजपुत्र मल्लविद्या में निपुण हो गये और उनका शरीर-संगठन अच्छा सुधर गया— उनके बाहु, छाती, गर्दन, कंधे जांघें अच्छे पुष्ट सुडौल हो गये और अपने प्रतिद्वन्द्वी से मल्लयुद्ध करके उसको हरा देने के योग्य आत्म-विश्वास उन सब में उत्पन्न हो गया।

तब-जीवन्धर उनको अस्त्र-शस्त्र-शाला में ले गया, वहां पर उसने उन राज-कुमारों को प्रथम ही अनेक ढंग से लाठी चलाना सिखाया, फिर तलवार चलाने की, तलवार से द्वन्द्वयुद्ध करने की कला की शिक्षा दी। तदनन्तर बर्छी भाला चलाना, अनेक तरह से बर्छी भाले से लक्ष्यवेध करने के ढंग बतलाये। इसके पीछे अश्वारोहण (घुड़सवारी) की शिक्षा दी। 'तेज दौड़ते हुए घोड़े पर से भाले बर्छी का प्रयोग किस तरह करना चाहिये, घोड़े पर चढ़कर प्रबल वेग से शत्रु सेना में घुसकर तलवार का हाथ किस तरह चलाना चाहिये' इस बात का अच्छा अभ्यास कराया।

वे राजपुत्र इतना सब कुछ सीख गये तब जीवन्धर कुमार ने उनके हाथ में धनुष बाण दिया। राजा दृढमित्र अपने पुत्रों को मल्लविद्या, लाठी, तलवार, भाला बर्छी, अश्वारोहण आदि में

निपुण होता हुआ देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और बड़ी कृतज्ञता के साथ उसने जीवन्धरकुमार की प्रशंसा की।

जीवन्धरकुमार ने सबसे पहले अचल-लक्ष्य वेध (ठहरे हुए निशान पर तीर मारना) का अभ्यास उन राजकुमारों को कराया, जब उनका हाथ इस पर ठीक सध गया, तब उनको चल लक्ष्य (हिलते चलते निशान) का वाण द्वारा बेधना सिखलाया। तदनतर चन्द्रवाण, मोहनवाण (मूर्छा फैलाने वाला वाण) तमवाण (अन्धकार फैलाने वाला तीर) चलाने की शिक्षा दी। उसके बाद शत्रुकी ध्वजा काटना, प्रतिद्वन्द्वी का धनुष तोड़ देना, शत्रु के शिर से वाण द्वारा मुकुट उड़ा देना आदि का अभ्यास कराया।

राजपुत्रों के हृदय में अस्त्र शस्त्र चलाने की शिक्षा ग्रहण करने की तीव्र रुचि थी और साथ ही वे बहुत विनयी और श्रद्धालु तथा आज्ञाकारी थे, जीवन्धरकुमार को अपना आराध्य गुरु मानते थे थे एवं उसका बहुत सन्मान करते थे, उनका पिता जीवन्धरकुमार की समस्त सुख सुविधाओं और प्रसन्नता का पूर्ण ध्यान रखता था इसी कारण जीवन्धर भी उन लड़कों को बहुत रुचि के साथ क्रम से सब कुछ सिखाता गया।

पश्चात् उसने उन राजकुमारों को शब्द-वेध (नेत्रों से विना देखे केवल आवाज सुनकर निशान छेदने) की शिक्षा दी। यह कला राजकुमारों को कुछ कठिन प्रतीत हुई। तदनन्तर पानी में छाया देखकर लक्ष्य पर वाण चलाना सिखलाया। फिर दर्पण में

दूरका प्रतिविम्ब देखकर वाण से उसे वेध देने का ढंग बतलाया। जब उन्होंने इतना सीख लिया तब जीवन्धरकुमार ने पैरों से वाण चलाने का अभ्यास कराया। तत्पश्चात् सन्मुख आते हुए शत्रु के वाण को मार्ग में ही अपने वाण से काट देना, चलाये हुए वाण की पूंछ को दूसरा वाण चला कर छेद देने के प्रयोग समझाए।

अन्त में वाम (बांए) हाथ से वाण चलाना (सव्य-साचीपन) तथा बहुत वेग से वाण-वर्षा करना आदि धनुर्विद्या के अनेक रहस्यों का अभ्यास कराया।

अन्त में सैन्यसंचालन के उपयोगी ढंगों को बहुत अच्छ तरह समझाया। इसी प्रसंग (सिलसिले) में सेना की धनुषाकार, त्रिकाण व्यूह, चक्रव्यूह, शकटव्यूह आदि रचना के ढंग बतलाये। उन व्यूहों की रचना के साथ ही उन व्यूहों में भीतर घुसने और फिर उनमें से बाहर निकलने की कला भी सिखलाई।

शिक्षण समाप्त करने से पहले जीवन्धर कुमार ने राजकुमारों को द्वन्द्वयुद्ध के समय वाणों के अभाव में केवल धनुष के द्वारा लड़ना, धनुष टूट जाने पर केवल वाण के द्वारा युद्ध करना, अस्त्र-शस्त्र न रहने पर हाथ मे आई हुई चाहे जिस वस्तु के द्वारा लड़ने के ढंग समझाये।

इस तरह जीवन्धरकुमार को अस्त्र-शस्त्र चलाने तथा युद्ध करने के जो समस्त रहस्य मालूम थे, वे सब जीवन्धर ने उन राजपुत्रों को सिखला दिये। जितनी शिक्षा अन्य कोई शिक्षक अनेक वर्षों

में भी न सिखा पाता उतनी शिक्षा जीवन्धरकुमार ने बहुत थोड़े समय में सिखला दी। राजा दृढमित्र स्वयं इतनी शस्त्र-विद्या न जानता था। उसके पुत्र जब युद्ध-विद्या में पूर्ण निपुण हो गये तो जीवन्धरकुमार ने राजा दृढमित्र से प्रसन्नता के साथ कहा कि 'आपकी आज्ञानुसार मैं अपना कर्तव्य-पालन कर चुका।'

जीवन्धरकुमार की बात सुनकर राजा दृढमित्र का प्रबल हर्ष उसके नेत्रों में पानी के रूप में चमक उठा। उसने जीवन्धरकुमार को अपने हृदय से चिपटा लिया और कहा कि हां जीवन्धर ! तुमने अपना कर्तव्य-पालन किया, मेरे पुत्रों को सच्चा क्षत्रिय बना दिया, अतः मेरा राज्य अब और भी अधिक निष्कंटक रहेगा, अब मुझे अपने राज्य को रक्षा की अधिक चिन्ता न रहेगी। तुम्हारा यह महान् उपकार मुझे सदा स्मरण रहेगा, मेरे ये पुत्र तुम्हारे चिर-ऋणी रहेंगे, इनकी रणवीरता का श्रेय तुमको ही मिलेगा। परन्तु ...

इतना कहते ही दृढमित्र किसी दीर्घ चिन्ता में पड़ गया और उसका बोलना बन्द हो गया। जीवन्धरकुमार सहसा (यकायक) राजा दृढमित्र का चिन्तायुक्त मुख देखकर चकित रह गया।

जीवन्धरकुमार ने बड़ी उत्सुकता के पूछा कि राजन् ! आप हर्ष-वार्ता करते-करते किस चिन्ता में निमग्न हो गये ?

दृढमित्र ने बात टालते हुए अपने मुख पर आई हुई चिन्ता की रेखा अपने बनावटी हर्ष से मिटाते हुए कहा कि नहीं, कुछ नहीं, मैं यों ही चुप हो गया था।

बुद्धिमान् जीवन्धर से दृढमित्र अपने हृदय की चिन्ता कहां छिपा सकता था, जीवन्धर ने नम्र स्वर में उससे पूछा कि आप हृदय का भाव न छिपाइये, हमसे अवश्य कह दीजिये। संभव है मैं आपकी चिन्ता विलीन करने में भी सहायक हो सकूं।

दृढमित्र का चित्त खिल उठा, वे विकसित मुख से खुलकर जीवन्धरकुमार से बात करने लगे कि 'जीवन्धर! तुमने तो मेरे साथ इतना महान उपकार किया, परन्तु मैंने तुम्हारे लिये क्या किया ?' यह विचार मेरे हृदय में बैठ गया है, मेरी इस चिन्ता को तुम दूर नहीं कर सकते, इसको तो स्वयं मुझे ही किसी उपाय से दूर करना होगा। तुम मेरे लिये जितना भी और कुछ कार्य करोगे मेरी चिन्ता में उतनी ही और अधिक वृद्धि होगी। जीवन्धरकुमार ने उत्तर दिया मैं भी आपके पुत्र के समान हूं, मैंने यदि अपने भाइयों को कुछ सिखाया तो मैंने क्या कुछ विशेष कार्य किया, केवल अपने छोटे से कर्त्तव्य का ही तो पालन किया है।

दृढमित्र ने कहा कि ठीक है, इसी तरह मेरा भी तो कुछ कर्त्तव्य है, उसे पूरा किये बिना मुझे कब चैन मिल सकती है। ऋण (कर्ज) मनुष्य के लिए सबसे अधिक भार होता है, जो मनुष्य किसी का ऋण नहीं चुका पाते उन्हें कभी मानसिक शान्ति नहीं मिल सकती। कृतघ्न मनुष्य सबसे अधिक पापी होता है, मैं अपनी कृतज्ञता (अहसानमन्दी) का परिचय देना चाहता हूं, यही चिन्ता मुझे व्याकुल कर रही है।

इतना कहते-कहते दृढमित्र वहाँ से उठकर अन्त:पुर (रणवास) में गुणवती विचारशीला रानी के पास चला गया। जीवन्धर-कुमार को राजकुमारों ने आकर घेर लिया और वे उसके साथ मनोविनोद की बातें करने लगे।

राजा ने रानी से अपने मन की चिन्ता प्रकट की कि जीवन्धरकुमार ने हमारे समस्त पुत्रों को अशस्त्र-शस्त्र की शिक्षा में कुशल योद्धा बना दिया है, अब हम उसका यह भार कैसे उतारें ?

रानी ने कहा कि शिक्षकों को तो अच्छा पुरस्कार देकर ही प्रसन्न किया जाता है, वैसा ही आप जीवन्धर के लिये भी कीजिये।

बुद्धिमती रानी ने अपने पति का हृदय टटोलने के लिये इतनी बात और कह दी कि आपकी दृष्टि में यदि जीवन्धरने आपके साथ महान उपकार किया है तो आप भी उसको महान पुरस्कार दे डालिये। इसमें चिन्ता की क्या बात है, आप राजा हैं, पूर्ण समर्थ हैं।

राजा ने कुछ खीज के साथ कहा कि इतना तो मैं भी जानता हूं किन्तु एक तो जीवन्धर के लिये धन सम्पत्ति के पुरस्कार बहुत तुच्छ दीखते हैं, दूसरे जीवन्धरकुमार इस धन-सम्पत्ति का लोलुपी भी नहीं है।

रानी ने राजा का हृदय टटोल लिया, अब रानी बोली कि जब जीवन्धरकुमार ने अपने हृदय को खोलकर अपने हृदय का

धन आपके पुत्रों को उदारता के साथ दे डाला है तो आप भी अपने हृदय का धन जीवन्धरकुमार को दे डालिये।

राजा दृढमित्र अपनी जीवन-सहचरी के गम्भीर भाव को न समझ पाया, राजा ने कहा कि जीवन्धरकुमार के समान मेरे हृदय में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो पुरस्कार में उसे दे सकूं।

रानी ने जरा मुस्कराते हुए कहा कि आप यदि देना चाहें तो हृदय की वस्तु एक आपके पास भी है।

राजा ने बहुत व्यग्रता और उत्सुकता के साथ रानी से पूछा कि मुझे कुछ पता नहीं, तुम ही बताओ वह कौन सी चीज है?

रानी ने गम्भीरता-सहित मन्दस्मित मुस्कान के साथ उत्तर दिया कि 'राजकुमारी-कनकमाला।'

रानी की बात सुनकर राजा दृढमित्र को चिन्ता दूर होने का मार्ग दिखलाई दिया, अतः उसे हर्ष हुआ किन्तु एक नई गंभीर चिन्ता भी उसी के साथ उत्पन्न हुई। अपनी उस चिन्ता को प्रकट न करते हुए दृढमित्र ने रानी के विचार की प्रशन्सा की और कहा कि यह पुरस्कार ठीक रहेगा।

रानी ने राजा के विचार का समर्थन करते हुए कहा कि कनकमाला अब युवावस्था में पैर रख रही है, अब उसका पाणिग्रहण होना ही चाहिये और जीवन्धरकुमार जैसा सुन्दर युवक आपको ढूंढने पर भी कहीं न मिलेगा, अतः कनकमाला और जीवन्धरकुमार का दम्पति (पति-पत्नी) रूप में जोड़ा बहुत ही अच्छा रहेगा।

दृढमित्र ने उत्तर दिया "बहुत अच्छा"

राजा दृढमित्र इतना कहकर वहां से चले गये। जब वे अन्य कार्यों से निवृत्त हो गये तब उन्होंने एकान्त में जीवन्धर को बुलाकर बड़े प्रेम से उसकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा कि मैं तुम्हारे पिता जी से कुछ वार्तालाप करना चाहता हूं।

जीवन्धरकुमार ने ठंडी सांस खींचकर कहा कि वे पृथ्वी का राज्य छोड़कर स्वर्ग का दिव्य राज्य करने चले गये हैं, अतः आप उनसे बात चीत नहीं कर सकते। इससे अधिक परिचय मैं अपने पिता का और कुछ नहीं देना चाहता, किसी समय आपको स्वयं मालूम हो जायगा।

राजा दृढमित्र यह जानकर बहुत हर्षित हुआ कि जीवन्धरकुमार साधारण युवक नहीं बल्कि एक राजपुत्र है, जैसा कि उसकी मुख-आकृति से भी प्रगट होता था।

राजा ने जीवन्धरकुमार से कहा कि तुम मुझे अपने पिता के समान मानते हो, तब मेरा एक अनुरोध मानोगे या नहीं ?

जीवन्धरकुमार ने कहा कि निःसन्देह ! आप मुझे मृत्यु से युद्ध करने का भी आदेश देंगे तो मैं उसे भी सहर्ष स्वीकार करूंगा।

दृढमित्र ने प्रसन्न होकर कहा कि नहीं, तुम यह क्या बात कह गये। मैं तो तुम को आजन्म अपना पुत्र-समान ही बनाना चाहता हूं।

जीवन्धरकुमार ने कहा कि इसके लिये मुझसे पूछने की क्या आवश्यकता है ?

दृढमित्र ने कहा ठीक है, मैं तुमको अपनी पुत्री कनकमाला देना चाहता हूं, इसकी स्वीकारता देकर मुझे चिन्ता-मुक्त करो ।

जीवन्धरकुमार मुस्कराते हुए चुप हो गया, संकोच से उसने सिर झुका लिया और कुछ देर मौन रहकर, नीचे की ओर मुख किये हुये ही बोला कि मैं आपकी आज्ञा से बाहर नहीं रह सकता ।

जीवन्धर की स्वीकारता पाकर दृढमित्र को अपार हर्ष हुआ, उसने यह आनन्द-वार्ता अपनी पत्नी को जाकर कह दी । रानी को पहले से ही आशा थी कि जीवन्धरकुमार इस प्रस्ताव को अस्वीकार न करेगा, किन्तु पक्कावचन मिल जाने पर उसे भी बहुत हर्ष हुआ ।

पुत्री का सुयोग्य वर के साथ पाणि-ग्रहण होने की चिन्ता पिता की अपेक्षा माता को अधिक होती है ।

जीवन्धरकुमार के साथ अपने विवाह होने की बात जब कनकमाला को मालूम पड़ी तब उसको माता-पिता से भी अधिक हर्ष हुआ, क्योंकि जीवन्धरकुमार को वह अनेक वार अच्छी तरह से देख चुकी थी, जीवन्धर के बलवान सुन्दर शरीर और हँस-मुख चेहरे से प्रभावित थी किन्तु अब तक उसके हृदय में जीवन्धर की ओर कुछ आकर्षण न था, स्वप्न में भी उसके साथ कभी अनुराग न हुआ था । परन्तु उसके साथ अपने विवाह होने की बात सुनकर कनकमाला के हृदय में गाढ़ा अनुराग अपने आप

जागृत हो गया, अब वह जीवन्धरकुमार की सुन्दरता का सूक्ष्मता से विचार करने लगी तथा उसके साथ अपने भावी सुखमय जीवन के विविध विकल्प (मनसूबे) अपने हृदय में बनाने लगी। अब जीवन्धर को देखने में उसे लज्जा का अनुभव होने लगा, यदि कभी जीवन्धर सामने आ जाता तो लज्जा से शिर झुका कर एक ओर हट जाती, परन्तु उसका मन जीवन्धर को देखने के लिये उत्सुक रहता। उसकी सखियां भी अब उसको जीवन्धर की बात सुना सुना कर उसे छेड़ने लगीं, इस छेड़खानी से कनकमाला कभी कभी खीज उठती किन्तु वह खीज उसकी मीठी होती थी, जिससे उसके हृदय में भी कुछ गुद्‌गुदी होती थी और उसकी सहेलियां को मनोरंजन होता था।

उधर जीवन्धर कुमार के हृदय में भी कनकमाला के लिये गहरा प्रेम अंकुरित हुआ। जीवन्धर अब कनकमाला का अङ्ग-सौन्दर्य अपने मन में चिन्तवन करने लगा कि 'कनक-माला सचमुच कनक-माला (सोने की माला) है, उसका रंग कमल के समान लाल है, उसके नेत्र हिरनी के समान बड़े और चञ्चल हैं, उसकी नाक तोते को चोंच की तरह है, होठ पतले बिम्बा फल जैसे हैं, उसके दान्त अनार में गुंथे दानों के समान है, उसके मुख पर कान्ति चमचमाती है, प्रसन्नता सदा चेहरे पर नाचा करती है, उसकी वाणी कोयल से भी अधिक मीठी है, हाथी की तरह झूम कर और हंसके समान अटकती हुई उसकी चाल है। नव यौवन ने उसकी सुन्दरता को और भी अधिक आकर्षक बना दिया है। आदि।

दृढमित्र के सभी पुत्र अपने विद्यागुरु जीवन्धर से वैसे ही बहुत प्रेम करते थे किन्तु उस प्रेम में गुरु-भक्ति की मात्रा थी, अब उनके हृदय में जीवन्धर के लिये बहनोई होने का स्नेह भी जाग उठा इस नवीन प्रेम में कुछ अपनापन भी झलकने लगा।

स्त्री पुरुषों में जब यौवन दशा प्रगट होती है तब उनके मन में परस्पर अनुराग स्वयं उत्पन्न होता है, इस कारण स्त्री को अपने लिये सुयोग्य सहचर पुरुष की और युवा पुरुष को सहचरी सुयोग्य स्त्री की अत्यन्त आवश्यकता हुआ करती है। इसी कारण यौवन के आने के समय कन्या का सुयोग्य वर के साथ विवाह कर देना मनुष्य-जीवन का मुख्य कार्य है। विवाह -पद्धति के कारण वर-कन्या का मन एक दूसरे के साथ जीवन भर उलझा रहता है, अतः वे सन्तोष, सहानुभूति तथा सदाचार से अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

जीवन्धरकुमार और कनकमाला के युगल (जोड़े) की सब ने प्रशंसा की। राजा दृढमित्र ने ज्योतिषी विद्वान् से कनकमाला के विवाह का शुभ मुहूर्त सुधवाया और विवाह की बहुत धूमधाम से तयारीं प्रारम्भ करदी।

सुन्दर मंगलीक सुसज्जित वस्तुओं से विवाह-मण्डप बनवाया गया, जीवन्धरकुमार और कनकमाला के लिये सुन्दर बहु-मूल्य वस्त्र-भूषण तयार कराये गये। दृढमित्र ने अपने समस्त सम्बन्धियों तथा मित्रों को एवं पड़ोसी राजाओं को विवाह के समय पर आने के लिये निमन्त्रण दिया। हेमाभा नगरी की

जनता भी राजपुत्री के विवाह का हर्ष प्रगट करने के लिये अपने घर, दुकान, गली आदि को अनेक तरह से सजाने। लगी यथा-समय बड़ी भारी सजधज के साथ जीवन्धरकुमार असंख्य मंग-लीक बाजों की ध्वनि के बीच में विवाह-मंडप में आया। जीवन्धर एक तो स्वयं अत्यन्त सुन्दर था, फिर यौवन ने उसकी सुन्दरता में और भी वृद्धि कर दी थी और अब विवाह के हर्ष ने तथा वस्त्र-भूषणों ने उसके सौन्दर्य को और भी अनेक-गुणा बढ़ा दिया।

कनकमाला की सुन्दरता की भी यही बात थी, उसकी सारी सखियां रंग-विरंगे वस्त्रों और आभूषणों से सजी हुई कनकमाला को अपने साथ लेकर विवाह मंडप में आई। गृहस्थाचार्य ने आकर यथासमय विवाह-कार्य प्रारम्भ किया। देव, शास्त्र, गुरु का पूजन जीवन्धरकुमार ने किया, फिर गृहस्थाचार्य ने सप्तपदी का उच्चा-रण वर कन्या से कराकर दोनों (जीवन्धर और कनकमाला) का गठबन्धन किया और वेदी की सात परिक्रमा कराई। तदनन्तर कनकमाला का हाथ जीवन्धरकुमार के हाथ में ग्रहण करा कर विवाह विधि समाप्त करते हुये वर-कन्या को गृहस्थाश्रम की रीति समझाई और जीवन्धरकुमार को कहा कि—

'कनकमाला अब तक अपने पिता की रक्षा में रही, अब वह तुम्हारी रक्षा में आ गई है, तुम इसके शरीर और मन के पति (स्वामी) हो और कनकमाला तुम्हारे हृदय और शरीर की पत्नी (स्वामिनी-मालकिन) है, तुम इसके साथ स्वप्न में भी विश्वास-घात न करना, ब्रह्मचर्य अणुव्रत स्व-स्त्री सन्तोष के रूप में अखंड

पालन करना। तुम इसके जीवन-सहचर (जिन्दगी के साथी) हो और यह तुम्हारी जीवन-सहचरी है। दोनों दूध और खांड की तरह परस्पर मीठे मेल के साथ रहना। तुम दोनों का युगल सदा स्वस्थ और प्रसन्न बना रहे।'

तदनन्तर राजा दृढमित्र ने वर-कन्या को आशीर्वाद दिया और जीवन्धरकुमार को अपने राज्य का कुछ भाग तथा प्रचुर मात्रा में रत्न-सुवर्ण, हाथी, घोड़े, महल प्रदान किये।

इसके बाद नलिनी रानी ने घी का दीपक जलाकर वर-कन्या की आरती उतारी और दोनों को अनेक वस्त्र आभूषण भेंट किये।

इसके पीछे अन्य सभी उपस्थित स्त्री पुरुषों ने वर कन्या की मङ्गल-कामना करतेहुये वर-वधू को अनेक तरहके उपहार भेंट किये।

विवाह हो जाने पर हेमाभा नगरी में कई दिनों तक बड़े हर्ष-उत्सव होते रहे। उधर जीवन्धर कनकमाला को पाकर बहुत हर्षित हुए और कनकमाला जीवन्धर को पाकर बहुत प्रसन्न हुई, दोनों अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं से एक दूसरे को शारीरिक तथा मानसिक आनन्द प्रदान करने लगे।

आठवां प्रसंग

जीवन्धरकुमार और कनकमाला बड़े आमोद-प्रमोद से रहने लगे। कभी दोनों स्वच्छ सरोवर में जलक्रीड़ा करते थे, कभी उद्यान में विविध लीलाओं से मनोरञ्जन करते थे, कभी झूले पर साथ-साथ झूलकर आनन्द अनुभव करते थे, कभी नदी में जल विहार करते थे, तो कभी हरे-भरे वन में आंखमिचौनी, लुक-छिप आदि करके अनेक ढंग से वन-विहार करते थे और कभी पर्वतों पर जाकर मनोविनोद किया करते थे। सोना, जागना, भोजन पान, घूमना फिरना, देव-दर्शन पूजन आदि सभी कार्य दोनों साथ ही साथ करते, क्षण भर भी एक-दूसरे से पृथक् न होते।

राजा दृढमित्र का असाधारण प्रेम और रानी नलिनी का अनन्य स्नेह जीवन्धरकुमार तथा कनकमाला के आनन्दसागर में अनेक तरंगें उठाया करता था, जीवन्धर के साले जीवन्धरकुमार के विनोद में और भी अधिक वृद्धि किया करते थे। कनकमाला को अपने स्वामी का थोड़ी देर का वियोग भी असह्य हो जाता था। राजा दृढमित्र और उनकी रानी अपनी पुत्री और जमाई का गाढा स्नेह और उनकी सुख-लीला देखकर हर्ष से फूले नहीं समाते थे।

इस प्रकार जीवन्धरकुमार का समय कनकमाला के साथ

रमण करते हुए अपार आनन्द से चला जा रहा था।

एक दिन कनकमाला की धाय कनकमाला के पास आकर कुछक्रोध में आकर बोली कि कल तूने जीवन्धरकुमार को अप्रसन्न क्यों कर दिया जिससे कि रात को वे यहां न सोकर आयुधशाला में सोये।

कनकमाला मुस्कराते हुए बोली कि रात को उन्होंने दो शरीर बना लिये होंगे जिससे वे मेरे पास भी रात भर रहे और आयुधशाला में भी सोये। यह बात सुनकर धाय को आश्चर्य हुआ उसने कहा कि प्रातःकाल मैंने उन्हें आयुधशाला में सोते हुए देखा था।

कनकमाला ने उसका उपहास करते हुए कहा कि तूने स्वप्न देखा होगा।

इतने में एक अन्य स्त्री हंसती हुई जीवन्धरकुमार के पास आई, जीवन्धरकुमार ने उससे पूछा कि क्या बात है?

उस स्त्री ने कहा कि एक हूबहू आप ही जैसा युवक मैंने अभी आयुध-शाला में देखा है, मुझे तो भ्रम हो गया था, मैंने तो यही समझा था कि वहां आप ही हैं किन्तु उसके वस्त्रों को देखकर मुझे सन्देह हुआ, यही वृत्तान्त कहने मैं आपके पास आई हूँ।

कनकमाला ने भी हंसते हुए अपनी धाकी कही हुई बात सुना दी- जीवन्धरकुमार विस्मय में पड़ गये कि यह बात क्या है? फिर अचानक उन्हें अपने छोटे भाई नन्दाढ्य का ध्यान हो आया, कि कहीं नन्दाढ्य तो यहां नहीं आगया? नन्दाढ्य के

सिवाय अन्य कोई व्यक्ति मेरे रूप से मिलता जुलता नहीं है।

[जीवन्धरकुमार जब शिशु थे उसी समय सुनन्दा के गर्भ में नन्दाढ्य आया था, सुनन्दा जीवन्धरकुमार को अपना पुत्र समझ कर पाल रही थी, रात दिन जीवन्धर का सुन्दर मुख उसके नेत्रों के सामने रहता था, इस कारण गर्भस्थ नन्दाढ्य का मुख रूप-रंग जीवन्धर के ही समान हो गया।]

जीवन्धरकुमार उसी समय आयुध-शाला में पहुँचे तो वहां जाकर देखते हैं कि वहां सचमुच नन्दाढ्य ही बैठा है। नन्दा-ढ्य जीवन्धरकुमार को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसके चरणों में गिर पड़ा। जीवन्धर ने उसे उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। दोनों के नेत्रों से हर्ष के आंसू टप-टप गिरने लगे।

जीवन्धर को अपने धर्मपिता, धर्ममाता, अपनी प्राणप्रिया गन्धर्वदत्ता, गुणमाला का और पद्मास्य आदि अपने मित्रों का तथा राजपुरी नगरी का स्मरण हो आया, उसका चित्त एकदम व्याकुल हो उठा।

जीवन्धरकुमार नन्दाढ्य को अपने महल में ले गया और वहां पर उसने क्रम से अपने माता पिता, पत्नियों की तथा मित्रों की कुशलक्षेम पूछी, फिर उसने यहां पर आने का कारण पूछा। तथा साथ ही यह बात भी पूछ डाली कि यहां तक कैसे आया? और यहां आकर आयुधशाला में किस तरह पहुँच गया, वहीं पर रात को क्यों सोया?

जीवन्धरकुमार के छोटे भाई का आगमन सुनकर राजा दृढमित्र, उनकी रानी और जीवन्धर के सभी साले तथा अन्य कई मित्र भी वहां पर आ गये। सभी ने नन्दाढ्य की रूप-आकृति जीवन्धरकुमार स सवथा मिलती जुलती पाई, अतएव नन्दाढ्य को देखकर सबको बड़ा कौतूहल हुआ। जीवन्धरकुमार और नन्दाढ्य को चारों ओर से घेर कर सब बैठ गये।

नन्दाढ्य कहने लगा कि काष्ठाङ्गार की आज्ञा से उसके साले मथन ने जब आपको शूली पर चढ़ा दिया था, तो हम लोग उससे आगे का भयानक दृश्य (शूली की नोंक से आपके शरीर का विंध जाना तथा असह्य वेदना के साथ आपकी मृत्यु का नज़ारा) न देख सकते थे। इसलिये वहां से रोते-विलखते घर लौट आये और घर पर बहुत दिनों तक दुख में तथा निराशा में पड़े रहे। आपका कोई भी मित्र बहुत दिनों तक घर से बाहर न निकला। सबका खेलना, कूदना, क्रीड़ा, हंसना, घूमना, फिरना अपने आप वन्द हो गया, भोजन भी कभी किया, कभी न किया, जैसा मिला वैसा ही खा लिया।

सबके सामने अन्धकार था, भविष्य के लिये कुछ न सूझता था। हम सब की दशा न जीवित-जैसी थी और और न मृतक-जैसी ही। राजपुरी के मकान, सरोवर, बाग, वन, गलियां, बाजार सब सूने दिखाई देते थे, रो-रो कर नेत्र थक चुकेथे उनमें आंसू न रहे थे और मुख की कान्ति उड़ चुकी थी।

किन्तु उन दिनों में भी पिता जी को न कोई चिन्ता थी और

न कोई शोक । उनको मुनि महाराज के वचन पर अटल विश्वास था कि 'जीवन्धर को कोई नहीं मार सकता।' परन्तु उनका विश्वास हमारे चित्त पर नहीं उतरता था क्योंकि हम आपको शूली पर चढ़ता हुआ देख आये थे।

बहुत दिनों पीछे मैं एक दिन बड़ी भावी-गन्धर्वदत्ता के कमरे में अचानक चला गया तो मैंने देखाकि वह खूब शृंगार करके सजी-धजी निश्चिन्त बैठी है। उसे देखकर मुझको हृदय में बहुत दुख हुआ, कि देखो भैया तो मृत्यु का ग्रास बन चुके हैं और यह विधवा होकर भी शृंगार किया करती है। मैंने रोष में आकर पूछा—

भावी जी ! भैया तो हम सब को दुःख-सागर में छोड़कर सदा के लिये चले गये, अब फिर कदापि हम लोग उनका मुखचन्द्र न देख सकेंगे और तुम उनके वियोग में भी इस तरह सज-धज कर शृंगार से रहती हो, क्या कुलीन महिला को यह बात शोभा देती है ?

गन्धर्वदत्ता कुछ मुस्कराती हुई बहुत मीठे स्वर में बोली 'मेरे भोले देवर ! मुख से ऐसे अशुभ शब्द न निकालो, जिनके लिये तुम शोकाकुल हो रहे हो वे तुम्हारे बड़े भाई कुशल-क्षेम के साथ बहुत आनन्द में हैं, उन्हें रंचमात्र भी कष्ट तथा शोक नहीं, उन्हें जरा भी मानसिक दुख नहीं, न शारीरिक क्लेश है। वे तो यहां से भी अधिक सुख भोग रहे हैं। तुम उनको याद करके रो रहे हो किन्तु वे तो अपने ऐश-आराम में इतने निमग्न हैं कि हमारी-तुम्हारी कभी याद भी नहीं करते। वे जहां-जहां

जा पहुंचते हैं, वहीं-वहीं पर उनका बहुत राज-सम्मान होता है। वे अब तक एक सेठ की तथा दो राजाओं की सुन्दर कन्याओं से विवाह भी कर चुके हैं, नई वधू मिल जाने पर पुरानी की याद भूल जाती है न ?

मैंने कुछ प्रसन्न और कुछ आश्चर्य-चकित होकर कहा 'भावी जी ! क्या कह रही हो ? हमने भैया को शूली चढ़ते देखा है, तुम क्या-क्या कहे जा रही हो, तुमने कोई स्वप्न तो नहीं देखा ? या कहीं तुम्हें उनके वियोग में मतिविभ्रम तो नहीं हो गया जो ऊट-पटांग बातें कहे जा रही हो ! मुझसे सत्य-सत्य बातें कहो।

भावी ने हंसते हुए कहा कि नहीं, देवर जी ! नहीं, मैंने तुमसे स्वप्न की बात नहीं कही, स्वप्न में तो प्रतिदिन वे मुझे मिलते ही हैं किन्तु मैं अपनी विशिष्ट विद्या द्वारा भी प्रतिदिन उनके कुशल समाचार जान लेती हूं, तुमने उनको शूली चढ़ते तो देखा था, किन्तु उसके पीछे क्या उनका मृतक-शरीर भी देखा ? किसी ने भी देखा ? स्वयं शूली चढ़ाने वालों को भी क्या उनकी मृत-देह मिली ? समस्त राजपुरी में पूछ डालो, शूली चढ़ाने वाले चांडाल को जाकर पूछ लो, तुम्हारा सन्देह दूर हो जावेगा। तब तुम जान सकोगे कि मति-विभ्रम (वहम) किसको है।

मैंने बड़े हर्ष और उत्सुकता से पूछा कि मेरी प्यारी मीठी भावी ! तुम्हारे वचन सत्य प्रमाणित हों ! मैं तो अब सब कुछ खोज करूंगा ही, किन्तु तुम भी तो शूली से आगे का हाल बतलाओ। मेरे हृदय में तुमने बड़ी उथल-पुथल मचा दी है। इतने

दिन तक हमसे सब बातें छिपाईं, हमको रुलाती रहीं, एक बार भी भैया जी मिल जावें, तो तुम्हारी ये सब बातें उनसे कहूँगा। अच्छा आगे क्या हुआ ?

तुमने कभी मेरी भी खबर ली ? जो मैं तुमसे बात करती, अपने भाई के न रहने पर तुमने भी मुझे पूछना छोड़ दिया क्या यह बात भी अपने भाई जी से कहोगे ?

मैंने हाथ जोड़ कर कहा भावी जी ! क्षमा करो, मुझ से बड़ा अपराध हुआ, फिर ऐसा कभी न होगा, भैया के न रहने से मेरी बुद्धि क्रिया-शून्य हो गई, मुझे अपने शरीर का भी ज्ञान नहीं रहा। अच्छा, अब आगे की घटना सुनाओ।

भावी ने बड़े स्नेह से मेरे शिर पर हाथ फेरते हुए कहा— अच्छा, अब आगे की घटना सुनो।

तो हां, फिर शूली के ऊपर पहुँचते ही ऐसा चमत्कार हुआ कि देखने वाले तथा शूली चढ़ाने वाले सब के सब चकित रह गये, किसी को भी भेद मालूम नहीं हुआ कि शूली के ऊपर से ऊपर ही तुम्हारे भाई कहां उड़ गये ? सब ने यों ही कह दिया-कि वे मर गये। वास्तव में उनका परममित्र एक देव उनको शूली पर से चुपचाप रहस्यमय ढंग से उठा ले गया। तुम्हारे भाई का (मेरे मुख पर प्यार की हल्की सी चप्पत लगाते हुए कहा) बाल भी बांका न हुआ। वे इस समय हेमाभा नगरी में राजा के जमाई बनकर आनन्द कर रहे हैं। यदि तुम उनसे मिलना चाहोगे तो मैं अपने विद्या विमान से उनके पास पहुंचा दूंगी।

इतना सुनते ही मैं हर्ष से उन्मत्त होकर उछल पड़ा और वहां से उठकर भागा, पहले माता जी तथा पिता जी को तुम्हारे कुशल समाचार कहे, उन्होंने कहा कि हमको पहले से ही अटल विश्वास है। फिर मैं भागा-भागा पद्मास्य आदि तुम्हारे मित्रों के पास पहुंचा, उनसे सब बातें कहीं, वे सब प्रसन्न-मुख होकर बोले, तुम्हारी भावी की बातों पर विश्वास नहीं होता किन्तु तुम्हारे पिता जो भी तो जीवन्धरकुमार की मृत्यु नहीं मानते, तब कुछ न कुछ रहस्य की बात अवश्य होनी चाहिये। चलो, चांडाल से चल कर मालूम करें।

हम सब मित्र बड़ी उत्सुकता और उत्साह के साथ चांडाल के घर पहुंचे। और उसको अच्छा प्रलोभन देकर उससे तुम्हारी शूली के सत्य समाचार बताने को कहा।

चांडाल बोला कि मैं तुमको क्या बताऊं मैंने सैकड़ों मनुष्यों को शूली पर चढ़ाया है परन्तु जीवन्धरकुमार की शूली जैसा चमत्कार मैंने आज तक नहीं देखा, मैंने जैसे ही उनको शूली पर ऊपर चढ़ाया कि फिर उनका पता भी न चला कि वे कहां उड़ गये ? पता नहीं हमारी आंखों पर परदा पड़ गया या आकाश उन्हें निगल गया ?

पद्मास्य ने चांडाल से कहा कि भाई ! सत्य कह रहे हो न ? कुछ इसमें मिथ्या-बात की मिलावट तो नहीं ?

चांडाल तमक कर बोला कि मैं लोगों को प्राणदंड देकर ही पर्याप्त (काफी) पाप कर लेता हूँ, फिर मैं असत्य बोलकर

अपना पापभार और क्यों बढाऊं ?

हम सबने उसके कहने पर पूर्ण विश्वास किया और सबने उसको अच्छा पारितोषक दिया, उसने प्रसन्न होकर हम सबको आशीर्वाद दिया।

चांडाल की बात ने भावी गन्धर्वदत्ता की बात पुष्ट कर दी, अतः हम सबने भावी की समस्त बातों को ठीक प्रामाणिक समझा।

तब पद्मास्य आदि सब मित्रों ने एकत्र हो कर परामर्श किया कि अब क्या करना चाहिये ? सब ने एकमत से यही निश्चय किया कि जीवन्धरकुमार जहां पर भी हों, वहां पहुंच कर उनसे मिलना चाहिये और उनको फिर राजपुरी लाना चाहिये।

मैंने भावी से फिर दुबारा पूछ कर सबको कह दिया कि भैया इस समय हेमाभा नगरी में वहां के राजा के जमाई बन कर रह रहे हैं।

तब पद्मास्य आदि आपके सभी मित्र घोड़े बेचने-वालों के साथ उनके अग्रेसर (मुखिया) बनकर आपसे मिलने के लिये चल दिये हैं, संभव है कुछ दिनों में सब यहां आ पहुंचेंगे।

मैं तो कल गन्धर्वदत्ता के पास गया था और मैंने बड़ी नम्रता के साथ उससे निवेदन किया कि भावी ! यदि तुम सच-मुच विद्या का चमत्कार अपने पास रखती हो तो तुम भैया से क्यों नहीं मिल आतीं ?

भावी ने ठंडी सांस लेते हुए कहा कि प्रिय देवर ! अपने

स्वामी की आज्ञा पाये बिना मैं किस तरह घर से बाहर पैर रक्खूं। कुलीन स्त्रियां पति की अनुज्ञा प्राप्त किये बिना घर से बाहर नहीं जा सकतीं, इस कारण इच्छा रहते हुए भी मैं विवश हूं। यदि तुम जाना चाहो तो तुमको रात ही रात में उनके पास पहुंचा सकती हूं।

मैं तो यही इच्छा लेकर भावी के पास गया था अपना मनोरथ सिद्ध होते देखकर मैंने कहा 'तो अच्छा मुझको ही उनके पास पहुंचा दो।'

गन्धर्वदत्ता ने कहा कि अच्छा तयार होकर आ जाओ, मैं तयार होने चला गया। छोटी भावी (गुणमाला) भी वहीं बैठी थी, उसने अवसर देख कर झट-पट आप के लिये बड़ी भावी की सम्मति लेकर एक पत्र लिख डाला।

पत्र निकाल कर नन्दाढ्य ने जीवन्धरकुमार के हाथों में दे दिया।

जब तयार होकर मैं आ गया, तब भावी ने कहा कि यहां सो जाओ, मैं उस की आज्ञानुसार वहीं पर सो गया। इस के पश्चात् भावी गन्धर्वदत्ता ने क्या कुछ किया, कौन सा विमान बनाया, इस का मुझे कुछ भी पता नहीं, मैं तो आज सवेरे जब जगा हूं, तब मैंने अपने आप को यहां पर पाया है।

तदनन्तर जीवन्धरकुमार ने गुणमाला का पत्र पढ़ा, पत्र में गुणमाला ने अपने हृदय की व्यथा बहुत करुणा-जनक शब्दों में लिखी थी, साथ ही गन्धर्वदत्ता के प्रतीक्षातुर चित्त की छाया भी पत्र में अंकित थी।

जीवन्धरकुमार का हृदय नन्दाढ्य की बातें सुन कर तथा गुणमाला का पत्र पढ़ कर भर आया, उस के नेत्रों में आंसू छल-छला आये, उस के नेत्रों के सामने राजपुरी का एक-एक कण नाचने लगा। उस का मन बहुत व्यथित हुआ जब कि उसने विचार किया कि "मैं बहुत कठोर-हृदय हूं अपनी ममतामयी माता तथा पालक-पोषक पिता को भूल गया, प्रेम की निर्मल सरोवरी गुणमाला और स्नेह की निर्झरिणी गन्धर्वदत्ता का मैंने स्वप्न में भी स्मरण नहीं किया, अपने अभिन्नहृदय मित्र-वर्ग की कभी सुध भी न ली। वे सब लोग मुझ से मिलने के लिये व्याकुल हो रहे हैं और मैं यहां भोगों में मग्न हूं, गन्धर्व-दत्ता को देखो, जब कि सब लोगों ने मुझे मरा-हुआ समझ लिया तब भी विद्या की सरिता गन्धर्वदत्ता ने मेरा ठीक पता निकाल ही लिया और प्रतिदिन मेरी कुशलक्षेम मालूम करती रहती है, प्रतिदिन मेरे स्वप्न देखा करती है, यदि वह न होती तो मेरे मित्रों को मेरा पता भी न चलता, मित्रों को ज्यों ही मेरा पता चला वे मुझसे मिलने के लिये चल पड़े, प्यारा भाई नन्दाढ्य उनसे भी पहले आ गया मेरे निर्दय हृदय को शतशः धिक्कार है।"

उधर राजा दृढमित्र को मालूम हो गया कि जीवन्धर वास्तव में असाधारण व्यक्ति है, विद्याधरी भी इसकी पत्नी है, इसका पिता धनकुबेर है, इसका मित्र-परिकर भी इसके साथ सच्चा प्रेम रखता है।

सब लोगों ने जीवन्धर की विचारधारा बदलने के लिये उससे कहा कि नन्दाढ्य को दैनिक क्रिया (शौच, नहाना-धोना आदि) करने दो, तुम भी प्रातःकाल के कामों से निपट लो ।

राजा दृढमित्र ने दोनों भाइयों को अपने यहां भोजन का निमन्त्रण दिया । जीवन्धरकुमार और नन्दाढ्य दैनिक क्रिया से निवृत्त होकर जिनालय में देव-दर्शन करके राजा दृढमित्र की भोजनशाला में भोजन करने गये । राजा रानी ने दोनों भाइयों को बहुत प्रेम और सम्मान के साथ स्वादिष्ट पौष्टिक, विविध रसों से सरस भोजन कराया । तदनन्तर राजा रानीने स्वयं भोजन किया ।

तत्पश्चात् राजा दृढमित्र तथा उनकी रानी नन्दाढ्य से राजपुरी के अन्य बहुत से समाचार पूछने लगे, नन्दाढ्य सब बातों का उत्तर देता रहा ।

इसी समय नगर के बहुत से ग्वालिये राजा के आंगन में एकत्र हुए और उन्होंने राजा के पास अपनी दुःख-भरी प्रार्थना भेजी कि आज वन में बहुत से डाकू आ गये हैं, उन्होंने हमारा समस्त पशुधन हाथ से बलात् (जबरदस्ती) छीन लिया है और हमको मार-पीट कर भगा दिया है । ये गाय भैंस आदि पशु ही हमारी जीविका के आधार हैं, यदि हमारे ये पशु हमसे छिन गये तो हमारा जीवन-निर्वाह कठिन हो जायगा । कृपा करके उन डाकुओं के पंजे से हमारा पशु-धन छुड़वा दीजिये, हमारी शरण आप ही हैं ।

ग्वालियों की पुकार सुनकर राजा दृढमित्र को बहुत आश्चर्य तथा क्षोभ हुआ कि अभी तक मेरे राज्य में कभी कहीं डाके का नाम भी नहीं सुना गया, ऐसे कौन से साहसी डाकू यहां आ गये जो दिन-दहाड़े लूट-पाट करने लगे।

डाकुओं से लड़ कर पशु छुड़ाने के लिये ज्यों ही राजा सेना भेजने का विचार कर रहा था, कि जीवन्धरकुमार अकेला ही उन डाकुओं से निपटने के लिये तयार हो गया। राजा रानी ने उसको अकेले जाने से बहुत रोका किन्तु वह न रुका और धनुष बाण आदि अस्त्र-शस्त्रों से तत्काल सुसज्जित होकर वन की ओर चल पड़ा।

निर्बल मनुष्य ही अपने शत्रु के संख्याबल को देखा करते है, शूरवीरों को अपने पराक्रम पर पूर्ण विश्वास होता है और अपने बल-विक्रम के सामने अपने शत्रु की संख्या से वे रंचमात्र भी नहीं दहलाते, अपने शत्रु के बल की परीक्षा वे अपने अस्त्र-शस्त्रों द्वारा युद्ध क्षेत्र में किया करते हैं।

जीवन्धरकुमार शीघ्र ही ग्वालियों के पशु लूटने वाले लुटेरों के सामने जा पहुँचा। लुटेरों ने दूर से ही देखकर जीवन्धरकुमार की चाल-ढाल से पहचान लिया कि यह जीवन्धरकुमार ही है। तब उनको बहुत प्रसन्नता हुई, किन्तु उन्होंने यह निर्णय किया कि जीवन्धरकुमार को कुछ देर छकाना चाहिये। यह विचार कर उन्होंने अपना कुछ भेष बदलकर कुछ अपना स्वर बदल लिया और आपस में खूब उछलने-कूदने खेलने लगे। जीवन्धरकुमार

जब कुछ निकट पहुंचा तब उनमें से एक डाकू ने जरा ऊंचे स्वर से अपने मुखिया से कहा कि—

'इस आने वाले नवयुवक को भी अपने दल में सम्मिलित कर लीजिये, वह भी अच्छा काम आवेगा।'

मुखिया ने उत्तर दिया हमारे पास ही वह आ रहा है, आने दो, इसको भी मिला लेंगे।

दोनों की बातें जीवन्धरकुमार ने सुन लीं, वह कुछ न बोला, जब वह लुटेरों के और निकट पहुँचा तो मुखिया ने पुकार कर कहा कि—अय नवयुवक! तू भी हमारे दल में मिलना चाहता है? आ जा, तुझे भी लूटका भाग मिलेगा।

जीवन्धरकुमार ने तमक कर कहा कि, तयार हो जाओ मैं तुमसे सारे पशु छीनने आया हूँ।

मुखिया हंसकर बोला अच्छा, तू हम सबका सरदार बनना चाहता है; अच्छा तो ऐसा ही सही, आ तो सही।

जीवन्धरकुमार जरा क्रुध हो कर बोला बक-बक मत करो या तो सारे पशु लौटादो, नहीं तो अपने प्राण बचाने के लिये तयार हो जाओ।

मुखिया बोला, अच्छा तुमको इस धनुष बाण का अभिमान है, तुमने क्या हमको भी राजपुरी के लुटेरे भील समझ लिया है?

जीवन्धरकुमार को राजपुरी में भीलों से ग्वालियों के पशु छुड़ाने की घटना स्मरण हो आई। उसने क्षणभर सोचा कि इन

लुटेरों को वह पुरानी घटना कैसे मालूम हुई ? और मुझे इन्होंने कैसे पहचान लिया ? जीवन्धर कुछ सकपका गया।

मुखिया मुस्कराता हुआ बोला, दो राजाओं और एक सेठ की कन्यायें और भारी धन-सम्पत्ति लेकर भी तुम्हें सन्तोष नहीं हुआ। अब तुम हम से ये पशु और लेने आ गये हो। चलाओ वाण, हम भी तुम्हारी वीरता देखें।

जीवन्धरकुमार चकित हुआ कि ये लुटेरे मेरी निजी बातें कैसे जानते हैं ? सकपकता हुआ जैसे ही जीवन्धर ने वाण तूरीण में से निकाला कि —

लुटेरों का मुखिया खिलखिला कर हंस पड़ा, उसने अपना बनावटी वेष बदल डाला, और बोला अच्छा मित्र तुम वाण ही पहले चला लो, पशु तुम को पीछे मिलेंगे।

जीवन्धरकुमार देखकर चकित रह गया कि उनका बचपन का मित्र पद्मास्य उसके सामने खड़ा है, तथा उसके अन्य मित्र तालियां दे देकर अट्टहास कर रहे हैं। जीवन्धरकुमार ने हंसकर कहा कि भाई ! तुम तो मेरे मन पर डाका डालने वाले भयानक पुराने डाकू निकल पड़े, दूसरों की सम्पत्ति लूटने का काम कब से प्रारम्भ कर दिया है ?

पद्मास्य बोला कि बड़े डाकू राजाओं, सेठों की अनुपम सम्पत्ति को जब लूटने लगे, तब हमने भी ऐसी छोटी लूट यहां आकर प्रारम्भ की, कि सम्भव है इसी ढंग से हमारे दल का सरदार हमको मिल जावे।

जीवन्धर ने जोर से हंसते हुये उत्तर दिया, ठीक रहे, तुमने मुझे अपने दल में मिला ही लिया, मैं अन्त में धनुर्धारी होकर भी हार ही गया।

यह कहकर धनुष-बाण भूमि पर रखकर जीवन्धर ने पद्मास्य को अपनी कठोर भुजाओं में जोर से कस कर हृदय से चिपटा लिया। सब के नेत्रों से आनन्द के आंसू निकल पड़े, सभी मित्रों ने क्रम से जीवन्धर का आलिङ्गन किया।

जीवन्धरकुमार के पीछे-पीछे आने वाले ग्वालिये यह दृश्य देखकर चकित (हैरान) हो गये। जीवन्धरकुमार जब सबसे मिल लिया, तब बड़े प्रेम से बोला कि मित्रो! गरीबों की ऐसी तुच्छ सम्पत्ति लूटने से क्या कुछ बनेगा? राजपुरी के बड़े लुटेरे (काष्ठांगार) को लूटेंगे. इन बेचारों का माल लौटा दो।

पद्मास्य ने मुस्करा कर कहा 'जैसी सरदार की आज्ञा' यह लूट आपकी भेंट है, चाहे रक्खो, चाहे लौटा दो।

जीवन्धरकुमार ने ग्वालियों को अपने पशु ले जाने का संकेत किया और कहा कि अपने पशु बेखटके चराओ, अब कोई लुटेरा तुम्हें न सतावेगा।

ग्वालियां ने अपने पशु सम्भाले और जीवन्धरकुमार ने अपने मित्रों के साथ अपना मार्ग सम्भाला।

जीवन्धर हर्ष-विनोद के साथ वार्तालाप करता हुआ राजा दृढमित्र के पास पहुंचा और उनसे हंसते हुए कहा कि महाराज! लुटेरे सामने खड़े हैं।

जीवन्धर के तरुण योद्धा मित्रों को देखकर राजा दृढमित्र को और अधिक हर्ष हुआ, उसको विश्वास हो गया कि जीवन्धर-कुमार जैसा स्वयं पराक्रमी वीर पुरुष, है उसी तरह उसका मित्र-मंडल भी अच्छा शूरवीर है, इस कारण जीवन्धर की शक्ति असाधारण है।

राजा-रानी और उनके पुत्रों ने पद्मास्य आदि का अच्छा सन्मान किया, वे सब जीवन्धर के महल में ठहरे। सब कार्यों से निश्चिन्त होकर जीवन्धरकुमार अपने मित्रों के साथ एकान्त में बैठा और उनसे राजपुरी का तथा मार्ग का सब समाचार पूछा।

पद्मास्य ने कहा कि राजपुरी में तुम्हारे वियोग में हम लोग किं कर्तव्य-विमूढ थे, हमारा मस्तक कुछ विचार न कर सकता था, हमारे चारों ओर अन्धकार था किन्तु जब नन्दाढ्य से तुम्हारे कुशल समाचार मालूम हुए और चांडाल से पूछकर हमको तुम्हारे कुशलक्षेम का विश्वास हो गया, तब तुरन्त तुमसे मिलने चल दिये। तुम तो यहां के राजसुखों में मस्त होकर हम सबको भूल ही गये थे, किन्तु हम तुमको कैसे भूलते ?

जीवन्धरकुमार यह उपालम्भ (ताना) सुनकर झेंप गया उससे इस बात का कुछ उत्तर न बन पड़ा। उसने पद्मास्य से कहा कि अच्छा, आगे क्या हुआ।

पद्मास्य ने कहा कि आगे की कथा बड़ी ही करुणा-जनक है, ऐसी बात तुमने आज तक न सुनी होगी।

जीवन्धर बड़ी उत्सुकता के साथ बोला कि सुनाओ, मित्र ! वह कथा सुनाओ।

पद्मास्य ने कहा कि राजपुरी से जब हम चले, तो मार्ग में हमको दण्डक वन मिला, वहां पर बहुत से साधु और साध्वी रहती हैं। हम सबको देखते हुए जा रहे थे तो एक वृद्धा तपस्विनी ने बड़े स्नेह-भरे स्वर में हमसे पूछा कि 'बेटा ! तुम कहां से आ रहे हो ?' उसके स्वर में हृदय की दबी हुई पीड़ा झलक रही थी।

हमने उत्तर दिया कि माता जी ! हम लोग राजपुरी से आ रहे हैं।

वह तपस्विनी राजपुरी का नाम सुनते ही कुछ व्याकुल हो उठी, उसने कहा कि बेटा राजपुरी का क्या हाल है ? तुम वहां क्या काम करते हो ?

हमने कहा, माता जी ! राजपुरी खूब हरी-भरी है, वहां सब तरह से आनन्द मंगल है। हम सब जीवन्धरकुमार के मित्र हैं, उसी के पास हम सब रहते थे, वह अच्छे धनिक सेठ का पुत्र है।

तपस्विनी की उत्सुकता बढ़ती गई, वह पूछने लगी, बेटा ! जीवन्धरकुमार कौन है ?

मैंने कहा, माता जी ! वह सेठ गन्धोत्कट का बड़ा भाग्य-शाली पुत्र है। सेठ को वह श्मशान-भूमि में मिला था।

तपस्विनी बीच में ही दीनता सा मुख बना कर बड़ी भारी जिज्ञासा (जानने की इच्छा) के साथ बोली, 'सेठ गन्धोत्कट को श्मशान में जीवन्धर कितनी आयु का मिला था ?

मैंने उत्तर दिया माता जी ! वह केवल एक दिन का बच्चा था, उसी दिन का जन्मा हुआ था।

यह सुनते ही उस तपस्विनी का हृदय भर आया, उसके नेत्रों में आंसू छलक आये और बोली अभागिनी माता उसे छोड़ गई होगी, अच्छा फिर क्या हुआ ? उसने पूछा।

माता जी ! सेठ गन्धोत्कट और सेठानी सुनन्दा ने उसे बड़े प्रेम से पाला, सुनन्दा जीवन्धर को अपने पेट का ही पुत्र समझती है ।

बीच में वह तपस्विनी ठण्डी सांस लेकर बोल उठी, बेटा ! सुनन्दा सेठानी ने जीवन्धर को कुछ कष्ट तो नहीं दिया क्योंकि वह उस का औरस (पेट से पैदा हुआ) पुत्र तो न था।

हमने कहा. नहीं, माता जी ! सुनन्दा तो उसे अपना औरस पुत्र ही मानती है, उस ने जीवन्धर को रंचमात्र भी कष्ट न होने दिया। जीवन्धर जब कुछ बड़ा हुआ, तब भाग्य से उस को आर्यनन्दी नामक एक सर्व-विद्या-सम्पन्न गुरु मिल गये। उन्होंने बड़े प्रेम से उस को सारी उपयोगी विद्यायें सिखलाईं, अस्त्र-शस्त्र विद्या में भी उन्होंने जीवन्धर को निपुण कर दिया।

तपस्विनी का चेहरा खिल उठा, वह प्रसन्नता की ध्वनि में बोली, अच्छा, जीवन्धर सब विद्यायें सीख गया !

हां माता जी ! अपने गुरु से भी अधिक विद्वान् तथा वीर योद्धा बन गया। एक बार बहुत से बलवान लड़ाके भील राज-पुरी के पास आ गये थे और उन्होंने वहां के ग्वालों की गायें

छीन लीं। उन भीलों से लड़ने के लिये राजाकी सेना गई। भीलों ने उस सेना को भी मार भगाया। तब जीवन्धरकुमार ने अपने थोड़े मे मित्रों के साथ उन भयानक भीलों के साथ मोर्चा लिया और उन सब को मार भगाया। ऐसा पराक्रमी है जीवन्धर।

तपस्विनी हर्ष के साथ बोली अच्छा बेटा ! आगे क्या हुआ

मैंने कहा माता जी ! जीवन्धर ने वीणा बजाने में जीत कर एक विद्याधर राजा की पुत्री गन्धर्वदत्ता से विवाह किया।

तपस्विनी तुम्हारी जरा-जरा सी बात पर हर्षित हो उठती थी और बीच में ही बोल उठती थी, इस बार प्रसन्न नेत्रों के साथ बाल उठी, अच्छा, जीवन्धर का विवाह भी हो गया ?

मैं बोला माता जी ! सुनो तो सही उस के एक नहीं कई विवाह हो गये हैं। राजपुरी के दूसरे सेठ की पुत्री गुणमाला के साथ भी उस का विवाह हो गया है।

इस के आगे हमने वह सब घटना कह सुनाई जो काष्ठाङ्गार के पट्टहाथी को मार लगाने के कारण तुम्हारे साथ बीती। मैंने जिस समय तुम्हारे शूली चढ़ाने की बात कही, तो वह सुनते ही रो पड़ी और मुख से उसके ये शब्द जिकल पड़े, कि 'पति मर जाने पर भी हे पुत्र ! मैं तेरी आशा में जी रही थी सो काष्ठाङ्गार ने तुझे भी न छोड़ा।' यों कहते-कहते मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी।

उस पर हमको ज्ञात हुआ, कि यह तपस्विनी हमारे मित्र जीवन्धरकुमार की माता है। तभी वह आपकी प्रत्येक घटना को अपने हृदय के भावों के उतार चढ़ाव के साथ बड़ी रुचि से

सुनती रही। उसकी मूर्छा से हमारा हृदय तिलमिला उठा, हम सबके नेत्र सजल हो गये।

हमने तुरन्त शीतल जल उसके मुख तथा नेत्रों पर छिड़का, उसके मुख पर ठण्डी हवा की, तब उसकी मूर्छा दूर हुई।

तब हमने कहा कि माता! जीवन्धरकुमार अभी जीवित है, मरा नहीं है?

इतना सुनते ही उस तपस्विनी माता का मुर्झाया हुआ चेहरा फिर एक नई आशा से खिल उठा, उसने बड़ी उत्सुकता से पूछा—क्या सचमुच जीवन्धर अभी तक जीवित है, वह मरा नहीं है।

हां माता जी! जीवन्धर को उसका मित्र एक यक्ष शूली के ऊपर से ही उड़ा ले गया था, यक्ष के यहां से चलकर, पल्लव देश में चन्द्राभा नगरी के राजा की पुत्री सर्प ने काट खाई थी, जीवन्धर विहार करता हुआ वहां जा पहुंचा था उस ने उस राजपुत्री का विष दूर कर दिया, अतः उस राजा ने उस कन्या का विवाह जीवन्धर के साथ कर दिया। कुछ दिन बाद वहां से चल दिया। उसके बाद क्षेमपुरी के निकट एक सहस्रकूट देवालय के बहुत दिनों से बंद-वज्रकपाट खोलने के कारण एक सुभद्र नामक सेठ ने बड़े सन्मान के साथ अपनी रूपवती कन्या का जीवन्धरकुमार से विवाह किया। कुछ दिनों पीछे जीवन्धरकुमार वहां से भी चल पड़ा और घूमते-फिरते हेमाभा नगरी पहुचा, वहां पर उसने अपनी धनुर्विद्या का चमत्कार दिखाया, इस पर वहां के भूपति

ने अपनी सुन्दर कन्या का पाणिग्रहण जीवन्धरकुमार के साथ कर दिया। इस समय वह वहीं पर आनन्द से निवास कर रहा है। उसके ये सब समाचार हमको उसकी विद्याधरी पत्नी गन्धर्वदत्ता से मालूम हुए हैं। हम सब उससे मिलने के लिये हेमाभा नगरी को ही जा रहे हैं।

हमारी अन्तिम बात सुनकर उस तपस्विनी माता को शांति मिली। फिर उसने आंसू बहाते हुए अपनी कथा सुनाई, कि मैं कभी राजपुरी की रानी थी, राजा ने काष्ठाङ्गार पर विश्वास करके उसे राज कार्य संभाल दिया, और महल में आप विश्राम करने लगे। मुझे तीन स्वप्न आये, उनमे मालूम हुआ कि मेरे उदर से भाग्यशाली पुत्र होगा, किन्तु राजा (मेरे पति सत्यन्धर) का अवसान भी (मरण) होगा। तब मेरी रक्षा के लिए उन्होंने मयूर विमान बनाया। काष्ठाङ्गार ने जब राजा को मारने के लिए सैनिक भेजे, तब राजा ने मुझे विमान में बिठाकर आकाश में उड़ा दिया और स्वयं वे सेना से युद्ध करते-करते स्वर्ग चले गये। उस विमान ने चाबी पूरी हो जाने पर मुझे श्मशान में ला पटका, वहीं पर जीवन्धर का जन्म हुआ। संयोग से वहां एक धाय आ गई। उसने कहा कि इस बच्चे को यहीं रख दे, एक सेठ का पुत्र मर गया है, वह अपना मृतक पुत्र रखने यहां आवेगा, इसको यहां देखकर उठा ले जायगा। तेरा पुत्र उसके घर में सुख से पलेगा। मैंने सोचा-कि विपत्ति का समय है ऐसा ही करो, यदि काष्ठाङ्गार को पता चल गया तो इसे भी

जीवित न छोड़ेगा। मैं अपने पुत्र को वहीं रखकर छिप गई। कुछ देर पीछे सेठ आया और अपना मरा हुआ बच्चा वहां छोड़ गया, मेरा पुत्र उठा ले गया। वह धाय मुझे यहां पहुँचा गई। बेटा ! मैं तभी से तपस्विनी बनकर अपना पुत्र मिलने की आशा में जीवित हूँ।

मैंने कहा माता जी ! जीवन्धरकुमार तुमको जल्दी मिलेंगे चिन्ता न करो, हम सब आप के ही पुत्र हैं, जो आज्ञा दें, सो आप की सेवा करें।

इतना कह कर हम सब उसके चरणों मे गिर पड़े, माता को सान्त्वना मिली, उसने कहा बेटा ! बस, मैं और कुछ नहीं चाहती, मेरा जीवन्धर मुझे एक वार दिखा दो, मैं तुम्हारा उप-कार कभी न भूलूंगी। मेरे प्राण उसी के लिये इस शरीर में अब अटके हुए हैं, नहीं तो मैं कभी की अपने पतिदेव के पास पहुँच गई होती।

हम सबने एक स्वर से नम्र शब्दों में बड़े आदर से कहा कि माता जी ! जीवन्धर कुमार तुमको शीघ्र मिलेंगे, पूर्ण निश्चय रक्खो। आप हम को आशीर्वाद देकर जाने की आज्ञा दो।

माता जी ने हम सबके शिर पर मातृ-स्नेह का हाथ रख कर आशीर्वाद दिया कि 'सदा स्वस्थ और प्रसन्न रहो' और कहा कि शीघ्र जाकर मेरे जीवन्धर को यहां ले आओ।

हमने कहा 'अच्छा, माता जी ! ऐसा ही होगा'। जब हम चलने लगे तब माता जी ने पूछा बेटा ! जीवन्धर कितना बड़ा है ?

हमने कहा माता जी ! जीवन्धर कुमार जिस दिन पैदा हुए

थे, हम सब का जन्म भी उसी दिन का है। 'आप थोड़ी शान्ति करें, आप स्वयं देख लेंगी कि जीवन्धर कितने बड़े हैं।

माता ने प्रसन्न होकर कहा कि अच्छा बेटा ! अब आओ और लौट कर जल्दी आओ, मैं तुम्हारा मार्ग देखती रहूंगी।

हम सब वहां से चल पड़े और यहां आकर आप से आ मिले।

जीवन्धर कुमार ने समझ रक्खा था कि उसकी माता जीवित नहीं है किन्तु पद्मास्य के मुख से अपनी माता के सत्य समाचार सुन कर जीवन्धर को बहुत आनन्द हुआ कि मुझे अपनी माता की सेवा करने का पुण्य अवसर मिलेगा। किन्तु साथ ही उसको अपनी माता की करुणाजनक दशा सुन कर अपार दुख हुआ। उसका हृदय व्याकुल हो उठा और नेत्रों से आंसू गिरने लगे। वह अपने मन में कहने लगा कि 'उस पुत्र से माता को क्या लाभ हुआ जिसके होते हुए माता ने रंच-मात्र भी सुख न पाया। मैं इधर राजसुख भोग रहा हूँ, उधर मेरी माता वन में दुखी जीवन बिता रही है, मुझको धिक्कार है !'

सुपुत्र से अपने माता पिता का दुखः सुनना भी सहन नहीं होता। सुपुत्र अपनी माता और अपनी जन्म-भूमि को स्वर्ग से भी अधिक श्रेष्ठ समझता है।

जीवन्धर का व्यथित-हृदय देख कर पद्मास्य ने कहा कि धीर वीर होकर विषाद करते हो ? माता के दर्शन के लिये तयार हो जाओ। अब रोते हो ? अब तो तुमको प्रसन्न होना चाहिये। माता तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। शुभ यात्रा के समय दुखी

नहीं हुआ करते, प्रसन्नचित्त होकर उत्साह के साथ चलो।

जीवन्धरकुमार गद्गद् स्वर में बोला ओह! मैं भोग विलास में मस्त रहा आया और मेरी माता शारीरिक, मानसिक कष्ट उठाती रही। यह विषम वार्ता मेरा हृदय विदीर्ण कर रही है। मैं इस घोर अपराध से किस तरह छूट सकूंगा? मेरा रोम-रोम बड़ी भारी व्यथा अनुभव कर रहा है।

पद्मास्य ने कहा कि मित्र! जब तुमको अपनी माता के विषय में कुछ ज्ञान ही न था तब तुम उसकी सेवा भी कैसे कर सकते थे? तुम्हारा तो इसमें कुछ अपराध नहीं, माता का वियोग इतना जल्दी समाप्त हो गया, इसी में अपना कल्याण समझो अब उसकी जितनी सेवा कर सकते हो, कर लो।

जीवन्धरकुमार 'अच्छा' कहते हुए उठ बैठा और सहसा अपने सास ससुर के निकट पहुंचा और उनसे कहा कि मैं अपनी जिस ममतामयी पूज्य जननी को भूल से (अज्ञात भाव से) मृतक समझ बैठा था, वह जीवित है और मुझे देखने की प्रतीक्षा कर रही है, अब मैं तुरन्त उसके चरणों के दर्शन करूंगा। जन्म के बाद अब मुझे मातृ-दर्शन का प्रथम सौभाग्य मिलेगा। माता का आशीर्वाद लेकर दुर्जन काष्ठाङ्गार से अपने पिता का बदला लूंगा. तब राजपुरी के सिंहासन पर बैठने के पश्चात् कनकमाला को अपने पास बुलाऊंगा।

राजा दृढ़मित्र और उसकी रानी को जीवन्धरकुमार की माता का पता लग जाने का तो हर्ष हुआ, किन्तु अपने यहां से जीव-

न्धरकुमार के चले जाने की बात सुनकर दुःख हुआ। राजा रानी ने कुछ दिन और ठहर कर माता के पास जाने का अनुरोध किया, किन्तु जीवन्धर ने मातृ-दर्शन में अधिक विलम्ब करना स्वीकार न किया, तब राजा दृढ़मित्र को जीवन्धर का आग्रह मानना पड़ा।

तदनन्तर जीवन्धर अपने रणवास में गया और बड़े प्रेम के साथ कनक माला को अपने जाने की बात कही। नवोढा (नई विवाहित) कनक-माला को अपने पति की वियोग-सूचक बात सुन कर बहुत दुःख हुआ। उसने मीठी वाणीमें जीवन्धर से प्रेरणा की कि मुझे भी अपने साथ ले चलिये, आप के बिना अब यह हेमाभा नगरी नरक से भी अधिक दुःखदायिनी प्रतीत होगी। आप यदि जङ्गल में रहेंगे तो वह जङ्गल भी मुझको नगर जैसा सुखदायक होगा। मुझे भी तो माता जी दर्शन कराइये, उनके चरण छू कर मेरे हाथ और मस्तक धन्य हो जावेंगे।

जीवन्धरकुमार ने कनकमाला को हृदय से लगा कर प्रिय-स्वर से कहा, कि जिस माता को मैंने अब तक नहीं देखा उससे मिले बिना मुझे अब पल भर भी शान्ति नहीं मिल सकती, अतः माता के पास जाने से मुझे मत रोको। राजपुरी में मैं अपना राज्य लेकर तुमका बहुत शीघ्र अपने पास बुलाऊंगा। स्वाभिमानी वीर पुरुष का यों ससुराल में अधिक दिन तक रहना शोभा नहीं देता।

कनकमाला का मुख उदास हो गया, वह जीवन्धरकुमार को न 'हां' कह सकी और न रोक ही सकी। जीवन्धरकुमार कनक-

माता को प्यार करके और उसको धीरज तथा सान्त्वना देकर चलने के लिये तत्पर हुआ।

इतने में जीवन्धरकुमार के साले आ गये उन्होंने जीवन्धर के साथ चलने का बहुत आग्रह किया, जीवन्धरकुमार ने उनको भी समझा-बुझाकर वहां पर छोड़ा और नन्दाढय तथा पद्मास्य आदि के साथ दण्डक वन की ओर चल पड़ा।

संसार में सब से अधिक आदरणीय और आभार (ऐहसान) के योग्य माता है, माता के एक दिन के उपकार का बदला मनुष्य जन्म भर सेवा करके भी नहीं चुका सकता। पुत्र तो कभी कुपुत्र हो जावे, अपनी माता का अनादर कर डाले परन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती। सदा अपने पुत्र का हित करती है और हितैषिणी रहती है। सुपुत्र के लिये अपनी माता का कष्ट, अनादर अपमान असह्य होता है। माता का हृदय से निकला हुआ शुभ-आशीर्वाद हजारों वरदानों से भी श्रेष्ठ है। जिस पुत्र ने अपनी माता का सन्मान नहीं किया, उसके कष्ट दूर नहीं किये, उसको सुख-शान्ति नहीं दी, वह पुत्र 'पुत्र' शब्द को कलंकित करता है, ऐसा कुपुत्र कभी सुख-शान्ति नहीं पा सकता, प्रकृति उसको धिक्कारती है।

जीवन में प्रथम ही वार अपनी ममता-मयी माता का दर्शन करने की प्रबल आकांक्षा जीवन्धरकुमार का हृदय व्याकुल कर रही थी, अतः जीवन्धरकुमार बहुत तेज गति से दण्डक वन की ओर चला जा रहा था। उसके मन में अनेक प्रकार के विचार,

अनेक तरह के मनोरथ तरंगित हो रहे थे। अनदेखी माता का सुन्दर चित्र जीवन्धर के हृदय-पटल पर अंकित हो चुका था, मन में विराजमान उस कल्पित मूर्ति का प्रत्यक्ष दर्शन अपने नेत्रों से करने के लिये वह दण्डक वन पहुंचना चाहता था।

अन्त में चलते-चलते दूर से दण्डक वन के वृक्ष दिखाई देने लगे, जीवन्धरकुमार का हृदय हर्ष से उछलने लगा, कुछ और निकट आने पर उसको एक खड़ी हुई महिला दिखलाई देने लगी, पद्मास्य ने कहा कि देखो मित्र ! वह सामने खड़ी हुई तपस्विनी ही आपकी महिमा-मयी पूज्य माता है, तुम्हारे आने का मार्ग कितनी आशा और उत्सुकता के साथ एकटक दृष्टि से देख रही है।

तपस्विनी रानी विजया उसी दिन से दिन भर हेमाभा नगरी के मार्ग को नेत्र फाड़ कर देखा करती थी, जिस दिन कि जीवन्धर की मित्रमंडली उससे मिल कर हेमाभा नगरी की ओर चल दी थी। उसकी दैनिक तपस्या इन दिनों में यह ही रही आई। आज भी वह प्रातः से अब (तीसरे पहर) तक इसी दिशा की ओर बड़ी आशा-भरी दृष्टि से देख रही थी। प्रतिदिन ज्यों ही कोई मनुष्य इस ओर से आता दिखाई देता था, उसको आशा होने लगती थी कि मेरा पुत्र आ रहा है, समीप आ जाने पर जब उसकी आशा निराशा बन जाती, तब वह उस यात्री से पूछ लेती कि भाई ! पीछे नवयुवक मंडली आ रही है या नहीं ? अब जब कि उसने जीवन्धरकुमार के मित्र-मंडल को आता देखा तब उसे निश्चय हो गया कि इसमें मेरा प्यारा पुत्र अवश्य होगा, उसके हृदय में अनेक तरंगें उठ रही थीं।

जीवन्धरकुमार पद्मास्य की बात सुनकर सबसे आगे दौड़ा और माता के निकट पहुंच कर माता के चरणों में बड़ी भक्ति से गिर पड़ा, उसके नेत्रों से हर्ष के आंसू बाहर निकलने लगे।

तपस्विनी विजया हर्ष से फूली न समाई, उसकी चिरकाल से खोई हुई अमूल्य निधि आज अनायास उसको मिल गई, वह गद्‌गद स्वर से बोली—मेरा पुत्र, मेरे जीवन का आधार, मेरी चिरतपस्या का मधुर फल, मेरे हृदय का दीपक, जीवन्धर आ-गया ! मेरे समस्त दुखों का अन्त, मुझ दरिद्रा अनाथिनी का लाल, मेरे आर्यपुत्र का सुन्दर चिन्ह, जीवन्धर तू आ गया !! मुझ अभागिनी का भाग्य जग गया, मेरी चिरकाल की साधना आज पूर्ण हुई, मेरे समान भाग्यशालिनी महिला आज संसार में कौन है ?

आ मेरे पुत्र ! एक वार तेरा मुख देखकर अपने नेत्रों की प्यास बुझाऊं, आ मेरे हृदय के लाल मेरे हृदयसे लग जा, जिससे मेरे हृदय का दीर्घकालीन सन्ताप शान्त हो जावे, मेरा अन्तस्तल शीतल हो जावे, मेरे वत्स ! उठ मेरी गोद में आकर बैठ, मैं आज मातृ-भाव का सुखमय अनुभव करूं । मैं सचमुच आज पुत्रवती हुई हूँ ।

तपस्विनी विजया ने जीवन्धर को अपने चरणों में से उठाकर अपने हृदय से चिपटा लिया, विजया के हृदय का बहुत वर्षों का एकत्र हुआ सन्ताप अपने पुत्र के स्पर्श-मात्र से शनैः शनैः कम होने लगा। जीवन्धर कुमार ने आज पहली वार अनुभव किया

कि माता का स्नेह क्या वस्तु है। उसके नेत्रों से जो हर्ष के आंसू निकल रहे थे उनसे विजया का हृदय और विजया के आंसुओं से जीवन्धर की पीठ तर होती रही।

कुछ देर पीछे विजया ने जीवन्धर को अपनी गोद में बिठा लिया और बार-बार उसका मुख चूमने लगी तथा उसके शिर पर अपना स्नेह भरा हाथ फेर कर अनेक प्रकार के शुभ आशीर्वाद देने लगी, एकटक नेत्रों से उसका मुख देखती रही। आज प्रथम वार ही जो उसने अपने पुत्र का मुख देखा था। तीव्र पुत्र-स्नेह के कारण उसके सूखे हुए स्तनों में दूध भर आया। जीवन्धर भी आज माता की गोद में बैठा हुआ मातृ-प्रेम का मधुर-आस्वाद करने लगा। अपनी माता के चेहरे की प्रसन्नता को देखकर उसे भी अपार हर्ष और सन्तोष हो रहा था।

जन्म से ही बिछुड़े पुत्र को पाकर माता को जो हर्ष होता है उसकी सीमा संसार के किसी भी विशाल पदार्थ के साथ नहीं नापी जा सकती।

इस तरह कुछ देर तक जीवन्धर को लाड़-प्यार करके विजया ने बड़ी स्नेह-भरी मधुर गद्‌गद वाणी में जीवन्धर से पूछा, पुत्र! सत्य बता कि तुझको कभी मेरी याद भी आई?

जीवन्धर भी गद्‌गद होकर बोला, माता! शिशुवय में तो मुझ को माता सुनन्दा का स्नेह मिला, उस समय वही मेरी पुनीत माता थी, उसका आभार मैं जन्म भर नहीं चुका सकता, उस समय तो मुझे तुम्हारा रंचमात्र भी भान नहीं था। मुझे पूर्ण

शिक्षा-सम्पन्न कर देने के पीछे जब पूज्य गुरु आर्यनन्दी ने मुझ को मेरा सच्चा वंश-परिचय बतलाया। उस समय मुझे अपने क्षत्रिय राज-वंश का भान हुआ और उसे सुनते ही मेरा क्षात्र-बल मुझे काष्ठाङ्गार से तत्काल पिता के अपमान का बदला लेने के लिये प्रेरणा करने लगा किन्तु दूरदर्शी अनुभवी गुरू ने मुझे एक वर्ष तक काष्ठाङ्गार से न लड़ने का वचन ले लिया। उस दिन मुझे यह मालूम हुआ कि मेरी जननी और ही है, जो कि सम्भवतः इस निष्ठुर संसार के काले कृत्य देखकर यहाँ से विरत हो, अन्य लोक को चली गई है।

विजया ने बीच में ही कहा, पुत्र! तूने मुझे मृतक समझ लिया?

जीवन्धर ने कहा माता! तुमने राजसुख अनुभव किये थे फिर यह बात कहाँ सम्भव थी कि तुम निराश्रय और असहाय होकर साधारण अनाथिनी महिला-जैसा जीवन बितातीं? यह तो तुम्हारा महान् साहस है कि ऐसी भयानक दुखमय परिस्थितियों में भी तुमने अपना जीवन अक्षुण्ण रक्खा।

विजया ने कहा, बेटा! केवल तेरा सुन्दर मुख देखने की अभिलाषा से मैं अब तक जीवित रही, मेरे प्रत्येक श्वास में 'मेरा पुत्र, मेरा पुत्र' की सूक्ष्म गूढ़ ध्वनि रहती थी, जिसको मेरे सिवाय और कोई प्राणी न सुनता था। मेरे जीवन का यही एक अवलम्बन था। तपस्या के इन दिनों में मेरा जीवन समस्त संसार से निराला था। जैसे एक महान् योगी संसार के बहुत से काम करता हुआ भी वास्तव में अपने हृदय से कुछ भी नहीं

करता, ठीक वैसी ही दशा मेरी थी। यदि मेरा हृदय पुत्र-स्नेह से न भरा होता, तो पता नहीं मैं भी महान् योगी की श्रेणी में पहुँच गई होती। परन्तु यह तो मेरा कच्चा अनुमान है, क्योंकि यदि मेरा हृदय पुत्र-स्नेह से खाली होता, तो सम्भव है, मेरा जीवन ही उड़ गया होता।

जीवन्धर ने कहा माता ! पद्मास्य ने मुझे जैसे ही आपके समाचार सुनाये, त्यों ही मेरा हृदय मेरे वश में न रहा, सब बातों की ओर से एकदम विरक्त होकर मेरा मन तुम्हारे चरणों पर केन्द्रित हो गया। यदि मैं पक्षी होता तो उसी समय अबाध गति से उड़कर तुम्हारे निकट आ जाता। मैंने उसी समय अपने सास-ससुर तथा तुम्हारी विनीत गुणवती पुत्रवधू से विदा ली और तुम्हारे प्रथम पवित्र दर्शन पाने के लिये वहाँ से चल पड़ा। उत्सुकता से हृदय ने मार्ग में कहीं पर भी क्षण भर भी विश्राम नहीं लेने दिया।

माता प्रसन्न-मुख हो कर बोली, अच्छा बेटा ! तेरे हृदय में भी मेरी ममता जाग उठी !

उसी समय विजया को अपने प्राणपति कुरुवंशी राजा सत्यन्धर का स्मरण हो आया और तत्काल उसका प्रफुल्लित मुख कुम्हला गया, उसका हृदय मर्मभेदी पीड़ा का अनुभव करने लगा, उसकी चेष्टा फिर बिगड़ गई और दीनवदन होकर करुणाजनक स्वर में बोली कि—

पुत्र ! यदि आज तेरे पिता जीवित होते तो तुझको देख कर

कितने प्रसन्न होते, तू राजपुत्र होकर इधर-उधर फिर रहा है, कितना लम्बा मार्ग तूने पैदल चल कर पार किया होगा, वन-जङ्गलों की धूल छानता फिरा, कृतघ्न काष्ठाङ्गार के द्वारा बेटा! तू शूली पर भी चढ़ा। ये सब अपमान और दुःख तुझे क्यों सहने पड़ते यदि आज तेरे पिता होते। तू राजभवन में बीसियों दास दासियों की सेवा में पाला-गया होता।

जीवन्धरकुमार बोला, माता! तुम वीर-पुत्री और वीर-माता होकर कैसी बात कर रही हो। मनुष्य का जीवन सङ्घर्षमय है। अनेक तरह के सङ्घर्ष मनुष्य को वीर, योद्धा, साहसी और सहन-शील बनाते हैं, और उसमें अभिमान का अंकुर नहीं उत्पन्न होने देते। मनुष्य जब विकट संकटों के प्रहारों को झेल कर धीरता से आगे बढ़ता है, तब ही संसार की सम्पत्ति उसके चरणों में लोटती है। यदि जल कठोर पाषाणों की चोटें खा कर निर्मल न होता तो गंगा के जल का संसार कैसे आदर करता। जन्म से ही यदि मैं राजभवन में रहा होता तो मेरे भीतर उन शक्तियों तथा अनु-भवों का विकास कदापि न हो पाता जो कि मुझे विविध ऊंच-नीच परिस्थितयों में विचरने के कारण हुआ है।

माता जी! यदि आपने इतने दिन इस कठोर तपस्या में न बिताये होते तो तुम भी क्या समझ पातीं कि राजभवनों के बाहर भी मनुष्य जीवन का असीम विशाल क्षेत्र है। उस मनुष्य का जीवन बलवान और उल्लासमय नहीं बन पाता जिसने कि कुछ दिन विपत्तियों, विविध संकटों और दुःखों से युद्ध न किया हो। पूज्य पिता जी जब तुम्हारे हृदय में विराजमान हैं तो फिर क्यों

उनके लिये गर्म आंसू बहाती हो ? तुम्हारा पुत्र तुम्हारी सेवा के लिये तत्पर है। अब तुम्हारे दुःखों की काली रात्रि बीत गई, अब तुम्हारे सुखमय प्रभात का समय आ गया है।

माता विजया रोती हुई बोली, वत्स ! मेरे लिये सुखमय प्रभात राजपुरी के राजभवन में होगा। तेरा मुख देखकर मेरी एक साध पूरी हुई है. किन्तु दूसरी साध तब पूरी होगी, जब राजपुरी के राजसिंहासन पर जीवन्धर को बैठा देखूँगी। यदि तू सूक्ष्मदर्शी होता तो मेरे हृदय की पीड़ा को साफ देख लेता। मेरे हृदय में राजपुरी का राज-सिंहासन कांटे की तरह चुभ रहा है। बेटा ! क्या मेरे हृदय का यह कांटा भी निकल सकेगा ?

जीवन्धर ने उत्तर दिया—'अवश्य' यह कांटा अभी कुछ दिनों में ही दूर हो जायगा। जीवन्धर जिस समय धनुष अपने हाथ में लेगा उसी समय काष्ठाङ्गार का शिर पृथ्वी पर लोटता हुआ दृष्टि-गोचर होगा। माता ! अब तुझे अपनी दीर्घ-तपस्या का मधुर फल मिलेगा। पहले यदि तू राज-रानी थी, तो अब 'राज-माता' के नाम से विश्व-विख्यात होगी। पूज्य जननी ! तेरी दुख-रात्रि समाप्त हो गई। मुझे आशीर्वाद दे, मेरे शिर पर अपना वरद हस्त रख, अपने हाथ से उठाकर मुझे धनुष दे, मेरी दक्षिण (दाहिनी) भुजा पर अपनी थपकी दे, राजपुरी का राजमुकुट तेरे चरणों में भेंट करूंगा। विजया का पुत्र विजया माता को विजय अर्पण करके सन्तुष्ट होगा, उसे केवल अपनी माता की आज्ञा मिलनी चाहिये।

जीवन्धर के वीरता-भरे वचन सुनकर विजया को बहुत

सन्तोष हुआ। उसके आंसू-भरे नेत्रों में हर्ष का प्रवाह चमकने लगा, मुख पर मुस्कराहट झलक उठी और गद्-गद होकर बोली-- पुत्र! अब मुझे विश्वास है कि मैं अपने श्वास शान्ति और सन्तोष के साथ तोड़ सकूंगी, अब मेरा धर्म-आराधन तथा कर्म-साधन सफल होगा। उठ पुत्र! खड़ा हो, अपने धनुष की टङ्कार से काष्ठाङ्गार की सुख-निद्रा भङ्ग कर दे और अपने अमोघ बाण से उसे यमराज का अतिथि (मेहमान) बना दे। मेरी तपस्या तभी पूर्ण होगी और मैं तभी इस तपोभूमि से बाहर पैर रक्खूंगी।

माता की बात सुनकर जीवन्धर कुमार ने अपने मित्रों के साथ मन्त्रणा (सलाह) की। सबने यह सम्मति दी कि अब माता का इस तपोवन में रहना उचित नहीं, अतः इनको मामा जी के यहां पहुंचा देना चाहिये और हम सबको यहां से राजपुरी के लिये प्रस्थान करना ठीक रहेगा।

जीवन्धरकुमार ने यह प्रस्ताव माता के सामने रक्खा, विजया पहले तो कुछ सकपकाई, कि बिना बुलाये अपने भाई के घर कैसे जाऊं, मेरा भाई बुरा तो न मानेगा। इस दीन-दशा में भाई के घर मेर. समुचित आदर सन्मान होगा या नहीं? किन्तु जीवन्धरकुमार के सब मित्रों ने जब एक स्वर से जीवन्धर की बात का समर्थन किया तब विजया को सबकी बात माननी पड़ी।

जीवन्धरकुमार ने अपनी माता को अपने भाई नन्दाढय के साथ विदेह प्रान्त के धरणी-तिलक नगर के भूपति, अपने मामा

गोविन्दराज के पास भेज दिया और आप अपने मित्रों के साथ राजपुरी के लिये चल पड़ा।

नन्दाढ्य विजया माता को साथ लेकर धरणी-तिलक नगर की ओर चल दिया। अनेक वन, नदी, पर्वत, नगर गांवों को लांघता हुआ कुछ दिनों में वह धरणी-तिलक जा पहुँचा। नगर बहुत सुन्दर था, मकान, मंदिर, दुकान बाजार, सड़क, गली सभी में आकर्षक सौन्दर्य था, नगर के चारों ओर पाषाण का बना हुआ पत्थर का ऊँचा कोट था, कोट के चारों ओर स्वच्छ जल से भरी हुई गहरी खाई थी। नगर के बाहर सब ओर सुन्दर बाग थे जिनमें सब तरह के फलों तथा फूलों के वृक्ष थे। बागों से लगे हुए हरे भरे खेत लहरा रहे थे।

नगर की सुन्दरता देखकर नन्दाढ्य का चित्त प्रफुल्लित हो गया। उसने बिजया रानी को एक बाग में अच्छे रमणीक स्थान पर बिठा दिया और स्वयं वहा के भूपति गोविन्दराज से मिलने के लिये चल पड़ा। राजसभा में पहुँच कर उसने रत्नजड़ित ऊंचे स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुए गोविन्दराज को प्रणाम किया। सौम्य-मुख, सुन्दर, तरुण नन्दाढ्य को गोविन्दराज ने बहुत प्रेम से अपने पास बुलाकर योग्य आसन पर बिठाया और उससे आनेका कारण पूछा।

नन्दाढ्य ने विजया रानी तथा जीवन्धर कुमार का सब पिछला समाचार कह सुनाया और विजया रानी के धरणीतिलक उसके साथ आने की बात भी कही। नन्दाढ्य के द्वारा अपनी

सहोदरा बहिन विजया तथा अपने भानजे वीर-युवक जीवन्धर कुमार का वृत्तान्त सुनकर भूपति गोविन्दराज बहुत हर्षित हुआ। उसने नन्दाढ्य को जीवन्धरकुमार का धर्म-भाई तथा अपनी बहिन का सन्देश देने वाला जानकर बहुत प्यार किया। सत्यन्धर की मृत्यु के पश्चात् गोविन्दराज को अपनी बहिन का कुछ भी समाचार न मिला था, अतः उसने उसको भी मृतक समझ लिया था, जीवन्धरकुमार के उत्पन्न होने की बात तो उसे बिलकुल मालूम न थी, अतः इतने लम्बे समय पीछे अपनी बहिन का कुशल समाचार पाकर उसके हर्ष की सीमा न रही।

वह तत्काल अपने अन्तःपुर (रणवास) में जा पहुँचा और अपनी रानी तथा पुत्री आदि परिवार के सब व्यक्तियों को अपनी बहिन के आने की बात सुनाई, सुनकर सब को बहुत प्रसन्नता हुई। राज-परिवार के सभी व्यक्ति सजधज कर विजया रानी क स्वागत करने के लिये तत्पर हो गये और बड़े समारोह के साथ उस बाग में पहुंचे।

राजा गोविन्दराज चिन्ताओं से थकी हुई किन्तु फिर भी तेजोमयी स्नेह की मूर्ति अपनी भगिनी को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और बड़े प्रेम के साथ उससे मिला।

भाई बहिन का प्रेम संसार में बहुत गाढ़ा और निराला होता है। फिर यदि दीर्घ समय पीछे बहिन भाई का मिलाप हो, तो उस समय का स्नेह तो अपार होता ही है।

रानी विजया अपने सहोदर भाई से मिलकर क्षण भर के

लिये अपने समस्त पिछले दुःख भूल गई, वह बड़े स्नेह के साथ हर्ष के आंसू नेत्रों से गिराती हुई अपने भाई से गद्गद वाणी में उसके कुशल समाचार पूछते हुए मिली।

गोविन्दराज की रानी आदि परिवार के सब स्त्री पुरुषों ने विजया रानी का उचित आदर किया और बड़े सन्मानके साथ रथ में बिठा कर उसको राज-भवन में लिवा ले गये।

अपने पति सत्यन्धर राजा की स्मृति और प्रियपुत्र जीवन्धर का ध्यान सतत अपने मन में रखती हुई रानी विजया अपने भाई के यहां सुख से रहने लगी।

दो एक दिन राज-अतिथि बनकर नन्दाढ्य वहीं रहा फिर गोविन्दराज के साथ गुप्त-मन्त्रणा करके राजपुरी के लिये चल दिया।

उधर जीवन्धर कुमार भी अपने मित्रों के साथ मार्ग तय करते हुए राजपुरी जा पहुंचा और वहां नगर के बाहर एक बाग में जाकर ठहर गया।



नौवां प्रसंग

जीवन्धर अपने मित्रों को उद्यान में छोड़ कर अकेला राजपुरी नगरी को देखने चल पड़ा। बाजार को देखता हुआ वह एक गली में चला जा रहा था, उस गली में सागरदत्त नामक एक धनिक जौहरी का बहुत सुन्दर विशाल मकान था। मकान के दूसरे खण्ड की खुली छत पर उस जौहरी की कन्या, विमला गेंद के साथ खेल रही थी। वह लड़की किशोर अवस्था पार करके तरुण वय में प्रवेश कर रही थी। एक तो वह वैसे ही पैर से लेकर शिर तक सर्वाङ्ग सुन्दरी थी, उसके मुख पर अपूर्व लावण्य था, शीशे के समान उसका गुलाबी मुख चमक रहा था, हंस-मुख होने से मुस्कराहट सदा उसके ओठों पर खेलती रहती थी, नेत्र बहुत विशाल और चञ्चल थे। अब तो उनमें लज्जा भी आकर रहने लगी थी, परन्तु यौवन के उभार से उसका सौन्दर्य और भी अधिक आकर्षक बन गया था। इसके पिता को उसके लिये एक योग्य वर की चिन्ता थी, किन्तु निमित्त-ज्ञानी के कहे अनुसार उसको अब तक वर न मिल पाया था।

खेलते-खेलते विमला की गेंद उछल कर गली में जा गिरी और संयोग से गली में जाते हुए जीवन्धर के ऊपर ही गिरी। जीवन्धर कुमार ने अपने ऊपर गेंद गिराने वाले को देखने के लिये ज्यों ही आंख छत की ओर ऊपर को उठाई, कि उधर

विमला ने भी अपनी गेंद देखने के लिये गली की ओर अपनी दृष्टि डाली, इस तरह एक साथ जीवन्धर और विमला की आंखें अचानक एक दूसरे से टकरा गईं। जो कि उन दोनों के हृदय में एक दूसरे के लिये अनुराग पैदा कर गईं। विमला के चंचल नेत्र जीवन्धर का सुन्दर प्रफुल्लित मुख देखकर लज्जा से तत्काल पीछे हट गये किन्तु उसके हृदय में उन्होंने व्याकुलता तथा मीठी-सी पीड़ा उत्पन्न कर दी।

इधर जीवन्धर का मन भी विमला के कमल-समान लाल और चन्द्र-समान आल्हादित मुख तथा हरिणी-समान नेत्रों को देखते ही मोहित हो गया। जीवन्धर तत्काल किंकर्तव्य-विमूढ (मुझे अब क्या करना चाहिये ऐसा न सोच सकने वाला) हो कर वहां से आगे न चल सका और कुछ देर अपना चित्त स्थिर करने के लिये उसी मकान के द्वार की ड्योढ़ी पर जा बैठा।

थोड़ी देर बाद कुछ व्यापारी उस घर में से हंसते-मुस्कराते हुए बाहर निकले, उनके साथ ही सेठ सागरदत्त भी द्वार तक आया। द्वार पर उसने जीवन्धरकुमार को बैठा हुआ देखा। जीवन्धर कुमार का विशाल वक्षस्थल (छाती) ऊंचे-कन्धे, ऊंचा ललाट, लम्बी भुजाऐं और विकसित सुन्दर मुख देखते ही सागरदत्त सेठ ने तत्काल जान लिया कि यह कोई भाग्यशाली महान पुरुष है। वह बड़े सम्मान के साथ जीवन्धर कुमार को अपने साथ मकान में भीतर ले गया, और वहां ऊंचे आसन पर बिठा कर सागरदत्त ने जीवन्धरकुमार का अच्छा स्वागत सम्मान किया।

तदनन्तर उसने जीवन्धरकुमार का परिचय पूछा। जीवन्धर ने अपना थोड़ा सा परिचय (वंश आदि का विवरण) बतलाया। तब सागरदत्त कहने लगा कि भद्रयुवक ! मेरा नाम सागरदत्त है मैं रत्नों का व्यापार करता हूँ, अभी आपके सामने जो व्यापारी यहाँ से गये हैं उन्होंने मुझ से ऐसे कुछ रत्न खरीदे हैं जो बहुमूल्य थे, मेरे पास बहुत वर्षों से रक्खे हुए थे, उनको खरीदने-वाला कोई भी धनिक अब तक तयार न हुआ था।

मेरी गुणवती-पत्नी कमला है और उसके उदर से एक सुन्दर कन्या विमला का जन्म हुआ है, विमला अब युवती हो गई है। उसके लिये मैंने सुयोग्य वर की बहुत खोज की, परन्तु कोई वर न मिल सका, अतः मुझे दो चिन्ताओंने आ घेरा—१ बहुमूल्य रत्नों का न बिकना, २–विमला के लिये योग्य वर न मिलना।

तब मैंने एक निपुण निमित्त ज्ञानी से अपनी दोनों चिन्ताओं के दूर होने का निमित्त पूछा। उस निमित्त-ज्ञानी ने अच्छी तरह विचार कर बतलाया कि तुम्हारे दोनों कार्य एक ही साथ बनेंगे, तुम को विना-ढूंढे विमला का वर भी स्वयं मिल जायगा और उसके आते ही तुम्हारे मूल्यवान रत्नों की बिक्री भी अनायास हो जायगी, साथ ही उस बिक्री में तुम को बहुत लाभ भी प्राप्त होगा।

मेरे ये दोनों ही कार्य आपके शुभ-आगमन से हो गये हैं, रत्न तो बिक ही गये हैं, अब आप विमला के पाणि-ग्रहण की स्वीकारता देकर मेरी दूसरी चिन्ता भी दूर कर दीजिये। मुझे

आप-जैसा भाग्य-शाली वर और कौन सा मिलेगा?

जीवन्धर कुमार का हृदय विमला की ओर पहले से ही आकर्षित था किन्तु विवाह की बात सुनकर उसकी मुख-आकृति कुछ गम्भीर हो गई। इतने में सागरदत्त की पत्नी कमला भी आ गई, पति-पत्नी दोनों ने जीवन्धरकुमार से विमला के पाणि-ग्रहण का अनुरोध किया, तब जीवन्धर ने स्वीकार कर लिया।

जैसे विपत्ति आने का कोई समय निश्चित नहीं है, अशुभ-कर्म उदय आते ही अचानक अनेक आफतें आ खड़ी होती हैं. इसी प्रकार मनुष्य के सौभाग्य का भी कोई नियत समय नहीं है, शुभ-कर्म-उदय होते ही बिना सोची विचारी सम्पत्ति अपने आप मिल जाती है।

सागरदत्त ने अच्छे चतुर ज्योतिषी को बुलाकर जीवन्धर-कुमार और विमला के पाणि-ग्रहण का मुहूर्त पूछा, ज्योतिषी ने पंचाङ्ग देकर बतलाया कि यही समय सबसे अच्छा है।

तदनुसार सागरदत्त और उसकी भार्या कमला ने झट-पट विवाह की तैयारी कर डाली। उसी समय विमला और जीवन्धर कुमार के हाथ में कंकण बांधे गये, विमला ने एक रत्न-जटित हार जीवन्धरकुमार के गले में वर-माला के रूप में डाला, सागर-दत्त ने विमला का हाथ जीवन्धर को ग्रहण कराया, ज्योतिषी ने शुभ वैवाहिक मन्त्रों का उच्चारण करके विवाह की विधि पूर्ण की। कमला ने वर-कन्या की आरती उतारी और उपस्थित लोगों ने

वर-कन्या को बधाई दी। जीवन्धरकुमार और विमला का तत्काल विवाह हो गया।

जीवन्धर कुमार विमला के साथ एक सुसज्जित सुन्दर कमरे में गये और एकान्त में पलङ्ग पर विमला के साथ बैठे, उन्होंने मुस्कराते हुए विमला से कहा, कि प्रिये ! जिस गेंद ने हमारा तुम्हारा सुख-संयोग मिलाया, उसको सम्हाल कर रखना। विमला ने मुस्कराते हुए लज्जा से नेत्र झुकाए हुए वह गेंद दिखलाई और गद्-गद् होकर कहा कि 'यह गेंद अब सुरक्षित रहेगी।'

इसके पीछे जीवन्धर को अपने मित्रों का स्मरण आया, तब वह तत्काल उठ खड़ा हुआ और विमला से बोला, कि प्रिये ! मुझे अब अवकाश (छुट्टी) दो, मैं जिस काम के लिये निकला था उस कार्य के लिये मुझे जाने दो, मैं बहुत जल्दी तुमसे फिर मिलूंगा। विमला विस्मित रह गई, जाने का नाम सुनकर चित्त उदास हो गया, किन्तु जीवन्धर ने उसे प्यार करके मीठे वचनों से उसको धैर्य दिया। वहां से बाहर आया और सास ससुर को अपनी परिस्थिति बतला कर उनसे भी जाने की आज्ञा ले ली।

जीवन्धरकुमार सेठ सागरदत्त के यहां से चल कर सीधे बाग में आकर बड़ी प्रसन्नता के साथ अपनी मित्र-मण्डली से मिला। पद्मास्य आदि मित्रों ने जीवन्धर के गले में रत्न-हार और हाथ में कंकण बन्धा हुआ देखकर, साथ ही मस्तक पर तिलक भी लगा देखा तो पूछा कि क्या इतनी देर में अपना विवाह भी कर आये ?

जीवन्धरकुमार ने मुस्कराते हुए विमला के साथ विवाह होने की सब घटना कह सुनाई। जीवन्धर की बात सुनकर सब मित्रों को बहुत आनन्द हुआ।

बुद्धिषेण मित्र (जो कि विदूषक—बहुत मजाकिया था) ने हंसते हुए जीवन्धर से कहा कि विमला के साथ विवाह हो गया सो तो ठीक, परन्तु सुरमञ्जरी ने तुम्हारे साथ ही विवाह करने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है, यदि किसी प्रकार उसकी इच्छा पूर्ण करो तब कुछ बात है। दूसरे मित्रों ने भी अनेक बातें बनाकर जीवन्धर का चित्त भड़काया। जीवन्धर भावुक (भावआवेश में आ जाने वाला, किसी कार्य को करने के लिये भड़क कर झट तैयार हो जाने वाला) नवयुवक तो था ही, झट बोल उठा कि 'अच्छा यह कार्य भी कर दिखाऊंगा।'

यौवन-अवस्था में अनुभव उतना नहीं होता, जितना कि साहस और कठिन से कठिन काम कर डालने का उत्साह होता है। यौवन के आरम्भ में शरीर में शक्ति, सौन्दर्य तथा हृदय में नई उमङ्ग प्रगट होती है और मन में काम-वासना का प्रादुर्भाव होता है।

जीवन्धर कुमार को वह बसन्त-ऋतु का दिन स्मरण हो आया, जब कि गुणमाला और सुरमञ्जरी दोनों सखियां जल-क्रीड़ा के लिये नगर से बाहर सरोवर को जा रही थीं और उस समय उनमें परस्पर अपने-अपने उबटन (शरीर निर्मल करने वाला चूर्ण-पाउडर) को श्रेष्ठ बतलाने पर विवाद उठ खड़ा हुआ

था। उस विवाद का निर्णय मैंने ही किया था। गुणमाला का चूर्ण अच्छा बतलाया था, इस कारण चिढ़ कर सुरमञ्जरी बिना-स्नान किये घर लौट गई थी। इसके अनन्तर गुणमाला से यह बात भी मालूम हो गई थी कि सुरमञ्जरी ने प्रतिज्ञा कर ली है कि "मैं जीवन्धर के सिवाय अन्य किसी पुरुष से विवाह नहीं करूंगी।"

तब जीवन्धरकुमार ने इस मनोरथ को सफल बनाने के लिये उपाय सोचा। तदनुसार सुरमञ्जरी के घर तक पहुंचने के लिये अपना रूप वृद्ध पुरुष का बना लिया। रूप बदलने की कला सुदर्शन यक्ष ने जीवन्धरकुमार को सिखा ही दी थी। उस कला के अनुसार जीवन्धर कुमार ऐसा बूढ़ा बन गया कि उसके शरीर में यौवन का कोई चिन्ह न दिखाई देता था, सारी देह बुढ़ापे से शिथिल दृष्टि-गोचर होता था। शिर, मूंछ, डाढ़ी के बाल सफेद थे, कमर झुकी हुई थी, गर्दन हिलती थी, चलते समय लाठी का सहारा लेकर भी पैर लड़खड़ाते थे, मुख से शब्द स्खलित-से निकलते थे। जीवन्धर को देखकर उस समय कोई भी यह न कह सकता था कि यह बनावटी बुड्ढा है।

यह बनावटी बुड्ढा जब राजपुरी की सड़कों तथा गलियों में होकर जाने लगा, तो प्रौढ़ पुरुषों के हृदय में बुड्ढे को देखकर करुणा उत्पन्न हुई और शरीर की होने-वाली दुर्दशा का विचार कर उन्हें शरीर के लिये कुछ विराग भी हुआ। युवक पुरुष और युवती स्त्रियां बुड्ढे को देखकर अपने यौवन-मद में हंसने लगीं और बच्चों ने तो उसे उपहास का साधन ही बना लिया। कोई

उसका अनुकरण (नकल) करके अपनी कटि (कमर) झुका कर उसके सामने चलता था, कोई उसकी लाठी खींच कर उसको तंग करता था, कुछ लड़के उसके पीछे उसके कपड़े खींचते थे और कुछ तरह-तरह की बातें कह कर हँसी करते थे। बुड्ढा उनके उपहास से खीज उठता और लड़कों को अप-शब्द कहता, गालियां देने लगता तथा मारने के लिये लाठी उठाता, तब लड़के इधर-उधर भाग जाते फिर और भी अधिक हँसी उड़ाने लगते। तब कुछ प्रौढ़ मनुष्य आकर उन बच्चों को डाट-डपट कर रोक देते।

इस प्रकार वह वृद्ध मनुष्य घूमता-फिरता सुरमञ्जरी के द्वार पर जा पहुँचा। द्वार पर खड़ी हुई सुरमञ्जरी की दासियों ने हंसते हुए उस बूढ़े से पूछा कि—बूढ़े! यहां क्यों आया है?

बूढ़े ने उत्तर दिया कि 'कुमारी-तीर्थ में स्नान करने आया हूँ।'

जीवन्धरकुमार की गूढ़ बात का अभिप्राय न समझ कर और उसकी ऊटपटांग बात जानकर वे दासियां एक-दम जोर से खिल-खिला कर हँस पड़ीं।

इतने में वह बूढ़ा निषेध (मना) करने पर भी भीतर आंगन में घुस कर बैठ गया। दासियों ने डरते हुए सब बात सुरमंजरी से कही, सुरमंजरी बूढ़े को देखने बाहर आंगन में आई किन्तु बूढ़े को थका-मांदा देख कर उसके हृदय में उस बुड्ढे के लिये सहानुभूति जाग उठी। उसने करुणा-भाव से पूछा कि कुछ भोजन की इच्छा है?

बूढ़े ने शिर झुकाते हुए कहा कि 'हां'

सुरमंजरी ने स्वयं अपने हाथ से बूढ़े को अच्छा भोजन कराया और शीतल जल पिलाया।

बूढ़े ने खा पीकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा, कि देवी! तू बड़ी दयालु है, भगवान तेरी सब कामना पूरी करे।

बूढ़े का आशीर्वाद सुनकर सुरमंजरी के हृदय में कुछ गुद-गुदी जाग उठी, और मुस्कराते हुए बोली, अच्छा, तुम बहुत थक गये हो, कुछ देर यहां विश्राम कर लो।

बूढ़ा बोला तेरा कल्याण हो देवी! और वहीं पर लेट गया!

सुरमंजरी भोजन करने चली गई और उसकी दासियां काम-काज में लग गईं। सुरमंजरी ने जबसे बूढ़े का आशीर्वाद (भगवान् तेरी सब कामना पूरी करे) सुनी तभी से उसके हृदय में सोई हुई जीवन्धरकुमार की मधुर स्मृति ताजा हो गई, और रह-रह कर उस के मन में अनेक प्रश्न उठने लगे, कि मेरी यह कामना क्या पूर्ण हो सकेगी? जब कि जीवन्धरकुमार का कुछ पता भी नहीं है। क्या मेरी कामना जन्म-भर अधूरी ही रही रही आवेगी?

कुछ समय पीछे वह वृद्ध मनुष्य उठ बैठा और आनन्द-विभग्न होकर बहुत मीठे स्वर में गाने लगा। उस के स्वर में बहुत आकर्षण था। सुरमंजरी और उस की दासियां बूढ़े का गायन सुनने के लिये उस के पास आकर बैठ गईं।

बूढ़े ने जब अपना गाना समाप्त किया, तब सुरमंजरी ने बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा, कि बूढ़े! तुम बहुत अच्छा गाते

हो, क्या तुम कुछ और भी जानते हो ?

बुड्ढे ने उत्तर दिया कि देवी ! मैं सब विद्याओं में पारंगत हूँ।

सुरमंजरी के हृदय में जीवन्धर की याद और भी तीव्र हो आई और झट पूछ बैठी, कि मेरी मनोकामना कब पूरी होगी ?

बुड्ढे ने सुरमंजरी की हस्त-रेखा देखते हुए कहा, कि तू नगर के बाहर बने हुये उस कामदेव के मन्दिर में जाकर कामदेव के सामने अपनी कामना प्रकट कर, तुझे तत्काल सफलता मिलेगी, इस समय तेरे लिये योग बहुत अच्छा है।

बूढ़े की बात सुन कर सुरमंजरी का हृदय-कमल खिल उठा, और प्रसन्न-चित्त होकर मुस्कराते हुए बूढ़े से बोली कि मेरी कामना आज ही पूर्ण हो जायगी ?

बूढ़े ने दृढ़ता के साथ कहा कि, निःसन्देह ऐसा ही होगा।

इतना कह कर बूढ़ा अपनी लाठी उठा कर वहां से चल दिया, और सुरमंजरी अपनी सखी को साथ लेकर कामदेव के मन्दिर की ओर चल पड़ी।

सुरमंजरी ने मन्दिर में पहुँच कर कामदेव के सामने शिर झुका कर, चारों ओर देखते हुए, लजीली वाणी से कहा कि "मैं जीवन्धरकुमार के सिवाय अन्य किसी मनुष्य की जीवन-संगिनी नहीं बनना चाहती, मुझे जीवन्धर की प्राप्ति हो।".

कामदेव की मूर्ति के पीछे छिपे हुए बुद्धिषेण ने कहा कि 'जीवन्धर तुम्हें शीघ्र मिलेंगे।'

सुरमंजरी और उसकी सखी ने समझा कि यह उत्तर स्वयं कामदेव की मूर्ति से मिला है। वे दोनों बहुत प्रसन्न हुई।

वे दोनों जैसे ही कामदेव को नमस्कार करके घर जाने के लिये मुड़ीं, कि उन्होंने देखा कि मन्द-मन्द मुस्कराते हुए जीवन्धर-कुमार उनके समने खड़े हुए हैं।

जीवन्धरकुमार ने मुस्कराहट के साथ कहा कि 'आपकी आज्ञा सहर्ष स्वीकार है।'

सुरमंजरी जीवन्धरकुमार को एक दम अपने सामने खड़ा देखकर बहुत आश्चर्य-चकित हुई, और लज्जा से सिकुड़ गई। जीवन्धर की बात सुनकर उसका मन बहुत आनन्दित हुआ, किंतु संकोच ने उसके मुख पर ताला लगा दिया। लज्जा से उसके दोनों कपोल (गाल) लाल हो गये, और उसकी दृष्टि नीची हो गई, वह पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदने लगी।

सुरमंजरी की चंचल चतुर सखी को तब मजाक सूझा, उसने जीवन्धरकुमार से कहा कि, आपको हमारी सखी की आज्ञा स्वीकार है, तो हमारी सखी को इससे भी पहले जीवंधरकुमार स्वीकार हैं।

सुरमंजरी ने उसकी चुटकी ली।

उसकी सखी बोली, अच्छा सखी! अब तेरी इच्छा पूरी हुई, तेरा वर तुमको तुरंत मिल गया। अब तो तुम दोनों के बीच में मेरा रहना विघ्न कारक होगा, इसलिये मैं जाती हूं।

ऐसा कहकर वह जाने का उपक्रम करने लगी। सुरमंजरी ने लज्जा से मुस्कराते हुए ही उसका आंचल पकड़ लिया।

जीवन्धरकुमार यह कहते हुए एक ओर चले गये कि अच्छा, जब हमारी आवश्यकता होगी, तभी हम आ खड़े होंगे।

दोनों सखियां प्रसन्न-वदन होकर घर को चली गईं। मार्ग में सुरमंजरी की सखी सुरमंजरी से खूब हँसी-मजाक करती गई।

घर पहुंचकर उसने सुरमंजरी की माता से सब समाचार कह सुनाये। सुरमंजरी की माता जीवन्धरकुमार का राजपुरी में आ जाना जानकर बहुत प्रसन्न हुई और कामदेव के मन्दिर की घटना सुनकर उसको बहुत संतोष हुआ, कि अब सुरमंजरी के विवाह की चिन्ता दूर हो जायगी।

सुरमंजरी की माता सुमति द्वारा यह बात कुबेरदत्त को मालूम हुई, तब उसे भी अपनी युवती पुत्री के पाणि-ग्रहण की समस्या सुलझी हुई जान कर अति-प्रसन्नता हुई। कन्या के विवाह-योग्य हो जाने पर उसके विवाह की चिन्ता माता-पिता को व्याकुल कर देती है। यदि सौभाग्य से सुयोग्य वर अनायास (बिना परिश्रम किये) ही मिल जावे तब तो माता-पिता के हर्ष की कुछ सीमा ही नहीं रहती।

जीवंधर के मित्र भी सुरमंजरी और जीवंधर के पारस्परिक मिलन का समाचार सुनकर हर्षित हुए।

कुबेरदत्त ने अच्छा शुभ स्थिर मुहूर्त निकलवा कर सुरमंजरी का पाणि-ग्रहण जीवन्धरकुमार के साथ कर दिया।

जीवन्धर कुछ समय तक सेठ कुबेरदत्त के घर रह कर सुर-मंजरी के साथ प्रेम-क्रीड़ा करते रहे। वार्तालाप के प्रसङ्ग में

जब उन्होंने बुड्ढे की बात छेड़ी तब सुरमंजरी को आश्चर्य हुआ, कि उस बुड्ढे की बात का जीवंधरकुमार को किस तरह पता चल गया। जीवंधरकुमार ने समस्त घटना कह सुनाई। सुरमंजरी ने कहा कि, अच्छा आप बहुरूपिया बनकर भी काम बनाना जानते हैं ?

जीवन्धरकुमार ने उत्तर दिया 'जी हां' स्वार्थ साधन के लिये अथवा प्रिय-मिलन के लिये या सुरमंजरी की कामना सफल करने के लिए जवान को बुड्ढा भी बनना पड़ता है।

इस पर दोनों खूब खिल-खिला कर हँस पड़े।

तदनन्तर जीवन्धरकुमार ने सुरमंजरी को अपना आगामी कार्य-क्रम समझाया और उसको सान्त्वना (तसल्ली) देकर वहां से चला आया, बाग में आकर अपने मित्रों से मिला। मित्रों ने जीवन्धरकुमार को बधाई दी तथा बहुत भारी प्रसन्नता भी प्रगट की।

इस तरह जीवन्धरकुमार ने विमला और सुरमंजरी के साथ राजपुरी के बाग में प्रच्छन्न (गुप्त) रूपसे ठहरे हुए ही विवाह किया। तब मित्रों ने एकत्र होकर मन्त्रणा (सलाह) की, मंत्रणा करके जीवन्धरकुमार सेठ गन्धोत्कट के घर गया और अपने माता-पिता से बहुत विनय के साथ मिला। जीवन्धरकुमार को देख कर सुनन्दा सेठानी और गंधोत्कट को अपार हर्ष हुआ, दोनों ने जीवन्धर को बहुत प्यार किया।

बिछुड़े हुए गुणी बुद्धिमान, वीर सुपुत्र का पुनर्मिलन माता

पिता को बहुत आनन्द-दायक होता है, और यदि मृत्यु के मुख में से बचकर वह पुत्र माता-पिता को आ मिले, तब तो उस आनन्द की कोई सीमा ही नहीं।

जीवन्धर कुमार ने अपने भ्रमण की सब घटनाएँ सुनाईं। उन घटनाओं को सुनकर गन्धोत्कट और सुनन्दा को बहुत प्रसन्नता हुई। पद्मास्य ने अभी-अभी राजपुरी में विमला और सुरमञ्जरी के साथ हुए जीवन्धरकुमार के विवाहों की बात भी कही। इससे सेठ सेठानी को आश्चर्य तथा हर्ष हुआ, साथ ही वे कुछ अप्रसन्न भी हुए कि, यहाँ के विवाहों की सूचना हम को क्यों न दी?

इसके बाद जीवन्धरकुमार अपनी दोनों प्रियतमा जीवन-सहचरियों-गन्धर्वदत्ता तथा गुणमाला से मिले और उनका कुम्हलाया हुआ हृदय तथा मुख प्रफुल्लित किया, उनको आपबीती सारी कथा कह सुनाई। अपने पति के प्रबल भाग्य और पराक्रम की कथा सुनकर दोनों को बहुत आनंद हुआ।

गन्धोत्कट और सुनन्दा ने विमला तथा सुरमञ्जरी को भी घर बुला लिया। जीवन्धर कुमार गन्धोत्कट के घर अपनी चारों पत्नियों को विविध क्रीड़ाओं से आनन्द प्रदान करता हुआ गुप्त-रूप से रहने लगा।



दसवां प्रसङ्ग

जीवन्धरकुमार ने कुछ दिन राजपुरी में गुप्त रूप से रहकर बिताये। फिर सेठ गन्धोत्कट के साथ मन्त्रणा की, कि काष्ठाङ्गार से अपना राज्य लेने के लिये किन उपायों को काम में लेना चाहिये।

गन्धोत्कट ने कहा कि राज्य अधिकार लेने के लिये सफल उपाय शत्रु को युद्धस्थल में हराना ही है। किन्तु शत्रु पर विजय पाने के लिये केवल अपना बल विक्रम ही पर्याप्त (काफी) नहीं होता, इस कार्य के लिये सैन्य-बल भी अवश्य होना चाहिये, इस कारण तुम अपने मामा राजा गोविन्दराज के पास जाकर काष्ठाङ्गार को जीतने का कार्यक्रम बनाओ।

गन्धोत्कट की बात जीवन्धर कुमार को उचित प्रतीत हुई, उसके अनुसार वह माता पिता से आज्ञा लेकर विदेह प्रान्त के धरणी-तिलक नगर में अपने मामा राजा गोविन्दराज के पास पहुंचे।

गोविन्दराज ने जीवन्धरकुमार का बड़े हर्ष और प्रेम के साथ अपूर्व स्वागत किया। उस हर्ष में धरणी-तिलक नगर ऐसा सजाया गया कि वह यथार्थ धरणी-तिलक (पृथ्वी का तिलक) प्रतीत होता था।

संसार में मामा और भानजे का स्वाभाविक स्नेह प्रसिद्ध

है, फिर यदि महान गुणी, तेजस्वी और पराक्रमी भानजा पहले-पहल मामा को आकर मिले, तो उस समय की गाढ़-स्नेह-धारा को शब्दों से नहीं कहा जा सकता ।

गोविन्दराज ने जीवन्धरकुमार को पहले कभी न देखा था, अपनी बहिन रानी विजया से जीवन्धर-कुमार की यश-गाथा सुनी थी, जिससे उसके हृदय में अपने वीर भानजे को देखने की उत्कट इच्छा थी, वह भानजा जब अनायास उसके सामने आगया तब उसके हर्ष का पारावार न रहा। उसने जीवन्धरकुमार अपनी छाती से चिपटा लिया और नेत्रों के स्वाभाविक हर्ष-आंसुओं से जीवन्धर का शिर गीला कर दिया ।

उसने जीवन्धरकुमार का बहुत अच्छा सन्मान करने के बाद उस को विजया रानी से मिलाया। जीवन्धरकुमार ने मातृ-भक्ति में गद्गद् होकर माता के चरण-स्पर्श किये, और शिर झुका कर प्रणाम किया । विजया ने जीवन्धरकुमार को शुभाशीर्वाद दिया, कि 'पुत्र ! चिरकाल तक स्वस्थ-निष्कण्टक राजसुख भोगो ।'

तदनन्तर गोविन्दराज ने अपनी रानी आदि पारिवारिक जनों को जीवन्धर का परिचय कराया, सभी व्यक्तियों ने जीवन्धर के साथ बहुत प्रेम और हित प्रगट किया ।

स्वागत-सन्मान आदि समाप्त हो जाने पर जीवन्धरकुमार ने एकान्त में राजा गोविन्दराज के साथ राजपुरी का राजसिंहासन प्राप्त करने के लिये मन्त्रणा (सलाह) की । राजा गोविन्दराज ने

जब से अपने भगिनी-पति (बहनोई) सत्यन्धर राजा का निधन समाचार (मरण) और काष्ठाङ्गार के दुष्ट कपटाचार के समाचार सुने थे, तब से ही उनके हृदय में काष्ठाङ्गार के लिये बहुत घृणा और तीव्र दुर्भावना उत्पन्न हो गई थी, वे काष्ठाङ्गार से इस कुकृत्य का बदला लेना चाहते थे। किन्तु इसके लिये कोई अवसर उनके हाथ न आ पाया। फिर धीरे-धीरे वह द्वेष की चिनगारी और भी मन्दी होती गई, किन्तु वह अभी तक बुझने न पाई थी।

दूरदर्शी बुद्धिमान पुरुष बिना उचित अवसर आये कोई काम प्रारम्भ नहीं करता। तथा, प्रत्येक कार्य का कोई न कोई समय निश्चित है, उससे पहले वह कार्य होता भी नहीं, परन्तु मनुष्य उस समय को नहीं जान पाता। इसी लिये वह अवसर की राह देखा करता है।

जीवन्धरकुमार की बात सुन कर गोविन्दराज के हृदय में काष्ठांगार के लिये दबी हुई विद्वेष-भावना हरी-भरी हो गई, उनके नेत्रों में रक्त उतर आया, मुख पर लालामी छा गई और उनकी वाणी में क्रोध लहराने लगा। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे कि गोविन्दराज के हृदय में राख से दबी हुई चिनगारी जीवन्धर की बातों की हवा पाकर काष्ठाङ्गार को भस्म करने के लिये फिर दहकने लगी है, और उनके हृदय की सारी गर्मी फूट-फूट कर उनके मुख-मण्डल पर प्रगट होती जा रही है।

गोविन्दराज ने अपने बुद्धिमान मन्त्रियों को बुलाया और

काष्ठाङ्गार का निर्मूल नाश करने के लिये विचार करने लगे।

संयोग से इसी समय राजपुरी से काष्ठांगार का एक दूत एक बहुत लम्बा चौड़ा पत्र लेकर राजा गोविन्दराज के पास आया।

काष्ठाङ्गारने अपने पत्र में लिखा था—

"श्री महामहिम वीरवर न्यायकुशल नीतिनिपुण निष्कण्टक शासक, धर्मिप्रवर मित्रवर धरणी-तिलक-नरपति श्री गोविन्दराज महाराज !

राजपुरी के सिंहासन से काष्ठाङ्गार भूपतिका प्रेम-सहित अभिवन्दन।

आपके स्वस्थ प्रसन्न चरणों में राज-लक्ष्मी नृत्य कर रही है, ऐसी मुझे ध्रुव आशा है।

चिर समय से आपके कुशल समाचार प्राप्त न हो सके इसकी उत्सुकता सदा चित्त को व्याकुल बनाये रखती है। यह व्याकुलता दूर करेंगे, ऐसा निश्चय है।

महान-उपकारी प्रख्यात-वीर, आदर्श-शासक राजपुरी के राजसिंहासन के उज्जल भूषण महाराज सत्यन्धर का जब से मदोन्मत्त पट्ट-हाथी द्वारा निधन (मृत्यु) हुआ है, तब से मेरा मन बहुत विरक्त रहता है, किसी राजकार्य में चित्तनहीं लगता। निकट सम्पर्क रखने-वाले व्यक्ति महाराज सत्यन्धर की इस दुर्घटना से होने वाली मृत्यु को सत्य समझते हैं, किन्तु कुछ व्यक्ति इस विषय में अभी तक अनभिज्ञ हैं। उनको महाराज सत्यन्धर के मरण में मेरे हाथ होने की संभावना अभी तक भ्रम

में डाले हुये है। मैं इस धारणा को निर्मूल करने में आपकी सहायता चाहता हूं।

बहुत दिनों से आपका साक्षात्कार भी नहीं हुआ।

अतः मेरी प्रबल इच्छा है, कि आप एक बार अपने दल-सहित राजपुरी पधारने की कृपा करें। आपका भव्य राजकीय स्वागत करके मेरा चित्त बहुत प्रसन्न होगा।'

मन्त्री ने जब काष्ठाङ्गार का पत्र पढ़कर सुनाया, तब गोविंदराज के मुख से अचानक ये शब्द निकल पड़े कि 'काष्ठाङ्गार ने अपने आप मृत्यु को निमन्त्रण दिया है।' गोविन्दराज ने क्षण भर गम्भीरता से सोचकर मन्त्री से कहा, मन्त्री जी! काष्ठाङ्गार का निमन्त्रण स्वीकार करके हमको अपने दल-बल के साथ राजपुरी अवश्य चलना चाहिये।

विचारशील मंत्री ने भी राजा की इस बात का समर्थन किया, कि जिस बात को आप अपनी ओर से करना चाहते थे उसको स्वयं काष्ठांगार करा रहा है। इससे बढ़कर सुनहरी अवसर और कौन-सा मिल सकता है। इस कारण आप राजपुरी पहुंचने की अपनी स्वीकारता पत्र द्वारा काष्ठाङ्गार को अवश्य भेज दें।

तदनुसार मंत्री ने एक अच्छा कूटनीति-पूर्ण पत्र लिखकर काष्ठाङ्गार के दूत को दे दिया।

काष्ठांगार का दूत, मानो मृत्यु का दूत बनकर काष्ठांगार के पास रवाना हो गया। चींटी के पंख (पत्र) जिस तरह से

चींटी की मृत्यु को निकट बुलाते हैं, इसी तरह काष्ठाङ्गार के पत्र ने भी अपनी मृत्यु को अपने निकट बुलाया।

दूत के चले जाने पर गोविन्दराज ने अपने मन्त्रियों तथा जीवन्धरकुमार के साथ बहुत देर तक गुप्त-मन्त्रणा की। उसमें इसी बात का निर्णय हुआ कि अपने कृत्रिम (बनावटी) प्रेम की आड़ में अपने पूर्ण सेना-बल के साथ शीघ्र ही राजपुरी के लिये प्रस्थान किया जावे।

उसके अनुसार राजा गोविन्दराज ने नगर में घोषणा कराई, कि राजपुरी-नरेश काष्ठाङ्गार के निमन्त्रण पर हम प्रेम-भाव स्थापित करने के लिये राजपुरी जा रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति इस कार्य की सफलता के लिये शुभकामना मनावे।

उधर प्रधान सेनापति को अपनी चतुरंग सेना तयार करने की आज्ञा दी। सेनापति ने राजाज्ञा पाते ही समस्त चतुरंग (घोड़े सवार, हाथी सवार, रथ-सवार योद्धा तथा पैदल सेना) सेना राजपुरी की ओर प्रस्थान (कूच) करने के लिये तयार कर दी।

सब तयारी हो जाने पर शुभमुहूर्त में गोविन्दराज ने बड़े समारोह से राजपुरी की ओर प्रयाण किया। चलने से पहले जीवन्धरकुमार ने अपनी माता के चरण छूकर, शिर झुकाकर नमस्कार किया। विजया रानी ने बड़े उत्साहपूर्वक जीवन्धर के मस्तक पर तिलक लगाया, शिर पर अक्षत छिड़के और दाहिनी भुजा पर बाजू-बन्ध बांधकर शुभ आशीर्वाद दिया।

आशीर्वाद पाकर जैसे ही जीवन्धरकुमार ने राजभवन से बाहर पैर रक्खा कि उसकी दाहिनी भुजा फड़कने लगी। सामने दही का भरा हुआ घड़ा मिला, हरे-भरे फलदार वृक्ष पर कोयल की मीठी कूक सुनाई दी, मैना ने जय-जय की ध्वनि से जीवन्धर की भावी विजय का शुभ-संकेत किया। गोविन्दराज को भी अनेक शुभ शकुन मिले।

राजा गोविन्दराज अपने मंत्रियों तथा जीवन्धरकुमार के साथ विशाल सेना को लेकर कुछ ही दिनों में राजपुरी जा पहुंचा। नगर के बाहर विशाल मैदान में अनेक विशाल पटमण्डप (तम्बू) तुरन्त खड़े हो गये। सेना के लिये बड़ा भारी शिविर तैयार हो गया। गोविन्दराज ने अपने परिकर के सब व्यक्तियों को यथा-स्थान ठहरा दिया।

काष्ठांगार को जब गोविन्दराज के आने का समाचार ज्ञात हुआ, तब उसने कपट-भाव से बहुत प्रसन्नता प्रगट करते हुये गोविन्दराज का बहुत भारी स्वागत किया, और अनेक प्रकार के उपहार (भेंटें) गोविन्दराज के पास भेजकर अपना गाढ़-प्रेम दिखलाया।

बुद्धिमान गोविन्दराज दुष्ट काष्ठांगार के इस बनावटी प्रेम को अच्छी तरह जानता था, अतः उसने भी इसके उत्तर में काष्ठांगार के पास अनेक उपहार भेजे जिनको पाकर काष्ठांगार बहुत प्रसन्न हुआ और उसने समझ लिया कि गोविन्दराज के मन में मेरे लिये कुछ मैल नहीं है, वह मुझको अपना सच्चा

प्रिय मित्र समझता है, इस कारण जिस अभिप्राय से मैंने राजा गोविन्दराज को अपने यहां पर बुलाया है, मेरा वह अभिप्राय अवश्य सफल हो जायगा।

काष्ठांगार को अपनी मित्रता का और भी अधिक विश्वास कराने के लिये गोविन्दराज ने एक चाल और चली। उसने वहीं पर अपनी सुन्दरी, स्वस्थ, गुणवती, युवती कन्या के लिये सुयोग्य वर प्राप्त करने के लिये काष्ठांगार की सम्मति लेकर एक चन्द्रक (चन्द्र सरीखा) यन्त्र बनाया, उस यन्त्र के ऊपर आकाश में एक निरन्तर घूमने वाला अलात-चक्र लगाया। 'जो धनुषधारी वीर चन्द्रक-यन्त्र पर चढ़कर वेग से घूमते हुए अलात-चक्र में बने हुए वराहों (सूकरों) को अपने बाण से वेध देगा, उस को मैं अपनी पुत्री प्रदान करूंगा।' इस तरह की घोषणा गोविन्द-राज ने राजपुरी में तथा राजपुरी के पड़ोसी राज्यों में करवाई।

विदेहराज की सुन्दर कन्या पाने की आशा से अनेक वीर धनुर्धर और आस-पास के सभी राजा अपने-अपने मित्र आदि परिकर के साथ राजपुरी में एकत्र हो गये।

नियत समय पर लक्ष्य-वेध का कार्य प्रारम्भ हुआ। अच्छे प्रसिद्ध बाणविद्या-विशारद बारी-बारी से उत्साह और आशा लेकर चन्द्रक-यन्त्र पर चढ़कर बाण से उन घूमते हुए वराहों को वेधने का यत्न करने लगे, किन्तु उनमें से कोई भी सफल न हो सका। किसी का बाण कुछ दूर से और किसी का बाण उस लक्ष्य (निशाना) के बहुत समीप से निकल गया। जो धनुषधारी

उस लक्ष्य से चूक जाता था, वह बहुत लज्जित और निराश होकर अपने स्थान पर बैठ जाता था।

जब सब धनुर्धर इस कठिन परीक्षा में असफल हो गये, तब जीवन्धरकुमार ने मुस्कराते हुए अपना धनुष उठाया और जोर से धनुष की डोरी की टङ्कार की। देखने वालों की दृष्टि धनुष की टंकार सुनकर जीवन्धर की ओर आकर्षित हुई। जीवन्धरकुमार ने चन्द्रक यन्त्र पर चढ़ कर क्षण भर लक्ष्य की ओर बाण की नोंक ठहराई, फिर डोरी खींच कर जैसे ही बाण छोड़ा कि घूमते हुए तीनों वराह पृथ्वी पर आ गिरे।

देखने वाली जनता ने तथा जीवन्धरकुमार के मित्रों ने बहुत ऊंचे स्वर से हर्ष-ध्वनि की और जीवन्धरकुमार का जयकार किया। चारों ओर से बहुत भारी हर्ष-सूचक कोलाहल मच गया। कुछ देर पीछे जब कोलाहल शान्त हुआ, तब ठीक अवसर देख-कर विदेह-नरेश गोविन्दराज उठे और मञ्च पर आकर उन्होंने घोषणा की कि—

'आपके सामने अभी जिस वीर युवक ने लक्ष्य-वेध करके अनुपम विजय प्राप्त की है, वह युवक राजपुरी के भूतपूर्व शासक राजा सत्यन्धर का सुपुत्र और मेरा भानजा जीवन्धरकुमार है।'

गोविन्दराज की यह बात सुनते ही न्यायी, नीतिनिपुण राजाओं तथा अन्य लोगों को बहुत हर्ष हुआ कि सत्यन्धर राजा का पुत्र अभी जीवित है और वह अच्छा प्रसिद्ध वीर है। गुण-माला, विमला और सुरमञ्जरी के पिताओं के हर्ष का ठिकाना

न रहा क्योंकि उनको यह बात आज ही मालूम हुई कि उनका जामाता जीवन्धरकुमार राजपुत्र है। राजपुरी के ग्वाले तथा राजा-सत्यन्धर की राजनीति से प्रेम करने वाले सभी मनुष्यों को बहुत आनन्द हुआ और हर्ष में उन्मत्त होकर सभी जीवन्धरकुमार की जय बोलने लगे।

परन्तु कुछ ईर्ष्यालु राजा जो कि अभी लक्ष्य-वेध करने में असफल रहे थे, वे जीवन्धरकुमार का अभ्युदय और यश देखकर जलने लगे। काष्ठाङ्गार के हृदय को सब से अधिक धक्का लगा, उसके मुख का रंग तत्काल पीला पड़ गया। उसको अपने चारों ओर अन्धकार दिखाई देने लगा, उसने सोचा कि—

मैंने इस जीवन्धर को शूली पर चढ़ाने का प्राण-दण्ड दिया था, मेरे साले मथन ने स्वयं अपने सामने इसे शूली पर चढ़ाया था, फिर भी यह जीवित कैसे बच गया? क्या यह सचमुच वही जीवन्धर है? मेरे नेत्र धोखा तो नहीं खा रहे? यह तो महान् योद्धा और प्रसिद्ध वीर है। इसका मामा गोविन्दराज भी अपनी सेना लेकर यहां आ गया है, अब मेरी क्या गति होगी? मैंने गोविन्दराज को निमन्त्रण देकर अपनी मृत्यु को क्यों अपने पास बुलाया? गोविन्दराज भी बहुत धूर्त निकला, मैंने क्या सोचा था और हो क्या गया?

अनीति का विचार न करके काष्ठांगार के कुछ मित्रों ने अनेक ऊंची-नीची बातें कह कर काष्ठांगार को भड़काया और जीवन्धर को तत्काल परलोक पहुँचा देने के लिये उकसाया।

काष्ठाङ्गार की मृत्यु निकट आ चुकी थी, उसकी बुद्धि ने काम करना छोड़ दिया था इस कारण वह भी उनकी बातों में आ गया और उसने जीवन्धरकुमार को मार डालने का आदेश दे दिया।

दोष-ग्राही दुर्जन पुरुष अपनी दुर्भावना से पाप संचित करता रहता है। जब उसके पाप का घड़ा भर जाता है, तब अपनी दुर्मति से उसे कोई ऐसा निन्दनीय कार्य करना सूझता है जो उसकी मृत्यु का साधन बन जाता है। काष्ठाङ्गार भी उन ही प्राणियों में से था। अपने उपकारी राजा सत्यन्धर को धोखे से मरवा कर अब उसने उसके पुत्र को भी मरवाना चाहा, किन्तु पाप का घड़ा भर चुका था, अतः उसने अपनी मृत्यु स्वयं अपने पास बुला ली।

जीवन्धरकुमार और उसके मित्र तथा गोविन्दराज पहले से ही सावधान तथा तय्यार थे, वे तो इसी बात की प्रतीक्षा कर रहे थे। जीवन्धर ने अपना धनुष उठाया और उस पर चन्द्र बाण चढ़ाकर काष्ठाङ्गार को लक्ष्य बनाया। बाण सनसनाता हुआ काष्ठांगार के कण्ठ में जा लगा और तुरन्त काष्ठांगार का शिर पके हुए फल की तरह पृथ्वी पर जा गिरा।

जीव जिस दिन जन्म-ग्रहण करता है, उसी दिन उसकी मृत्यु का दिन उसके भाग्य में निश्चित हो जाता है। सौभाग्य-शाली प्राणी यशके साथ सुख-पूर्वक अपने समय पर शरीर छोड़ देते हैं, जब कि अभागे प्राणी या तो रोग व्याधि से वेदना

पाकर मरते हैं अथवा मृत्यु समय भी उनसे कोई ऐसा बुरा काम हो जाता है जिस से उनका अपयश चिरकाल तक चला जाता है।

काष्ठांगार के मरते ही जीवन्धरकुमार के पक्ष में विजय के नगाड़े बजने लगे और काष्ठांगार की सेना में भगदड़ मच गई।

मुख्य शत्रु के मर जाने पर जीवन्धरकुमार ने अन्य निरपराध जनता को मारना उचित न समझा, इस कारण उसने युद्ध बन्द करने की आज्ञा दे दी। तत्काल युद्ध बन्द हो गया। जीवन्धर ने काष्ठाङ्गार की ओर से लड़ने वाले सैनिकों को अभयदान दिया। जीवन्धर की इस उदारता का सेना पर अच्छा प्रभाव पड़ा और वह सारी सेना जीवन्धर के पक्ष में आ गई।

जो राजा वहां आये हुए थे, वे सभी जीवन्धर की प्रशंसा करने लगे। सब से अधिक आनन्द गोविन्दराज को हुआ कि 'मेरी बहिन विजया आज वीर-माता हो गई और मेरी पुत्री वीर-पत्नी बन गई। उसने जीवन्धरकुमार की पीठ ठोंकी और उसको गोद में उठा कर बहुत हर्ष मनाया। जीवन्धर के मित्रों के तथा गन्धोत्कट और नन्दाढ्य के हर्ष का कुछ पारावार न था। गन्धर्वदत्ता, गुणमाला, विमला और सुरमञ्जरी ने जब अपने प्राण-पति जीवन्धरकुमार की विजय का समाचार सुना तब वे एकत्र होकर हर्ष से नाचने लगीं।

काष्ठाङ्गार की मृत्यु का समाचार बिजली की तरह राजपुरी में फैल गया। राजपुरी की जनता जीवन्धरकुमार का अभिनन्दन करने के लिये नगर से निकल कर जीवन्धरकुमार के पास एकत्र

होने लगी, राजपुरी के समस्त सामन्तों ने आकर जीवन्धरकुमार के सामने शिर झुका कर उसकी अधीनता स्वीकार की।

जिस तरह जगत प्रभात-कालीन सूर्य का सम्मान करता है, उसी तरह प्रजा राज-सिंहासन पर अधिकार जमाने वाले नवीन राजा को शिर झुकाती है।

राजपुरी का प्रत्येक बाजार, गली, मकान, मन्दिर अद्भुत सजावट से सजाये गये, थोड़ी-थोड़ी दूर पर द्वार बनाये गये जिन पर सुन्दर वन्दन-वारें लटकाई गईं। अपने राजा के स्वागत के लिये राजपुरी नई दुलहिन की तरह सुन्दर शृङ्गार, सजावट करके तैयार हो गई।

शुभ मुहूर्त के समय वीर जीवन्धरकुमार ने राजसी ठाट के साथ राजपुरी में प्रवेश किया। सबसे आगे सैनिक बाजे बजते हुए चल रहे थे, उनके पीछे विजय-पताका फहराते हुए घुड़-सवार सैनिक पंक्तिवद्ध चल रहे थे। घुड़-सवारों के बाद हाथियों की सेना जा रही थी, हाथियों के पीछे रथ-सवार सेना थी, रथों के पीछे पैदल-सेना के सैनिक चल रहे थे। पैदल-सेना के पीछे ऊंचे खुले हुए राज-रथ में वीर जीवन्धरकुमार तथा उनके धर्म-पिता सेठ गन्धोत्कट और मामा गोविन्दराज भी बैठे थे। रथ में अनेक सफेद घोड़े जुते हुए थे। घोड़े गर्व से गर्दन उठाकर, हर्ष से हिन-हिना रहे थे। जीवन्धर कुमार के रथ के पीछे अंगरक्षक घुड़-सवार सैनिकों की पंक्ति थी।

जीवन्धरकुमार को देखने के लिये राजपुरी के नर-नारी

बाजारों, गलियों और मकानों की छतों पर छाये हुए थे। जिस दुकान, मकान के सामने से जीवन्धर कुमार का रथ निकलता था उस मकान, दुकान के स्त्री-पुरुष हर्ष के साथ जयध्वनि करते हुए जीवन्धरकुमार के ऊपर पुष्प-वर्षा करते थे, जीवन्धरकुमार मुस्कराते हुए सबको देखकर उनका आदर सत्कार स्वीकार करते जाते थे।

यह चल-समारोह (जलूस) राजपुरी के सभी मुख्य मार्गों पर घूमा, फिर अन्त में राजभवन के द्वार पर जा पहुँचा। वहां पर अपने नये राजा के स्वागत में तोपों से हर्ष-सूचक गोले छोड़े गये। राजभवन में बड़ा भारी प्रकाश किया गया। राजभवन के द्वारपाल, चाकर तथा प्रबन्धकों ने बारी-बारी से आकर जीवन्धर कुमार को शिर झुकाकर प्रणाम करते हुए यथायोग्य भेंट की। राजमंत्रियों ने बड़े आदर के साथ जीवन्धरकुमार को रथ से उतारा और भवन में प्रवेश कराते हुए स्वागत किया। उस समय हर्ष के बाजे बजने लगे, उन बाजों की ध्वनि से कान बहरे हुए जाते थे।

राजभवन में घुसते ही जीवन्धरकुमार सबसे पहले देवमंदिर में गये और बड़े उत्साह, भक्ति तथा हर्ष के साथ भगवान का दर्शन, स्तवन और पूजन किया।

तदनन्तर जीवन्धरकुमार को अपने मित्र सुदर्शन यक्षका स्मरण हो आया। स्मरण करते ही सुदर्शन यक्ष जीवन्धरकुमार के पास आ गया। यक्ष ने वहां आते ही अपूर्व हर्ष-उत्सव मनाया।

गोविन्दराज का संकेत पाकर सुदर्शन यक्ष अनेक तीर्थों और नदियों से पवित्र स्वच्छ जल भर लाया, तब उस जल से यक्ष ने तथा गोविन्दराज ने जीवन्धरकुमार का राज-अभिषेक किया और उसको राजकीय वस्त्र-आभूषण पहनाये, फिर बड़े उत्सव के साथ जीवन्धरकुमार को राज-सिंहासन पर बिठाया। जीवन्धरकुमार एक तो वैसे ही सुन्दर था, फिर राजकीय वस्त्र-आभूषणों से उसकी शोभा और भी अधिक बढ़ गई। राज-सिंहासन पर बैठा हुआ जीवन्धरकुमार ऐसा मालूम होता था जैसे कि सौधर्म इन्द्र अपने सिंहासन पर बैठा हो।

तब राजपुरी के करद (कर देने वाले छोटे राजा) राजाओं ने बारी-बारी से आ आ कर जीवन्धर कुमार को नमस्कार करके अपनी-अपनी भेंट देते हुए जीवन्धरकुमार की अधीनता स्वीकार की। तदनन्तर सामन्त लोग (जागीरदार) यथाक्रम से आये और भेंट अर्पण करते हुए शिर झुका कर अपनी-अपनी राज-श्रद्धा प्रगट करने लगे। उनके पीछे राजमन्त्री, सेनापति, आदि राज-अधिकारियों ने जीवन्धरकुमार को नमस्कार करके उनका शासन स्वीकार किया। उसके पश्चात् नगर के प्रमुख पुरुषों ने जीवन्धरकुमार को क्रम से अपनी-अपनी श्रद्धाञ्जलि भेंट की।

इस प्रकार जीवन्धरकुमार को राजपुरी का नवीन राजा घोषित किया गया। नये राजा के हर्ष में राजपुरी की जनता ने घी के दीपक जलाकर बड़ा भारी प्रकाश किया, मन्दिरों में घण्टे बजाये, नगाड़े, वीणा बांसरी की ध्वनि घर-घर से सुनाई

देने लगी। दीन भिक्षुक लोगों को वस्त्र भोजन स्थान-स्थान पर वितरण होता रहा, नाटक घरों में अनेक प्रकार के नृत्य-गान होने लगे। इस प्रकार भारी उत्सव राजपुरी में अनेक दिन तक होता रहा।

जीवन्धरकुमार ने राजसत्ता पाकर काष्ठाङ्गार के परिवार को समस्त सुख-सुविधा देकर सन्तुष्ट किया।

उदार सज्जन वीर पुरुष अपने शत्रु को ही दण्ड देते हैं, शत्रु के परिवार के साथ उनका सद्व्यवहार रहता है।

जीवन्धरकुमार ने अपने धर्म-पिता सेठ गन्धोत्कट को पूज्य पिता के पद पर स्थापित किया। अपने धर्म-भ्राता नन्दाढ्य को युवराज बनाया। धरणीतिलक नगर से अपनी माता विजया रानी को बड़े समारोह के साथ राजकीय ठाठ से बुलाया और राजपुरी में उसका महान स्वागत किया। विजया चिरकाल पीछे अपने राजभवन में आकर सन्तुष्ट हुई, अपने पुत्र को राज-आसन पर बैठा देखकर उसको बहुत हर्ष हुआ। जीवन्धरकुमार ने राज-भवन में अपनी माता को उच्च-आसन पर बिठा कर उस के चरण धोए और उसके चरणों में अपना मस्तक रख कर गद्गद स्वर में कहा कि 'माता जी! अपने पुत्रका अपराध क्षमा करो, मेरे रहते हुए आपको बहुत से कष्ट कष्ट सहन करने पड़े। अब अपने पुत्रको आदेश दो, आप की आज्ञा राज-आज्ञा से भी ऊपर होगी।'

विजया रानी अपने पुत्र का विनय और सौजन्य देखकर

बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुई। सबसे अधिक सन्तोष उसे इस बात का हुआ कि उसके वीर पुत्रने अपने पिता का राज-आसन अपने वीर-कर्म से प्राप्त किया है। विजया के मन में अपने राजभवन को देखकर अपने यौवन के विलास-क्रीड़ा वाले सुखमय दिवस तथा अपने अनन्य प्रेमी, पत्नी-परायण राजा सत्यन्धर का स्मरण हो आया, इस कारण उसके हृदय में दुख की लहर भी उठी। इस तरह अनेक मिश्रित भावों के साथ हर्ष-अश्रु तथा शोक-अश्रुओं के साथ गद्गद वाणी में 'उठ पुत्र! तू धन्य है, तू ने अपने पिता की लाज रखली, तू सिंहका शिशु—सिंह ही सिद्ध हुआ, मुझे तुझ पर गर्व है। अब निष्कण्टक होकर इस राज्य का दीर्घ समय तक संचालन कर। तुझे कोई भी राजनैतिक, शारीरिक, मानसिक कष्ट न हो।' आशीर्वाद देते हुए विजया ने जीवन्धर को उठाया, और उसे बहुत देर तक मौन भाव से अपने हृदय से चिपटाये रही, फिर उसकी पीठ ठोंकी, शिर पर हाथ फेरा और उसके मुख का चुम्बन किया।

जीवन्धरकुमार अपनी माता का स्नेह पाकर धन्य हो गया, उसको बड़ा हर्ष हुआ। उसने विजया रानी को तथा अपनी धर्म-माता सुनन्दा को राज-माता के पद पर प्रतिष्ठित किया।

गन्धर्वदत्ता, गुणमाला, विमला तथा सुरमञ्जरी, अपनी इन चारों पत्नियों को सेठ गन्धोत्कट के घर से राज-सन्मान के साथ राजभवन मे बुला लिया। अपने आपको राज-पत्नी के रूप में पाकर वे सब बहुत प्रसन्न हुईं। उन चारों ने राजभवन में आकर

अपनी सास—राजमाता विजया के चरण बड़ी विनय और श्रद्धा से छुए। जीवन्धरकुमार ने अपने पद्मास्य आदि मित्रों को यथा-उचित राज-अधिकारी बनाया।

"बारह वर्ष तक किसी से कोई कर (टैक्स) न लिया जा-यगा।" इस तरह की घोषणा करके जीवन्धर ने अपनी प्रजा को सन्तुष्ट किया।

तदनन्तर जीवन्धरकुमार ने अपनी विवाहित पत्नी पद्मा को चन्दाभा नगरी से, क्षेमपुरी से क्षेमश्री को और हेमाभा नगरी से कनकमाला को राजसी ठाट बाट के साथ बुलवाया। उन तीनों नवोढाओं (नई विवाहित पत्नियों) को जीवन्धरकुमार के वियोग का असह्य दुख था, उनको जब अपने पति का सुख समाचार मिला तथा राज-पद पाने की वार्ता सुनी, तो वे अपने सब दुख भूल गईं, उनको बहुत आनन्द हुआ, तथा शीघ्र से शीघ्र अपने पति से मिलने की मधुर उत्सुकता उनके हृदय में जागृत हो उठी।

उनके माता पिताओं को भी बहुत हर्ष हुआ, 'उनकी पुत्रियां राजपुरी के रानी बन गई हैं, यह बात उन्हें बड़ी आनन्द-दायिनी प्रतीत हुई। उन्होंने अच्छे-अच्छे बहुमूल्य उपहारों के साथ अपनी-अपनी पुत्रियों को बहुत धूम-धाम से विदा किया और साथ ही जीवन्धरकुमार को राजकीय वस्त्र-आभूषण तथा वर्द्धापन (बधाई) भेजा।

उन सभी राजपत्नियों का राजपुरी में राजकीय स्वागत हुआ और वे बड़े उत्सव के साथ धूम-धाम से राजभवन में लाई गईं।

राजभवन में पहुँच कर उन्होंने प्रथम ही राज-माताओं के चरण स्पर्श किये। सुनन्दा और विजया रानी उन सर्वाङ्गसुन्दरी, नवयुवती, विनयशीला पुत्र-बधुओं को देखकर बहुत हर्षित हुईं, दोनों राजमाताओं ने उनको शुभ-आशीर्वाद दिया।

तदनन्तर वे तीनों जीवन्धरकुमार से मिलकर अपना अतीत मानसिक दुख भूलकर अति प्रसन्न हुईं। जीवन्धरकुमार ने अनेक प्रेम-वार्ताओं से उनका चित्त हरा भरा कर दिया।

यह सब हो जाने पर गोविन्दराज ने धरणीतिलक नगर से अपनी सुलक्षणा रूपवती, युवती, गुणवती 'लक्ष्मणा' पुत्री को राजपुरी बुलवाया। वहां एक विशाल सुन्दर विवाह-मण्डप बनवाया तथा शुभ मुहूर्त में जीवन्धरकुमार के साथ उस कन्याका पाणिग्रहण कर दिया। साथ ही अनेक हाथी घोड़े, रत्न सुवर्ण आदि विपुल सम्पत्ति प्रदान की।

इस प्रकार धरणीतिलक का भूपति गोविन्द राज अपने प्रिय-भगिनी सुत (भानजे) जीवन्धरकुमार को राजपुरी के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित करके तथा उसको अपना जामाता भी बनाकर अपने नगर को लौटा। जीवन्धरकुमार ने अपने मामा का बहुत आभार मानते हुए उसको बहुत विनय और आदर के साथ विदा किया।

जीवन्धरकुमार ने गन्धर्वदत्ता, गुणमाला, पद्मा, क्षेमश्री, कनकमाला, विमला, सुरमञ्जरी, और लक्ष्मणा, अपनी इन आठों रानियों में गन्धर्वदत्ता को पट्टरानी बनाया।



ग्यारहवां प्रसंग

जीवन्धरकुमार ने राज-सत्ता पाकर राज-नीति के अनुसार सबसे प्रथम अपने अन्तरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। भय, प्रमाद, क्रोध, मद, काम और लोभ ये ६ दुर्गुण अन्तरंग राज-शत्रु हैं। जीवन्धरकुमार सिंह के समान निर्भय था, वह केवल अन्याय, अनीति और पापक्रिया से ही डरता था। इसके सिवाय और किसी प्रकार का भय उसके हृदय में न था। राज्य के प्रत्येक कार्य में वह सदा सावधान और तत्पर रहता था। जो कार्य जिस समय करना चाहिये वह कार्य ठीक उसी समय कर डालता था, उसे आगे के लिये न टालता था। राजसुखों का उपभोग करते हुए भी प्रमाद (आलस्य) को अपने पास न फटकने देता था।

राज्य के प्रत्येक कार्य को बड़े ठंडे दिमाग से सोचता था। सदा प्रसन्न-मुख रहता था, उसे अन्याय और अकृत्य पर ही क्रोध आता था, इसके सिवाय शान्तचित्त रहता था।

राज-सिंहासन पाकर भी दूषित अभिमान से वह दूर रहता था। अपने पूज्य, आदरणीय स्त्री-पुरुषों के सामने सदा विनय-शील रहता था और अपनी प्रजा के सामने कोमल-स्वभाव रहा करता। सभी छोटे-बड़े व्यक्ति निःसंकोच उसके पास पहुँच कर अपने दुःख-कठिनाइयों को कह सकते थे।

उसको अपने पिता राजा सत्यन्धर की मृत्यु का ज्ञान था,

अतः वह अपनी सर्वाङ्ग सुन्दरी, नवयुवती आठ रानियों के रहते हुए भी कामवासना में अति-आसक्त न रहता था। राजकार्य के समय उसके हृदय से काम-विकार दूर रहा करता था, परदार-लम्पट तो वह था ही नहीं। वह अन्य इन्द्रियों के विषयों का भी दास न था—इन्द्रिय-विजेता था।

तथा—वह अनुचित लोभ से भी अछूता रहता था–राजकोष (खजाने) को बढ़ाने के लिये किसी अनीति से धन प्राप्त करने का या प्रजा को पीड़ादायक कर लगाने का विचार भी उसके हृदय में न आने पाता था। बारह वर्ष पीछे भी उसने प्रजा पर कर (टैक्स) इस प्रकार लगाये जिनको जनता बड़ी सरलता और प्रसन्नता के साथ देती थी। फूलों से रस चूसते हुए जैसे मधु-मक्खी फूलों को कष्ट नहीं होने देती, उसी प्रकार वह अपनी प्रजा पर राजकार्य चलाने के लिये जो कर लगाता था उस कर से प्रजा को रंचमात्र भी कष्ट अनुभव न होता था।

उसने अपने राजकार्य संचालन के लिये पृथक्-पृथक् अनेक विभाग बना दिये थे और सब विभागों पर अच्छे कार्यकुशल विश्वस्त अधिकारी नियुक्त किये थे। उसका गुप्तचर विभाग उसको अपने राज्य की तथा पड़ोसी राज्यों की सभी गुप्त-रहस्य की बातें बताया करता था। जीवन्धर ने प्रजाकी रक्षा तथा व्यापार का अच्छा प्रबन्ध और संगठन किया था। चोरी, लूट, हत्या, बलात्कार आदि बातें उसके राज्य में कहीं भी सुनाई न देती थीं, जीवन्धरकुमार यद्यपि सौम्य, शान्त, निरभिमानी था किन्तु वह

बड़ा तेजस्वी और पराक्रमी था। इसी कारण अन्याय अत्याचार करने का किसी को भी साहस न होता था।

वह रात्रि के अन्तिम पहर में (ब्राह्म मुहूर्त में) उठता, उसी समय उसकी आठों रानियां भी शय्या छोड़ देतीं। सबसे प्रथम जीवन्धरकुमार अपनी रानियों सहित कुछ देर तक भगवान् की बन्दना स्तुति और ध्यान करता, फिर शौच (मलमूत्र त्याग) से निवृत्त होकर मुख प्रक्षालन, स्नान आदि नित्य दैनिक कार्यों से निपटता था, तदनन्तर अपनी सभी रानियों के साथ देवमन्दिर में जाता और बड़ी भक्ति तथा उत्साह से भगवान् का दर्शन, स्तवन और पूजन करता। फिर सामायिक करता, सामायिक के पीछे स्वाध्याय करता था।

धार्मिक नित्य-नियम कर लेने पर राजभवन में आता और अपनी सब रानियों के ही साथ बड़े प्रेम से भोजन करता। भोजन के अनन्तर कुछ समय विश्राम करता, फिर राज-वस्त्र आभूषण पहन कर तैयार हो जाता और मंत्रणागृह में जाकर अपने मंत्रियों के साथ राज-कार्यों का विचार-परामर्श करता रहता था।

तत्पश्चात् ठीक नियत समय पर राजसभा में पहुँचकर राज-सिंहासन पर बैठता। उसकी सभा में सभी राज-विभागों के मुख्य अधिकारी और प्रजा के सभी वर्गों के चुने हुए प्रतिनिधि रहा करते थे। राजसभा में नियत समय तक प्रत्येक राज-समस्या पर अच्छी तरह विचार होकर निर्णय किया जाता था। जीव-

न्धरकुमार किसी भी कार्य के निर्णय में न तो आलस्यवश अधिक देर होने देता था और न अधूरा विचार करके किसी कार्य में शीघ्रता (जल्दबाजी) करता था। राजसभा का कार्य दिन के तीसरे पहर तक चलता था। तदनन्तर राजसभा का कार्यक्रम समाप्त करके कुछ देर तक मंत्रणागृह में मंत्रियों के साथ उलझी हुई समस्याओं पर विचार करता।

इस तरह राजकार्य कर लेने के बाद राजभवन में आता और कुछ देर तक अपनी रानियों के साथ मनोविनोद, वार्तालाप करता, फिर सबके साथ भोजन करता। भोजन के अनन्तर राज-उद्यान में अपनी रानियों के साथ विहार करता. अनेक क्रीडायें करता। फिर सूर्य अस्त के कुछ समय बाद राजभवन में आता और रानियों के साथ अनेक प्रकार के विनोद के साथ वार्तालाप करता और निश्चित समय पर सो जाता।

गंधर्वदत्ता यद्यपि उसकी पट्टरानी थी, परन्तु जीवंधर अपनी सभी रानियों से समान-प्रेम-व्यवहार करता था। इसी कारण उसकी सभी पत्नीं बहुत प्रसन्न रहती थीं। जीवंधर अपनी सब रानियों को अपनी काम-कला से संतुष्ट रखता था। इस कारण उसकी सब रानियां परस्पर में बड़े प्रेम से रहती थीं, किसी में भी परस्पर ईर्ष्या (जलन) तथा सौतियाडाह न होता था।

जीवंधरकुमार ने अपनी दैनिक-चर्या में अपने माता-पिता आदि गुरुजनों का आदर सत्कार तथा व्यायाम, क्रीड़ा (खेल) आदि सभी आवश्यक कामों को यथा-उचित समय नियत कर रक्खा

था। इस प्रकार जीवंधरकुमार राज-शासन पाकर धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थों को ठीक नियमित रूप से आचरण करता था। अतः जीवन्धरकुमार स्वयं सन्तुष्ट और प्रसन्न था तथा उसका परिवार, मित्र, राज-अधिकारी और प्रजाजन भी सन्तुष्ट और प्रसन्न थे।

कुछ दिनों पीछे उसको प्रत्येक रानी ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। वे राजपुत्र द्वितीया के चन्द्र-समान बड़े सुख से बढ़ने लगे, अपने पिता के अनुरूप सभी पुत्र सुन्दर, स्वस्थ प्रसन्न थे, उनके मुख पर राज-तेज झलकता था। शिशु-वय पाकर वे आठों पुत्र आपस में बहुत प्रेम से खेलते थे और साथ ही साथ पढ़ते, खाते-पीते, घूमते, उठते-बैठते थे। उन सुलक्षण पुत्रों को देखकर जीवंधरकुमार तथा उसकी मातायें और रानियाँ बहुत प्रसन्न होती थीं। जिस समय वे आठों राजकुमार राजभवन से बाहर निकलकर कहीं जाते, तो समस्त स्त्री-पुरुष उनको एकटक दृष्टि से देखने लगते और प्रसन्न होते।

जीवंधरकुमार ने उनकी शिक्षा, व्यायाम, खेल-कूद आदि की अच्छी व्यवस्था कर दी थी साथ ही वह इस बात का सदा ध्यान रखता था कि किसी भी लड़के में कोई दुर्गुण न आने पावे। इस तरह वे आठों राजपुत्र जीवन्धरकुमार को आशा का केन्द्र बन गये थे।

जीवन्धरकुमार के शासन में समस्त जनता सुख-सम्पन्न थी, बलवान् व्यक्ति किसी निर्बल व्यक्ति पर अत्याचार न कर सकता

था और न धनवान् किसी धनहीन को त्रास देता था, सिंह और हिरण एक ही घाट पर जल पीते थे।

जीवन्धरकुमार के सच्चरित्र धार्मिक होने के कारण उसके राज्य में सर्वत्र धर्म और सदाचार का अबाध प्रवाह बहता था, साधु और गृहस्थ अपने-अपने धर्माचरण में संलग्न थे। राज-अधिकारी भी अपने कार्य में सदा तत्पर और सावधान रहते थे, वे न स्वयं कोई अकार्य करते थे और न जनता में कोई भ्रष्ट-आचार होने देते थे। अन्न, फल-फूल का उत्पादन बहुत भारी परिमाण में होता था, खनिज (खान से निकलने वाले) पदार्थ भी यथेष्ट परिमाण में प्राप्त होते थे, सब तरह के व्यापार जल तथा स्थल मार्ग से निर्बाध हुआ करते थे।

इस प्रकार जीवन्धरकुमार के राज्य में समस्त प्रजा सुख से जीवन-यापन करती थी।

कुछ दिनों पीछे जीवन्धर की माता विजया का ध्यान आत्म-साधन की ओर गया। उसने विचार किया कि मैंने अपना इतना समय व्यर्थ गंवाया, मोह-माया में अचेत रहकर मैंने अपनी दृष्टि सदा बाहर की ओर रक्खी, अपने अन्तरंग को शुद्ध करने के लिये जरा भी यत्न नहीं किया। जिस तरह व्याधि तब तक दूर नहीं हो सकती जब तक कि शरीर के भीतर शुद्धि न होने पावे, इसी तरह आत्मा में जो मोह-ममता के कारण रागद्वेष घृणा, मद आदि अनेक तरह की व्याधियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिससे कि आत्मा सदा व्याकुल, असन्तुष्ट रहता है,' जब तक

आत्मा के उन दोषों की शुद्धि न होगी तब तक आत्मा की व्याकुलता दूर न होगी।

यह पुत्र, पौत्र, पुत्रवधुओं का परिवार देखने में बहुत सुन्दर मालूम होता है किन्तु इसने मुझे तो मोह-ममता के जाल में फँसा रक्खा है। मैं जब तक इस परिवार में रही आऊँगी, तब तक मेरी आत्मा शुद्ध नहीं हो सकती।

ऐसा विचार करके उसने जीवन्धरकुमार को अपने समीप बुलाया और बहुत कोमल शब्दों में विजया रानी जीवन्धर से बोली कि—

पुत्र! मैंने संसार के सुख-दुःख अपने इस छोटे से जीवन में खूब देख लिये हैं। माता-पिता का स्नेह, पति का अगाध प्रेम, राजसुखों का उपभोग मैं कर चुकी हूं। तदनन्तर पति का दुःसह वियोग और तत्काल-उत्पन्न सुत-वियोग की भारी पीड़ा भी मैंने उठाई, पता नहीं किस तरह ये प्राण शरीर से बाहर न निकल सके। दीर्घकाल तक पति तथा पुत्र के वियोग की मानसिक यातना मुझे दुःख देती रही। फिर अचानक तुझ से मिलाप हुआ, तू सुपुत्र सिद्ध हुआ और तूने अपने पिता का सम्मानित पद प्राप्त किया, मुझे भी राज-माता कहलाने का अवसर मिला। विनीत पुत्रबन्धुओं द्वारा आदर तथा घर के प्रकाशरूप पौत्रों की क्रीड़ा भी मैंने देख ली। अब मुझे संसार की कोई और बात नहीं देखनी है, अब तो मैं कुछ आत्म-कल्याण करना चाहती हूं।

जीवन्धरकुमार नम्र स्वर में बोला कि माता जी! मेरे

जन्मते ही तुम्हारे दुःखों का प्रारम्भ हुआ, मैं उस समय तुम्हारी कुछ सेवा न कर सका, अब जब कि मैं तुम्हारी सेवा करने योग्य हुआ हूं तब तुम मुझे सेवा नहीं करने देतीं। पुत्र पर माता-पिता की ही छाया सुखदायिनी होती है। सो पिता की छत्र-छाया तो मुझे मिल नहीं सकती, माता की स्नेहमयी छाया मेरे ऊपर है, सो वह भी यदि न रहे तो मेरा सन्ताप कैसे दूर होगा ? तुम यदि धर्म-ध्यान करना चाहती हो तो यहीं रह कर करो, मैं तुम्हारे लिये सभी उचित साधन जुटा दूंगा। मैं तुम्हारे धर्म-ध्यान में बाधा नहीं डालना चाहता।

विजया बोली, पुत्र ! छाया और धूप कोई किसी के ऊपर न किया करता है और न कर सकता है। प्रत्येक जीव का अपना पूर्व-संचित पाप-पुण्य कर्म ही उस पर धूप, छाया करता है। मैं यहां घर में रह कर आत्म-शोधन नहीं कर सकती। भला, मोह ममता की कीचड़ में खड़ा रह कर कोई अपनी आत्म-शुद्धि कैसे कर सकता है ? यदि घर में रह कर भी आत्म-कल्याण किया जा सकता, तो बड़े-बड़े राजा-महाराजा, चक्रवर्ती घर-परिवार छोड़ कर वन पर्वतों में क्यों जाते ? पुत्र वही है जिसके कारण माता-पिता पवित्र जीवन प्राप्त करें। इसलिये बेटा ! तू मुझे इस पवित्र कार्य से न रोक।

जीवन्धरकुमार ने बड़ी नम्रता के साथ उत्तर दिया कि माता जी ! मैं तुम्हारी आत्म-साधना में कोई बाधा नहीं डालना चाहता, मैं तो यह चाहता हूँ कि जो कुछ तुम वन-पर्वतों में करना चाहती

हो वह पवित्र कार्य तुम यहीं पर करो। तुम्हारी इच्छा-अनुसार यहां एकान्त, शान्त, स्वच्छ स्थान का प्रबन्ध कर दूंगा। वहां पर तुम्हारे आत्म शोधन के कार्य में रंच-मात्र भी विघ्न न आ सकेगा। अपितु (बल्कि) तुम्हारी पवित्र-चर्या से हमारा सारा परिवार अधिक धर्ममय हो जायगा।

विजया रानी ने कहा—पुत्र! मुझे वन पर्वतादि में रहने का दुराग्रह नहीं है, किन्तु जिस कार्य को मैं करना चाहती हूँ उसके लिये उचित स्थान तेरे हजारों यत्न करने पर भी यहां घर में नहीं बन सकता। जिस मोह-ममता से मैं दूर होना चाहती हूँ वह मोह-ममता इस भवन के एक-एक अणु में भरी हुई है, भला मैं फिर किस तरह यहां आत्म-मनन कर सकूंगी। काजल की कुटिया मे बहुत सावधानी रखने पर भी काजल की रेखा कपड़े पर लग ही जाती है। कोयले के व्यापार में हाथ स्वच्छ सफेद कैसे रह सकते हैं? वन-पर्वतों में मोह-ममता का ऐसा वातावरण नहीं है तथा वहां पर अनेक आर्यिकाओं (साध्वियों) के संघ का सम्पर्क मिल जाता है, जो कि सदा ज्ञान, ध्यान, तत्वचर्चा में लीन रहती हैं। इस लिये पुत्र! तू मुझे अब इस राज-भवन से बाहर जाने दे।

माता की अटल विरक्ति देख कर जीवन्धर का हृदय मोह से भर आया, उसके नेत्रों में आंसू छल-छला आये और स्वर भारी हो गया। वह लड़खड़ाता हुआ बोला कि माता! मैं तुम्हारी कुछ सेवा न कर सका, अब तुम मुझे छोड़ कर जाना चाहती हो,

मैं इसका तुम्हें क्या उत्तर दूं ?

विजया बोली 'जीवन्धर ! तू वीर भूपति बन कर इस समय जरा सी बात पर कायर बन रहा है, वीर पुरुष के नेत्रों में कभी आंसू आते हैं ? तेरे ये ही आंसू तो मुझे यहां कुछ न करने देंगे। अपने हृदय में वीरता की ज्योति जगा और साहस के साथ प्रसन्नता से मुझे आत्म-साधना के लिये अनुमति दे। राजा होकर तू अपने हृदय पर भी शासन नहीं कर सकता ? जो मोह शत्रु को नहीं जीत सकता, वह अपने बाहरी शत्रुओं को क्या जीतेगा ?

माता की बात सुन कर जीवन्धर कुछ सम्हला और अपने नेत्रों को सुखाते हुए बोला, कि माता ! मैं तुम्हारी आज्ञा से बाहर नहीं, मुझे अपने वरद हाथों से आशीर्वाद दो जिससे कि तुम्हारे परोक्ष में मुझे बल मिलता रहे।

विजया ने जीवन्धर पर अपनी विजय होते देख कर प्रसन्नता प्रगट की और जीवन्धरकुमार के शिर पर अपना दाहिना हाथ फेर कर आशीर्वाद दी कि 'सदा स्वस्थ प्रसन्न रह'।

जीवन्धरकुमार ने माता के चरण स्पर्श किये, विजया ने जीवन्धर की पीठ ठोंकी।

विजया राजभवन से बाहर जाने को तयार हुई। यह बात जब सुनन्दा को ज्ञात हुई, तो वह भी विजया के साथ साध्वी बन कर आत्म-साधना के लिये तयार हो गई। तब राजभवन में एक विचित्र सन्नाटा छा गया।

जीवन्धरकुमार की आठों रानियों ने जब दोनों राजमाताओं

के आत्म-साधना के लिये घर छोड़ कर वन की ओर जाने की बात सुनी तो वे सन्न रह गईं। उन्होंने तत्काल आकर अपनी सासुओं के चरण पकड़ कर राजभवन में ही रहने के लिए प्रार्थना की, किन्तु विजया और सुनन्दा ने अपनी अटल भावना उनको मधुर शब्दों में समझा दी।

जीवन्धरकुमार के पुत्रों को समझाने में उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ा। जीवन्धरकुमार दोनों माताओं को रथ में बिठा कर राजपुरी के बाहर ले गया। वहां पर पद्मा नामक एक गणिनी के पास जाकर विजया और सुनन्दा ने आर्यिका [साध्वी] की दीक्षा ली। गणिनी पद्मा ने मातृ-वियोग से शोकाकुल जीवन्धरकुमार को उपदेश दे कर सम्बोधित किया। तदनन्तर जीवन्धरकुमार घर आया।

राजमाता विजया रानी तथा सुनन्दा के वैराग्य का समाचार समस्त राजपुरी में फैल गया और सभी स्त्री-पुरुष दोनों राजमाताओं की प्रशंसा करने लगे कि विजया रानी ने अपने गृहस्थ जीवन में सुख-दुःख के दिन देख लिये। धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ का सेवन किया, अब उसने मोक्ष पुरुषार्थ को प्राप्त करने के लिये प्रशंसनीय पग रक्खा है। मनुष्य भव सफल करने का यही मार्ग है। पाये हुए राजसुखों को ठुकरा कर आत्म-शुद्धि के लिये घर-वास छोड़ देना ही वैराग्य है।

जीवन्धरकुमार भी यह विचार करके शान्त हो गये कि माता ने आत्मसाधना के जिस मार्ग पर पैर रक्खा है वह उससे और

भी अधिक शान्ति, सुख, संतोष प्राप्त करेगी, इस भव में उसका उज्वल यश सर्वत्र फैलेगा और अग्रिम भव में और उन्नत पद पावेगी, ऐसी सच्चरित्र धर्मनिष्ठ माता धन्य है।

जीवन्धरकुमार को न्यायपूर्वक निष्कण्टक राज्य-शासन करते हुए तीस वर्ष बीत गये।

ऋतुराज वसन्त के दिन थे, प्रकृति नई छटा में नई दुलहिन सी सुन्दर सजी हुई दीख पड़ती थी। वृक्षों पर नयी हरी पत्तियां तथा रंग-बिरंगे पुष्प चारों ओर जनता की दृष्टि अपनी ओर खींच रहे थे, पृथ्वी पर कोमल घास की चादर बिछी हुई थी, कोयल आम पर बैठी हुई पंचम स्वर से प्रिय मधुर राग अलाप रही थी, मंद, सुगन्ध समीर धीमी-धीमी थपकियां दे रहा था। जनता में नवीन उमंग हिलोरें ले रही थी। बाल बच्चे युवक-युवती स्त्री-पुरुष अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं से अपना मनोरंजन कर रहे थे।

इसी समय जीवन्धरकुमार के हृदय में भी उमंग जागृत हुई। उनका चंचल मन जलक्रीड़ा की ओर आकृष्ट हुआ। गन्धर्वदत्ता, ने भी इसका समर्थन किया, गुणमाला तथा सुरमंजरी ने हंसते हुए अपने कौमार्य (अविवाहित) समय की घटना का स्मरण कराते हुए जीवन्धरकुमार के सन्मुख परस्पर कहा कि सखी ! हम अपना-अपना स्नान-चूर्ण (उबटन-पाउडर) लेकर चलें, जिसका चूर्ण बढ़िया होगा वह स्नान करेगी, जिसका घटिया सिद्ध होगा वह स्नान न कर सकेगी. जीवन्धरकुमार ने मुस्कराते हुए कहा,

घटिया बढ़िया का निर्णय तो मैं ही करूंगा। अब की बार दोनों का चूर्ण एक समान रहेगा, घटिया-बढ़िया नहीं होगा, गुणमाला और सुरमञ्जरी दोनों खिलखिला कर हंस पड़ीं।

गुणमाला ने कहा, कहीं अब की बार राज-हस्ती (राजा का मुख्य हाथी) मदोन्मत्त (पगाल) न हो जावे, जीवन्धरकुमार ने फिर मुस्करा कर उत्तर दिया, कि जीवन्धरकुमार भी साथ रहेगा न ?

इस प्रकार विनोद की बातें होते हुए सभी रानियों ने जल-क्रीड़ा के लिये जीवन्धरकुमार को उत्साहित किया। तदनुसार जीवन्धरकुमार अपने सब परिवार और दास-दासियों के परिकर के साथ रथ, हाथी आदि वाहनों पर बैठकर राजपुरी के बाहर बने हुए विशाल राज-उद्यान मे पहुंचे। वहाँ पर सबको यथा-स्थान ठहरा कर पहले तो जीवन्धरकुमार ने अपनी रानियों के साथ बाग की पुष्प-वाटिका में भ्रमण किया, खिले हुए अनेक प्रकार के सुगन्धित मनोहर पुष्पों को तोड़ कर अपनी रानियों की चोटियों में गूंथ दिया, फिर आठों रानियों के साथ वृक्षों में पड़े हुए झूले पर अनेक प्रकार झूल कर अपना तथा सब रानियों का चित्त प्रफुल्लित किया।

तदनन्तर स्वच्छ जल से भरी हुए बावड़ी में अपनी रानियों को साथ लेकर जीवन्धरकुमार उतरे। वहाँ पर बहुत देर तक सबके साथ अनेक तरह से जलक्रीड़ा की। अनेक प्रकार से तैरना, डुबकी लगाना, लुकना, छिपना, ऊपर से कूदना आदि विविध

लीलाओं से सब ने मनोरंजन किया।

जलक्रीड़ा से जब सब थक गये, तब विश्राम करने के लिये वापिका से बाहर निकले और एक लता मंडप में बैठ कर विश्राम करने लगे।

उसी समय वहाँ पर कुछ बन्दर आ गये, उनकी क्रीड़ा की ओर जीवन्धरकुमार का ध्यान आकर्षित हुआ। जीवन्धरकुमार ने देखा कि एक वानर-वानरी का जोड़ा आपस में बहुत प्रेम के साथ क्रीड़ा कर रहा था, कुछ देर पीछे बंदर कुछ दूर एकांत में जाकर किसी दूसरी बन्दरिया को काम-क्रीड़ा करने लगा। यह लीला पहली वानरी ने देख ली। उसको अन्य वानरी के साथ अपने पति का रमना सहन न हुआ और वह पति से रुष्ट हो (रूठ) गई।

स्त्री अपने पति का अन्य स्त्री के साथ प्रेम-लीला करना कभी सहन नहीं करती, उसके हृदय को इससे बहुत आघात पहुंचता है।

उस वानर ने अपनी पत्नी (वानरी) का रोष दूर करने के लिये उसकी बहुत चाटुकारिता (चापलूसी-खुशामद) की परन्तु वह वानरी प्रसन्न न हुई, रूठी ही रही। तब वानर निराश हो पृथ्वी पर लेट गया, और मुर्दे के समान अपना शरीर बना लिया।

अपने पति की ऐसी चेष्टा देख कर वह वानरी घबड़ाई और अपना मान छोड़कर तत्काल उस बन्दर के पास आई। वहां आ कर वह बंदर के शरीर से चिपट गई, उसको प्यार करने लगी उसका शरीर सहलाने लगी। वानरी का शरीर छूते ही बंदर को

रोमांच हो आया और अपनी वानरी को प्रसन्न-हुआ जान कर तत्काल उठ बैठा, फिर उस वानरी के साथ अच्छी क्रीड़ा करता रहा।

तदनन्तर वह एक चकोतरे (पनस) के पेड़ पर चढ़ गया वहाँ से एक पका हुआ फल तोड़ लाया और अपनी प्रियपत्नी (वानरी) को भेंट किया। इस भेंट से वानरी और भी अधिक प्रसन्न हो गइ। वह जैसे ही उस फल को खाना चाहती थी, कि इतने में बाग का माली वहाँ आ गया। उसने अपनी लाठी का भय दिखा कर वह फल वानरी से छीन लिया।

इस साधारण-सी घटना का जीवन्धर कुमार के हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। वे विचारने लगे कि—देखो, संसार में यह विस्तीर्ण पृथ्वी, पर्वत, नदी, वन, अनेक प्रकार के वृक्ष आदि पदार्थ बिना किसी मूल्य के प्रकृति की ओर से मिले हुए हैं, परन्तु यह जीव स्वार्थ-वश उन पदार्थों पर बलपूर्वक अपना अधिकार समझ लेता है और जब कोई दूसरा प्राणी उस पदार्थ से हाथ लगाता है, तो उसको छूने नहीं देता। उस वस्तु को अपनाने के लिये अनेक प्रकार से बल प्रयोग करके अन्य प्राणी को कष्ट देते हुए भी नहीं हिचकिचाता।

वृक्ष बिना कुछ लिये जीवों को अपने मधुर फल देते हैं, किन्तु माली ने उस फल को अपना समझ कर वानरी के हाथ से लाठी दिखा करके जबरदस्ती छीन लिया। कैसा अनर्थ है, कैसी अनीति है, कैसा अन्याय है! वृक्ष ने फल को ले लेने

दिया, परन्तु माली ने फिर भी उस से छीन लिया।

माली को क्या कहूं, मैंने भी तो स्वयं ऐसा ही किया है। काष्ठांगार ने छल-बल द्वारा मेरे पिता जी से राजपुरी का राज्य छीन लिया था और मैंने बल-पूर्वक काष्ठांगार से छीन लिया, देखा जाय तो यह पृथ्वी न मेरे पिता की थी, न काष्ठांगार की थी और न मेरी है। फिर भी इसके लिये कितनी मार-काट और अत्याचार हुए हैं! मनुष्य दूसरों को अपराधी ठहरा कर दूसरों को दण्ड देता है, किन्तु अपने दोषों पर दृष्टि नहीं डालता।

राजा राजसिंहासन पर बैठ कर छोटे २ चोर डाकुओं को दण्ड देकर न्याय का नाटक रचता है किन्तु डाकू से भी अधिक डाका स्वयं दूसरे के राज्य पर डालते समय अपने आपको अपराधी नहीं मानता। छोटे चोर डाकू बन्दी-घर में दण्ड भोगते हैं, जब कि बड़े डाकू राजभवनों में आनन्द-विलास करते हैं।

ऐसा विचार करते-करते जीवन्धर की विचार धारा बाहर से हट कर अपने आत्मा की ओर बहने लगी, यह विचारने लगे कि—

कुछ दिन पहले मैं श्मशान-भूमि में उत्पन्न हुआ, फिर गन्धोत्कट ने मुझे पाला, बचपन के दिन मुझे स्मरण हैं। बचपन समाप्त हुआ, किशोर-अवस्था युवा-अवस्था से पहले आई। वह भी कुछ दिन पीछे चली गई। फिर यौवन का प्रारम्भ हुआ, नई-नई उमंगें, बल, कौतूहल, साहस, तेज, सौन्दर्य शरीर में बढ़ने लगा, अनेक साहसी कार्य किये, परन्तु वे दिन भी न

रहे। अब शरीर वृद्ध-अवस्था की ओर बढ़ा जा रहा है। एक-एक पग श्मशान भूमि की ओर बढ़ रहा है। मृत्यु के क्षण समीप आते जा रहे हैं। जो बात कल थी, वह आज न रही और जो आज है, सो कल न रहेगी। पता नहीं, किस समय मृत्यु मेरे द्वार पर मेरे जीवन की भिक्षा लेने के लिये आ खड़ी होगी? उसे तो खाली-हाथ न लौटाया जा सकेगा। हाय! मैंने अब तक अपना कुछ काम न किया।

इस प्रकार जीवन्धरकुमार के हृदय में उस एक छोटी घटना को देखकर अनेक प्रकार के क्रान्तिकारी विचार उमड़ने लगे। अब उनकी विचारधारा बदल गई, उनको अब राज्य-शासन घर-परिवार, पुत्र, मित्र, स्त्री आदि हथकड़ी बेड़ी की तरह बंधन मालूम होने लगे और इन्द्रियों के विषय-भोग निःसार दीखने लगे। संसारकी प्रत्येक बात से अरुचि होने लगी।

जीवन्धरकुमार ने अपने मन के पवित्र धार्मिक विचार अपनी गुणवती बुद्धिमती रानियों के सामने प्रकट किये। अपने पति की उत्तम भावना को सुनकर आठों रानियां प्रसन्न हुई और सब ने एक स्वर से कहा कि प्राणनाथ! आप जिस तरह हमारे अब तक संसार-मार्ग के नायक रहे, आपकी इच्छा और आज्ञा के अनुसार हमने सभी तरह के भोग भोगे, उसी तरह आप अब हमारी धर्म-परिणति के भी नायक रहेंगे, आपकी अनुगामिनी (पीछे चलने वाली) बनकर हम योग-मार्ग पर भी आपके समान चलेंगी। सांसारिक भोगों में अब हमको भी

रुचि नहीं रही।

अपनी प्रिय रानियों की बात सुनकर जीवन्धरकुमार को बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा कि तुम सब बहुत बुद्धिमती हो और मेरी सच्ची जीवन-सहचरी (जीवन में साथ-साथ चलने वाली) हो, उठो, चलो, घर चलकर अब योग-मार्ग पर चलने की तयारी करें।

गन्धर्वदत्ता आदि सब रानियां बड़े उत्साह के साथ उठ खड़ी हुई, और अपने-अपने रथ में बैठकर राज-भवन की ओर चल पड़ीं। राजभवन में पहुंचकर जीवंधरकुमार ने सबसे प्रथम स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहन कर देवमंदिर में प्रवेश किया, आठों रानियां भी साथ थीं। वहां पर परम वीतराग जितेन्द्र देव का बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ दर्शन और स्तवन किया, फिर तन्मय होकर पूजन किया। आज के पूजन में जीवंधरकुमार को तथा उनकी रानियों को विलक्षण अपूर्व आनंद अनुभव हुआ।

पूजन के अनन्तर भगवान् की मूर्ति को जीवंधर ने एक दृष्टि से देखा और अपनी रानियों से कहा कि देखो, भगवान् हमारी ओर हँस कर हमसे कह रहे हैं कि 'तुम मेरी पूजा क्यों कर रहे हो? जो आत्मनिधि मेरे पास है वह तुम्हारे पास भी तो है, उसको कर्म पर्दे से बाहर निकालो और मुझ सरीखे परमात्मा बन जाओ।'

गंधर्वदत्ता, गुणमाला और सुरमंजरी मुस्कराते हुए बोलीं

आर्यपुत्र ! भगवान् यह नहीं बोल रहे हैं, यह सब कुछ आपका हृदय बोल रहा है, जो कि भगवान् के निकट पहुंचकर, आपके नेत्रों से टकरा रहा है, आपके हृदय की जो भावना है, वैसा ही होगा।

जीवंधरकुमार गम्भीर मौन भाव से बिना कुछ उत्तर दिये भगवान् को नमस्कार करके मंदिर से बाहर आये। भोजनालय में जाकर अपनी रानियों के साथ भोजन किया। आज वे भोजन तो कर गये किन्तु उनको यह कुछ पता न चला कि किस वस्तु में क्या स्वाद था ? नमक मिर्च मीठा किसी में कम अधिक था या नहीं ?

उस दिन वे राजसभा में भी न गये, न मंत्री, सेनापति से कुछ मंत्रणा की, अपने एकांत भवन में लेटे रहे। दिन व्यतीत हुआ, रात प्रारम्भ हुई।

जीवंधरकुमार अपने भवन से बाहर न निकले, तब गंधर्व-दत्ता, गुणमाला, पद्मा, क्षेमश्री, कनकमाला, विमला, सुरमंजरी तथा लक्ष्मणा अपने-अपने भवनों से निकल कर अपने पति के भवन में आकर एकत्र हुईं, और यथास्थान बैठ गईं। सबने जीवं-धरकुमार को बड़े विनीत स्वर से पूछा, कि प्राणनाथ ! हमको आज्ञा कीजिये तथा हमको उचित पथ-प्रदर्शन कीजिये, हम अंत तक आपकी आज्ञा का पालन करेंगी, आपका अनुकरण करेंगी और आपकी साधना में सहायता देंगी बाधा न डालेंगी।

जीवंधरकुमार ने कहा कि, मैंने अब तक यथाशक्ति धर्म,

(देव, शास्त्र गुरु की आराधना, अणुव्रत-पालन आदि), अर्थ (राज शासन) और काम (यथेच्छ सुन्दर भोग उपभोगों का भोगना) पुरुषार्थ का सेवन किया, किन्तु अब मैं इन सबसे आगे और सबसे उत्तम मोक्ष पुरुषार्थ को सिद्ध करना चाहता हूं।

समस्त रानियों ने मधुर-वाणी में कहा, आर्य-पुत्र! जो भावना आपके हृदय में जागृत हुई है वही भावना हमारे हृदय में भी तरंगें ले रही है, अतः परमार्थ मार्ग पर हम भी आपके साथ रहेंगी।

जीवन्धरकुमार ने दीर्घ निःश्वास लेते हुए कहा कि ठीक है, तुम्हारा विचार भी अभिनन्दनीय है। संसार के भोग खूब भोग लिये, अब तुम्हें योग-आराधन में अपना समय लगाना चाहिये। बुद्धिमानी इसी में है और यह दुर्लभ मनुष्य भव तथा यह सुलभ अवसर पाने का फल भी यही है। आत्मा की शुद्धि इस राज-भवन में नहीं, बल्कि वन में होगी। हमारी दोनों पूज्य माताओं ने जैसा किया वैसा तुम्हें भी करना चाहिये।

सब रानियों ने हर्षके साथ कहा कि स्वामिन्! हमको आपकी प्रेरणा स्वीकार है। राजभवन में हम छाया की तरह आपके साथ रही हैं, वन में भी आपके ही साथ रहेंगी।

जीवन्धरकुमार ने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया, तुम्हारा उत्साह अच्छा है परन्तु जिस आत्मसाधना के लिये राजभवन छोड़कर वन में जाना है, वहां पर हमारा तुम्हारा साथ २ रहना विघ्नकारक होगा, सांसारिक राग-उत्पादक होगा। वहां तो तुम्हारा

साथ साध्वियों (आर्यिकाओं) के साथ रहेगा और मैं साधुओं के संघ में रहूँगा।

जीवन्धरकुमार की यह बात सुनते ही सब रानियां के हृदय को कुछ धक्का लगा और इसी कारण वे कुछ उदास-सी होकर क्षण भर के लिये चुप हो गईं परन्तु फिर संभल कर बोलीं कि जीवनेश्वर ! कोई बात नहीं, वन में आप हम से दूर रहना परंतु इस राजभवन को छोड़ कर बाहर हम आपके साथ ही निकलेंगी।

जीवन्धरकुमार ने कहा—स्वीकार है। जाओ अब विश्राम करो, प्रातःकाल गुरुदेव के समीप चलेंगे फिर उनकी आज्ञा-अनुसार आगे का कार्यक्रम बतावेंगे।

जीवन्धर की बात सुनकर सब रानियां प्रसन्न होकर अपने-अपने भवन में चली गईं। जीवन्धरकुमार भी लेट गये परन्तु उस रात को नींद किसी को न आई, सबके हृदय में अपने-अपने जीवन की पिछली घटनाऐं और भविष्य की कल्पनाऐं साकार होने लगीं। अनेक प्रकार के मधुर विचार सब के मन में गुदगुदी मचाते रहे। सब रानियों ने अपने सर्वगुण-सम्पन्न पति की अपने मन ही मन बहुत प्रशंसा की। जीवन्धरकुमार ने राज्यभार अपने सबसे बड़े (गन्धर्वदत्ता के) पुत्र सत्यधर को सौंपने का कार्यक्रम सोचा, और अपनी रानियों के शुभ विचार की सराहना की।

इस तरह विचारधारा में बहते हुए जीवन्धरकुमार और उनकी

रानियां शीघ्र सूर्य-उदय की प्रतीक्षा करने लगीं।

जब सूर्य की सुनहरी किरणें आकाश में अरुण चादर बिछा कर सुनहरी छटा छिटकाने लगीं तब जीवन्धरकुमार और उनकी रानियां बड़े उत्साह और उमंग के साथ अपनी-अपनी शय्या से उठीं और उन्होंने पवित्र आसन पर बैठ कर कुछ देर तक शुद्ध निरञ्जन निर्विकार, सच्चिदानन्द परमात्मा का स्मरण किया, फिर शौच दन्तधावन, स्नान आदि दैनिक क्रियाओं में लग गईं। इस तरह प्रातःकाल के कार्यों से निवृत्त होकर सब रानियां अपने स्वामी के पास आकर एकत्र हो गईं।

जीवन्धरकुमार अपनी सब रानियों के साथ गुरु-वन्दना के लिये राजभवन से निकले, फिर अश्व-रथों पर सवार होकर राज-मार्ग से होते हुए नगर के बाहर पहुँचे। मार्ग में जीवन्धरकुमार को देखने के लिये जनता दोनों ओर एकत्र हो गई। नगर के बाहर निकलते ही एक निर्जन शान्त प्रदेश में एक स्वच्छ शिला पर एक चारण ऋद्धिधारक (आत्म-शक्ति से आकाश में विहार करने वाले) अवधिज्ञानी (सीमित भूत भविष्य के ज्ञाता) ऋषि बैठे हुए मिले। उन महान् ऋषि को देखते ही जीवन्धरकुमार रथ से उतर पड़े और अपनी रानियों सहित नंगे पैर ऋषि के समीप गये। वहां जाकर सब ने पृथ्वी से मस्तक लगा कर नमस्कार किया और भक्ति से उनकी प्रदक्षिणा देकर हाथ जोड़ कर शिर झुकाया तथा बड़ी विनय और श्रद्धा से उनके समीप बैठ गये।

जीवन्धरकुमार ने बड़ी नम्रता के साथ पूछा कि गुरुदेव !

आत्मा निराकुल शान्त और सुखी कैसे हो सकता है ?

मुनिराज प्रसन्न मुद्रा में बोले कि राजन् ! तोता यदि सोने के पिंजड़े में रहकर मेवा और खीर खाकर अपने आपको सुखी माने तो यह उसकी भूल है, पिंजड़े के बन्धन में वह अपने स्वामी की कृपा पर ही भोजन पा सकता है, यदि वह पिंजड़े से बाहर निकल जावे तो स्वतन्त्रता से जहां चाहे उड़ कर जा सकता है और जो फल खाना चाहे खा सकता है। इसी तरह संसारी जीव शरीर के बन्दीघर (जेल) में स्वतंत्रता का सुख नहीं पा सकता, उसे शरीर के कारण जन्म, मरण, भूख, प्यास आदि की आकुलता सदा लगी रहेगी। तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन करते और सुस्वादु जल पीते अनन्त समय बीत गया, तथा अनेक तरह के विषय-सुख भोगते असंख्य वर्ष हो गये किन्तु न तो इस जीव की भूख, प्यास मिटी और न इन्द्रियां ही तृप्त हुईं, बल्कि जिस तरह खारा जल पीने से प्यास और बढ़ती है, इसी तरह भोगों के भोगने से विषयों की लालसा और अधिक बढ़ती है। यदि विषय-भोगों को छोड़ दिया जाय, तो आत्मा को संतोष और शान्ति प्राप्त हो सकती है।

राजन् ! यह जीवन अल्प है, अब तक तुमने इस शरीर के लिये तथा परिवार के लिये अनेक न्याय-अन्याय किये, अब अपने आत्मा का भी कुछ कार्य करो। संसारकी सब झंझटोंको छोड़कर आत्म-चिन्तन में समय लगाओ, जिससे कर्मजाल छिन्न-भिन्न हो जावे और तुम सदा के लिये जन्म-मरण आधि-व्याधि से छूट जाओ।

जीवन्धरकुमार को मुनि महाराज का उपदेश बहुत हितकर, प्रिय अनुभव हुआ। उसने हाथ जोड़कर कहा कि 'महाराज! आप तरण-तारण हैं, आपके उपदेश का पालन करूंगा।' कृपा करके मेरे पूर्व जन्म का वृत्तान्त संक्षेप से और बतला दीजिये।

ऋषिराज कहने लगे कि—

धातकीखण्ड के भूमि-तिलकपुर नगर के राजा पवनवेग का पूर्वभव में तू यशोधर नामक पुत्र था। तेरा पिता अच्छा धर्मात्मा व्यक्ति था, तू भी अच्छा गुणी सुशील बालक था और माता-पिता तुझसे बहुत स्नेह करते थे।

एक दिन तू अन्य मित्रों के साथ खेलने के लिये नगर से बाहर गया, वहां पर तूने एक सुन्दर राजहंस का बच्चा देखा, तू उसको अपने मनोरंजन के लिये अपने घर पर ले आया और एक पिंजड़े में उसे रख दिया।

अपने बच्चे के वियोग में उस राजहंस के माता-पिता को बहुत दुख हुआ।

एक दिन तेरे पिता को जब यह बात ज्ञात हुई, तब उसने प्रेम के साथ तुझ को समझाया कि—

'पुत्र! जिस तरह मनुष्य को अपना बच्चा प्रिय होता है, उसी तरह पशु पक्षियों को भी अपने बच्चों से प्रेम होता है। तू जो यह राज-हंसका बच्चा ले आया है सो इसके वियोग में इसके माता पिता को कितना दुख हुआ होगा, विचार तो सही।

तथा—जिस तरह तुझे किसी कोठरी में बन्द कर दिया जाय,

तो तेरे चित्त में बड़ा क्लेश होगा। इसी तरह तूने जो स्वतन्त्र घूमने फिरने वाले इस पक्षी (राजहंस) को पिंजड़े में बन्द कर दिया है, सो इसको भी तो बहुत दुख हो रहा होगा।

बेटा ! दूसरे जीव के दुख को अपने जैसा ही समझना चाहिये। जैसे तुम स्वयं दुख नहीं उठाना चाहते, वैसे ये बेचारे मूक (गूंगे) पशु-पक्षी भी तो अपने लिये दुख नहीं चाहते। अपने मनोरंजन के लिये दूसरों का हृदय दुखाना सज्जन पुरुष का कार्य नहीं। मनुष्य का शरीर पाकर सदा दूसरे का उपकार करना चाहिये, किसी को रंचमात्र दुख न देना चाहिये। इसलिये पुत्र ! जहां से तू इसको लाया था वहीं पर जाकर इसको छोड़ आ।'

तुझको अपने पिता के वचन बहुत प्रिय लगे और तेरे हृदय में दया का उदय हो आया। तू अपने पिता की आज्ञा-अनुसार उस राजहंस के बच्चे को फिर वहीं पर छोड़ आया, जहां से उसे लाया था।

जब तू युवक हुआ तब आठ स्त्रियों के साथ तेरा विवाह हुआ, तू अपनी स्त्रियों के साथ बहुत आनन्द से रहने लगा। तू उन आठों स्त्रियों को एक समान प्रेम करता था और वे सभी तुझ को भी वैसा ही प्रेम करती थीं।

एक दिन तुझको संसार से वैराग्य हो गया और तू राज-सुख, घर वार छोड़कर साधु बनने के लिये तैयार हुआ, उस समय तेरे हृदय में वैराग्य में दृढ हो चुका था, इसलिये अपने माता-पिता के आग्रह से भी न रुका और मुनिदीक्षा लेकर साधु बन गया।

तेरी आठों स्त्रियों ने भी आर्यिका की दीक्षा ग्रहण कर ली।

तूने तथा तेरी रानियों ने दीक्षा लेकर अच्छी कठोर तपस्या की और शरीर छोड़ते समय भी शान्त, विरक्त परिणाम रक्खे जिससे तुम सब स्वर्ग में जाकर देव और देवियां हुए।

स्वर्ग से आकर इस भव में तू सत्यन्धर राजा का पुत्र हुआ और वे देवियां फिर तेरी ये आठ पत्नियां हुई हैं। तूने राज-हंस के बच्चे को उसके माता पिता से अलग किया था, इस कारण तुझे भी बचपन में माता पिता का वियोग सहना पड़ा। और तूने उस राजहंस के बच्चे को पिंजड़े में कुछ दिन बन्द रखकर छोड़ दिया, उसके फल-स्वरूप काष्ठांगार ने तुझे बन्दी बनाया था, किन्तु तू बाद में छूट गया। राजन्! यह जीव जैसा अच्छा बुरा कार्य करता है उसी तरह का अच्छा बुरा कर्म-फल इसको उसी जन्म में या अन्य जन्म में भोगना पड़ता है।

मुनिराज से अपने पूर्वभव सुनकर जीवन्धरकुमार और उसकी रानियों को बहुत हर्ष हुआ। 'उनका पति-पत्नी सम्बन्ध इसी भव का नहीं है बल्कि दो भव पहले से चला आ रहा है' यह बात जानकर उनको बहुत भारी प्रसन्नता हुई। साथ ही उनका चित्त आत्म-साधना तथा संसार और विषय-भोगों से विरक्ति की ओर और भी अधिक अग्रसर हुआ।

उन सब ने प्रसन्न होकर मुनिराज को नमस्कार किया और राज-भवन को लौट आये।

जीवन्धरकुमार ने आस-पास के मित्र-राजाओं को निमन्त्रण

दिया और सबके समक्ष गन्धर्वदत्ता की कोख से उत्पन्न अपने सबसे बड़े पुत्र सत्यन्धर का अभिषेक करके राज-तिलक किया और राज-सिंहासन पर बिठाकर उसको समुचित राज-नीति तथा धर्म-नीति का उपदेश किया ।

तदनन्तर अपने समस्त परिवार के स्त्री-पुरुषों से तथा परिचित मित्र, अमित्र आदि से अपने ज्ञात-अज्ञात अपराधों को क्षमा कराया और स्वयं सबको क्षमा किया। फिर दीन-दरिद्र दुखी स्त्री-पुरुषों को अच्छा दान दिया। यह सब करके अपने राजकीय बहुमूल्य वस्त्र आभूषण उतार कर सादा स्वच्छ वस्त्र पहने। जीवन्धरकुमार की आठों रानियों ने भी ऐसा ही किया।

इसके अनन्तर जीवन्धर अपने परिवार-सहित समवसरण (दिव्य उपदेश-सभा) में विराजमान भगवान महावीर की वन्दना के लिये चल पड़े। राजपुरी की समस्त जनता जीवन्धरकुमार और उनकी रानियों के वैराग्य की बात सुन कर उनकी प्रशंसा करने लगी और जीवन्धर कुमार को विदा करने के लिये उनके पीछे-पीछे बहुत दूर तक आई।

समवसरण उस समय राजगृही के निकट विपुल पर्वत पर बना हुआ था। समवसरण जब समीप आ गया, तब जीवन्धर कुमार, उनकी रानियां तथा परिवार के अन्य स्त्री-पुरुष रथ, हाथी आदि वाहनों से नीचे उतर पड़े और फिर समवसरण तक नंगे पांव चले।

कुबेर का बनाया हुआ समवसरण बहुत विशाल और सुन्दर

बना हुआ था। उस समवसरण के बीच में बनी हुई तीन कटनी वाली ऊंची गन्धकुटी पर रक्खे हुए सुन्दर सिंहासन पर भगवान चार अंगुल ऊंचे अधर विराजमान थे, उनके चारों ओर १२विशाल कोठों में असंख्य नर-नारी, पशु, देव, देवियां आदि श्रोता आराम से बैठे हुए भगवान के दिव्य उपदेश सुनने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

जीवन्धरकुमार अपने परिवार-सहित पुलकित-चित्त होकर बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ समवसरण में प्रविष्ट हुए। भगवान महावीर का दर्शन करते ही उनका सांसारिक मोह दूर हो गया। जीवन्धरकुमार ने भगवान् की प्रदक्षिणा देकर स्तुति की कि—

हे भगवन्! संसार में सूर्य-चन्द्र का प्रकाश होते हुए भी जो गहन मोह-अन्धकार फैला हुआ है, उस अंधकार का नाश आपकी वाणी ने किया है। आपके दिव्य-प्रकाश द्वारा ही संसारी जीव अपना हित-मार्ग देख सके हैं। दुःख-निमग्न जीव आपकी दिव्यध्वनि सुनकर दुःख से छूट जाते हैं, अतः यथार्थ में परमपिता आप ही हैं। आपके दर्शनमात्र से संसारी जीव को अपनी खोई हुई आत्म-निधि स्वयं प्राप्त हो जाती है। आप पूर्ण वीतराग हैं फिर भी आपका पावन उपदेश सबका कल्याण कर रहा है। इस संसार सागर से आपने केवल अपने आपको ही पार नहीं किया है अपितु आपके अनुगामी भी आपके साथ पार हो गये हैं, इस लिये इस जगत् में सच्चे 'तरणतारण' आप ही हैं। आपके विद्यमान रहते हुए भी जो व्यक्ति आपकी दिव्य-वाणी को श्रवण

नहीं करता एवं आपके निकट आकर आपका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं करता उसके कान, पैर, नेत्र व्यर्थ हैं। मैं अनादि युग से संसार में अज्ञानवश भटकता रहा, किन्तु सौभाग्य से अब आपका दर्शन मिला है, आशा ही नहीं किन्तु मुझे पूर्ण निश्चय है कि अब मेरा संसार-भ्रमण सदा के लिये दूर हो जायगा। पूज्यदेव ! आपकी शरण में आया हूँ, अब मेरा उद्धार अवश्य हो जायगा।

इस तरह गद्‌गद वाणी से जीवन्धरकुमार ने भगवान् महावीर की स्तुति की। तदनन्तर वह इन्द्रभूति गौतम गणधर के निकट पहुंचा और उनको बहुत विनय से नमस्कार करके कहा कि पावन गुरुराज ! मुझे यह मनोमोहक संसार भयानक और निःसार प्रतीत हो रहा है. कृपा करके मुझ को साधु-दीक्षा दीजिए, जिस से मैं आपके चरण-समीप में आत्म-साधना कर सकूं।

श्री गौतम गणधर प्रसन्न मुख से बोले, राजन् ! मुनि-दीक्षा-ग्रहण करने का तुम्हारा विचार तो बहुत उत्तम है, क्योंकि जब तक तुम ऐसा न करोगे तब तक तुम न आत्म-शुद्धि कर सकोगे और न निराकुल अटूट सुख प्राप्त कर सकोगे। परन्तु तुम्हारे हृदय में स्त्री-मोह, पुत्र-स्नेह, मित्र-अनुराग का अंश तो नहीं ? किसी प्राणी के साथ घृणा या द्वेष की मात्रा तो अवशेष (बाकी) नहीं रही ? अपने परिवार के कोप या वैर-भाव से तो कहीं साधु नहीं बन रहे ? तुम्हें किसी का कुछ ऋण (कर्ज) तो नहीं देना जिससे बचने के लिये कहीं यह दीक्षा लेना चाहते हो ? अथवा परिवार का पालन-पोषण न कर सकते हो इसके लिए तो साधु बनने की

बात नहीं सोची ? या अपने परिवार को अनाथ-निराश्रित बनाकर तो कहीं मुनि नहीं बनना चाहते ? यदि इन में से कोई भी बात हो, तो मुनि-दीक्षा लेने से पहले उसको दूर कर आओ जिस से निश्चिन्त, निःशल्य (बेखटके) आत्म-साधना कर सको।

जीवन्धरकुमार ने उत्तर दिया महाराज ! मैं राजा सत्यन्धर का पुत्र जीवन्धर हूं। राजपुरी का शासक था, मेरी आठ पत्नियां तथा आठ पुत्र हैं। न्याय-नीति से अब तक मैंने शासन किया, सब तरह के भोग उपभोग भोगे, किन्तु एक घटना को देखकर मुझे संसार से अरुचि हो गई है, अतः अपने बड़े पुत्र को राज-भार देकर आपके निकट आया हूं। मेरी वे आठों पत्नियां भी अभी आप से साध्वी-दीक्षा ग्रहण करेंगी। मैंने अपने सभी मित्र, परिजन, परिवार से, सभी परिचित स्त्री-पुरुषों से क्षमा मांग कर अनुज्ञा (इजाजत) ले ली है। मुझे न किसी का ऋण देना है, न किसी से मेरा मोह या वैर है और न कोई अन्य शल्य मेरे हृदय में है। मैं पूर्ण निःशल्य एवं निश्चिन्त हो कर आया हूं।

तब गुरु गौतम गणधर ने प्रसन्नता के साथ जीवन्धरकुमार को साधु-दीक्षा दी, जीवन्धरकुमार ने अपने शरीर के सब वस्त्र उतार दिये और अपने हाथों से अपने शिर के केशों का लोंच किया। जीवन्धर के बड़े पुत्र यशोधर ने उनको उसी समय पीछी और कमण्डलु भेंट किया।

तदनन्तर वे महाव्रती साधु बनकर साधुओं के कोठे में जा बैठे और गन्धर्वदत्ता आदि उनकी आठ रानियों ने आर्यिका की

दीक्षा ली और केवल १६-१६ हाथ प्रमाण एक एक श्वेत साड़ी पहन कर शेष सब वस्त्र उतार दिये। अपने हाथों से शिर के बालों का लोंच किया। उनको भी यशोधर ने एक एक पीछी कमण्डलु भेंट किया, वे आठों आर्यिकाओं के कोठे में जा बैठीं।

[सुधर्म गणधर ने राजगृह-नरेश बिम्बसार अपर-नाम श्रेणिक से कहा कि यह देव-समान सुन्दर मुनि वे ही जीवन्धर हैं।]

जीवन्धरकुमार ने साधु बन कर बहुत कठोर तपस्या की, जिस तरह राज-अवस्था में जीवन्धर शूरवीर रहे उसी तरह कठोर तपस्या में भी अटल वीर रहे। आत्म-साधना में तन्मय हो गये। उनका पवित्र मन आत्मचिन्तन के सिवाय अन्य किसी विषय की ओर न गया, उसका परिणाम यह हुआ कि वे कुछ ही दिनों बाद घातिकर्म क्षय करके सर्वज्ञ, सर्वदर्शी वीतराग, जीवन्मुक्त हो गये और उसके कुछ समय पीछे समस्त कर्म विध्वंस करके पूर्ण मुक्त हो कर नित्य निरञ्जन निर्विकार, आवागमन से मुक्त, अजर, अमर, पूर्ण-शुद्ध, पूर्ण-बुद्ध, पूर्ण-आनन्द, पूर्ण-मुक्त बन गये।



समाप्त

जैन सिद्धान्त ग्रन्थमाला के नियम

संरक्षक—२५१) एक मुश्त प्रदान करने वाले महानुभाव होंगे। जिस पुस्तक के छपने से पहले जो संरक्षक बनेंगे उनका चित्र उस पुस्तक में दिया जायगा तथा ग्रन्थमाला से प्रकाशित हुये ग्रन्थ और आगे प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों की १०-१० प्रतियाँ उन्हें भेंट की जायेंगीं।

विशेषसहायक—१०१) एक मुश्त प्रदान करने वाले महानुभाव होंगे और उनको ग्रन्थमाला से प्रकाशित ग्रन्थों की ४-४ प्रतियाँ भेंट दी जावेंगीं।

सहायक—५१) एक मुश्त प्रदान करने वाले महानुभाव होंगे और उनको ग्रन्थमाला से प्रकाशित ग्रन्थों की २-२ प्रतियां भेंट दी जाया करेंगीं।

आजीवन सदस्य—२५) एक मुश्त प्रदान करने वाले महानुभाव होंगे और उनको ग्रन्थों की १-१ प्रति भेंट दी जाया करेगी।

संरक्षक, विशेषसहायक, सहायक तथा आजीवन सदस्यों की नामावली हर ग्रन्थ में प्रकाशित हुआ करेगी।

इसके सिवाय जो महानुभाव उपर्युक्त रकम से कम की सहायता देंगे अथवा अपनी ओर से कोई पुस्तक छपवाकर ग्रन्थमाला को भेंट करना चाहेंगे वह भी सहर्ष स्वीकार की जावेगी।

संरक्षक

१. बा० दयादीपक प्रकाश सोनीपत-निवासी।
२. ला० नन्हेमल नेमचन्द जी
३. ला० पदमचन्द शिखरचन्द।

विशेष सहायक

१. ला० कुशलाल कुन्दनलाल ।
२. ,, रघुवीरसिंह प्रेमचन्द (जैना वाच कं०)
३. ,, महावीरप्रसाद एण्ड सन्स ।
४. ,, भोलाराम ऋषभदास मुलतान वाले ।
५. सेठ परमानन्द भ्र० कमिश्नर इन्कमटैक्स (रिटायर्ड)
६. मातेश्वरी ला०राजेन्द्रकुमार जैन बैंकर

सहायक

१. श्री मुन्शी उमरावसिंह महावीरप्रसाद
२. ,, विशम्बरदास एण्ड सन्स
३. ,, निरंजनदास वैजनाथ
४. ,, श्रीराम बुद्धूमल सर्राफ
५. ,, जयनारायन पानीपत वाले
६. ,. डा० कैलाशचन्द
७. ,, इन्द्रसेन दलाल
८. ,, पन्नालाल जैनी ब्रदर्स
९. ,, सेठ सुन्दरलाल सुरेन्द्रकुमार
१०. ,, सुखानन्द शंकरलाल मुलतान वाले
११. ,, मनोहरलाल मोतीलाल जौहरी
१२. ,, प्यारेलाल जगन्नाथ बजाज
१३. ,, शीतलप्रसाद महावीर प्रसाद वैद्य
१४. ,, सुन्दरलाल कोयले-वाले
१५. ,, नन्हेमल पन्नालाल कसेरे

कार्य-कारिणी के सदस्यों की सूची

सभापति—श्री लाला नेमचन्द्र जी
उपसभापति ,, पं० अजितकुमार जी शास्त्री मुलतान वाले
मन्त्री ,, महावीरप्रसाद जी बी. एससी.
उपमंत्री ,, प्रेमचन्द जी सर्राफ
प्रकाशनमंत्री ,, पं० हीरालाल जी जैन "कौशल"
कोषाध्यक्ष ,, डा० राजबहादुर जी जैन
सदस्य ,, ला० दया दीपक प्रकाश जी
,, ,, करमचन्द जी सोनीपत वाले
,, ,, नन्हेमल जी जैन
,, ,, प्रेमचन्द जी 'नश्तर' बी० ए०
,, ,, मोहनलाल जी
,, ,, वशेशरनाथ जी
,, ,, जयन्तीप्रसाद जी
,, ,, जयचन्द जी 'मस्त'
,, ,, चौ० सुलतानसिंह जी (अतिरिक्त सदस्य)

प्रस्तुत ग्रन्थ में सिद्धान्त ग्रन्थ-माला ने जैन धर्म के नियमों को सर्व साधारण में आधुनिक ढंग से प्रचार करने की कोशिश की है। आशा है संस्था के सदस्य गण तथा अन्य पाठक गण संस्था की इन पुस्तकों के विक्री प्रचार में हाथ बटाएंगे जिससे कि संस्था अधिक से अधिक मात्रा में जनता की सेवा तथा धर्म-प्रचार कर सके आप अपनी उच्च सम्मति भी प्रदान करें।

पत्र-व्यवहार का पता:—

मन्त्री—श्री जैन सिद्धान्त ग्रन्थ-माला,
दि० जैन धर्मशाला, पहाड़ी धीरज, देहली।